एमएएचडी-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

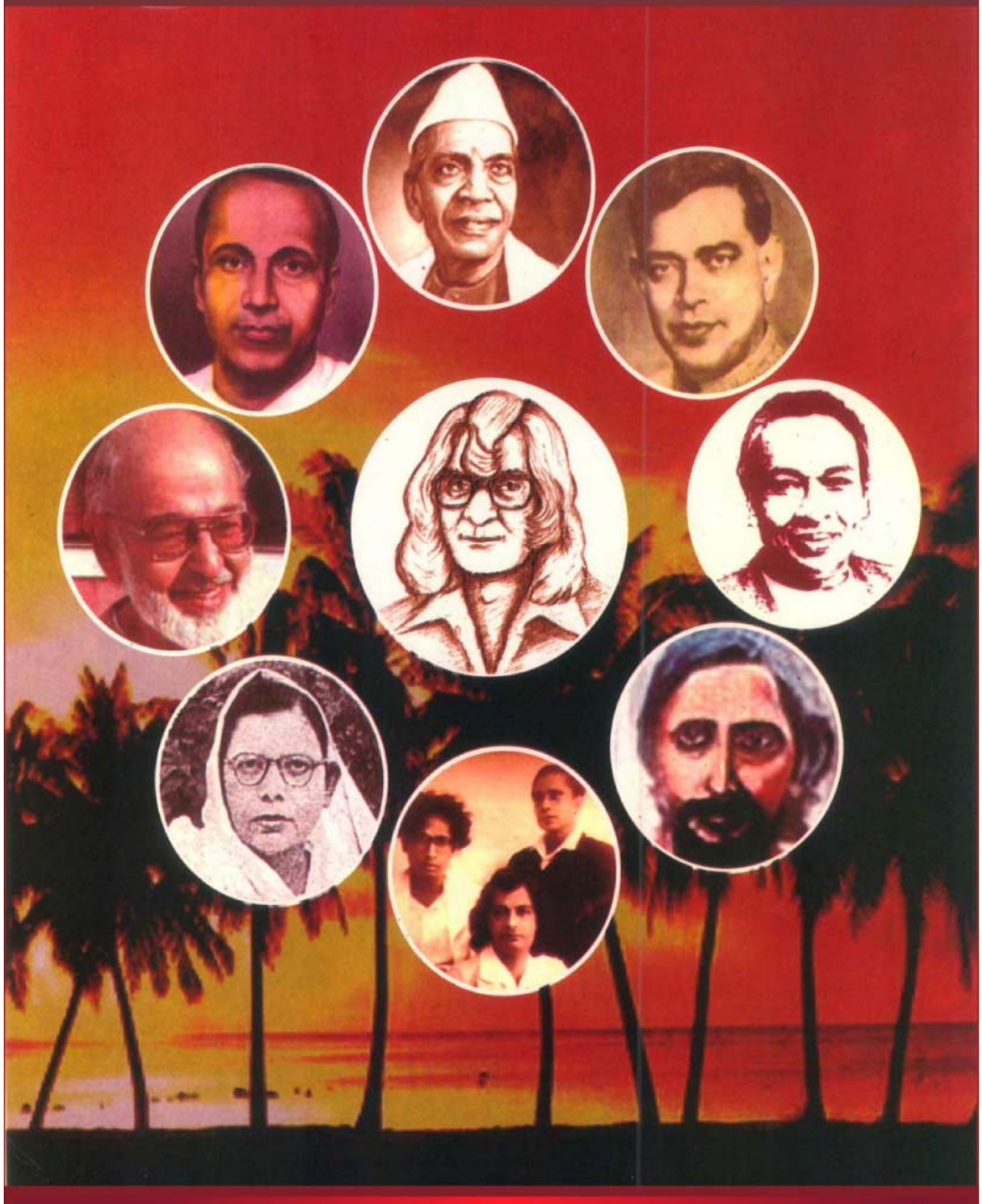

आधुनिक काव्य

1

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आधुनिक काव्य

भाग–1

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं समन्वयक

संयोजक

प्रो. (डॉ.) कुमार कृष्ण
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला

समन्वयक

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा**
  पूर्व प्राचार्य
  राजकीय महाविद्यालय, सरदारशहर (चुरू)
- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा**
  प्राचार्य
  राज. कन्या महाविद्यालय, अजमेर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक

डॉ. हरिचरण शर्मा
पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ लेखक		इकाई संख्या
डॉ. कमलेश त्रिपाठी स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग **एस.पी. विश्वविद्यालय, बल्लभनगर, गुजरात**	-	**1, 2**
डॉ. छोटा राम कुम्बर एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग **जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर**	-	**3**
डॉ. रीता गौड़ व्याख्याता, हिन्दी विभाग **मालवीय कॉलेज फॉर गर्ल्स, मालवीय नगर, जयपुर**	-	**4,11,14,15, 21**
डॉ. हरिचरण शर्मा पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	-	**5, 6, 16, 17**
प्रो. (डॉ.) दयाशंकर त्रिपाठी हिन्दी विभाग **सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, गुजरात**	-	**7, 8**
डॉ. जगन्नाथ पण्डित स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग **नलिनी अरविन्द आर्ट्स कॉलेज, बल्लभ विद्यानगर, गुजरात**	-	**9, 10, 22, 23**
डॉ. मनोज गुप्ता पूर्व विभागाध्यक्ष **सुबोध महाविद्यालय, जयपुर**	-	**12, 13**

- **डॉ. मीता शर्मा** - **18, 19**
  सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. शाहिद मीर खान** - **20**
  पूर्व प्राचार्य
  स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाड़मेर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अगस्त-2012 ISBN-13/978-81-8496-115-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड - 1 **9–53**

द्विवेदी युगीन काव्य

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	मैथिलीशरण गुप्त का काव्य	9
इकाई - 2	मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	32

खण्ड - 2 **54–249**

छायावादी युग

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 3	जयशंकर प्रसाद का काव्य	54
इकाई - 4	जयशंकर प्रसाद के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	71
इकाई - 5	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का काव्य	95
इकाई - 6	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	117
इकाई - 7	महादेवी वर्मा का काव्य	141
इकाई - 8	महादेवी वर्मा के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	176
इकाई - 9	सुमित्रानन्दन पंत का काव्य	203
इकाई - 10	सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष	232

खण्ड-परिचय

परिवेश में आया परिवर्तन समाज और सामाजिकों की मानसिकता को नयी दिशा और नया रंग प्रदान करता है । जो चल रहा होता है, वही परिवेश की मांग के अनुरूप नया रूप-स्वरूप प्राप्त करने लगता है । जीवन और साहित्य दोनों ही इस नियम की चोट सहते हैं । अत: सोच बदलता है, तो साहित्य भी बदलने लगता है । आधुनिक कविता का इतिहास प्रमाणित करता है कि प्राचीनकाल से अब तक कविता ने वस्तु और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में कई मोड़ लिए हैं और कितने ही सोपान पार किये हैं । यदि केवल आधुनिक कविता की ही बात करें, तो स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग और छायावादोत्तर युग में कविता कई मोड़ों से गुजरी है और हर मोड़ कोई न कोई नया परिवर्तन, नया सोच और नयी मानसिकता लेकर कविता में अभिव्यक्ति पाता रहा है । एम. ए. पूर्वार्द्ध हिन्दी के द्वितीय प्रश्नपत्र को **"आधुनिक काव्य"** शीर्षक दिया गया है । इस प्रश्नपत्र के अन्तर्गत द्विवेदी युग से लेकर छायावादोत्तर युग के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है ।

'आधुनिक काव्य' शीर्षक प्रश्नपत्र के अन्तर्गत 12 कवियों को स्थान दिया गया है । इनमें मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, नागार्जुन, अज्ञेय, दुष्यन्त कुमार और रघुवीर सहाय प्रमुख हैं । ये सभी कवि अपने युग की कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन सभी कवियों को स्थान देकर प्रश्न पत्र को आधुनिक कविता का प्रतिनिधि स्वरूप प्रदान किया गया है । सम्पूर्ण कवियों को चार खण्डों में विभक्त किया गया है । प्रथम खण्ड **(द्विवेदी युगीन काव्य)** के अन्तर्गत मैथिलीशरण गुप्त को स्थान प्राप्त है और उनके साकेत में आये भरत-मिलन, चित्रकूट प्रसंग और कैकेयी-राम-संवाद को स्थान दिया गया है । इसके साथ ही मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के अनुभूति पक्ष एवं अमिव्यंजनात्मक पक्ष का विवेचन सम्मिलित किया गया है 1 गुप्तजी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं और इनके साकेत से छायावाद की भूमिका तैयार होती है । इसके पश्चात् द्वितीय खण्ड **(छायावादी काव्य)** में छायावाद के आधार स्तम्भ पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा की कविताओं को आधार बनाकर कई इकाइयाँ लिखाई गयी हैं । छायावाद के इन सभी कवियों की निर्धारित कविताओं के प्रमुख अंशों की प्रसंग और साहित्यिक टिप्पणियों सहित व्याख्या प्रस्तुत की गयी है एवं इन सभी कवियों के अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष पर सोदाहरण विस्तार से विचार किया गया है ।

तृतीय खण्ड **(राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य)** के अन्तर्गत राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा के कवि दिनकर, हरिवंशराय बच्चन और नरेन्द्र शर्मा को स्थान दिया गया है । दिनकर का काव्य एक ओर तो छायावादी रोमानियत लिए हुए है और दूसरी ओर राष्ट्रीय सांस्कृतिक संदर्भो में प्रगतिशील चेतना का वाहक भी है । हरिवंशराय बच्चन को भले ही हालावादी कवि कहा गया हो और उनकी कविता को वैयक्तिक काव्यधारा नाम दिया

गया हो, किन्तु उनकी अधिकांश कविताओं की मूल चेतना सांस्कृतिक और समसामयिक संदर्भो से जुड़ी हुई है । नरेन्द्र शर्मा भी इसी श्रेणी के कवि हैं । उनकी जिन कविताओं को पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया है, उनसे सम्बन्धित सामग्री सम्बन्धित इकाइयों में दी गयी है । चतुर्थ खण्ड **(नयी कविता)** के अन्तर्गत प्रगतिशील चेतना के वाहक तथा नयी कविता के प्रमुख कवियों को स्थान दिया गया है । इस खण्ड में अज्ञेय, नागार्जुन, दुष्यनाकुमार और रघुवीर सहाय की कविताओं को स्थान दिया गया है । अज्ञेय ने प्रयोगवाद से प्रारम्भ करके नयी कविता तक की यात्रा तय की है । वे नयी कविता के शलाका पुरुष हैं, किन्तु पाठ्यक्रम में उनकी दीर्घ कविता "असाध्य वीणा' को ही रखा गया है । यह अकेली कविता उनके कवित्व का उत्तमांश प्रस्तुत करती हुई उनकी भावभूमि और अभिव्यक्ति क्षमता से परिचित कराती है । नागार्जुन मूलत: प्रगतिशील चेतना के कवि हैं । उनकी कविताओं में छायावादी संदर्भ तो यत्र-तत्र ही देखने को मिलता है, किन्तु हरिजन-गाथा जैसी लम्बी कविताओं में उनके यथार्थबोध और प्रगतिशील चेतना को समसामयिक संदर्भो की भूमिका पर भी भली-भाँति देखा जा सकता है । दुष्यनाकुमार का काव्य नयी कविता के प्रतिनिधि कवि का काव्य है, किन्तु यहाँ उनकी 'साये में धूप' कृति में संकलित गजलों को ही पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है । ये गजलें नयी कविता के कवि द्वारा लिखी गयी हैं और हमारे सामाजिक, राजनैतिक और सामान्य व्यक्ति के जन-जीवन के प्रश्नों, समस्याओं और स्थितियों से सम्बद्ध हैं । इनसे सम्बन्धित सामग्री दो इकाइयों में विभक्त है । इसी क्रम में रघुवीर सहाय का नाम भी लिया जा सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि रघुवीर सहाय का काव्य साठोत्तर कवियों में विशिष्ट काव्य है । इनकी जो कविताएँ यहाँ संकलित हैं, वे उनकी समाज सापेक्ष चिन्तना और समसामयिक जीवन की स्थिति का उद्घाटन करती हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण प्रश्नपत्र आधुनिक कविता के क्रमिक इतिवृत्त को संक्षेप में समेटता हुआ हमारे सामने आता है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण द्वितीय प्रश्नपत्र के अन्तर्गत तेईस इकाइयों को समाहित करते हुए पूरे प्रश्नपत्र के लिए अपेक्षित और अनिवार्य सामग्री जुटायी गयी है । सभी आलेख विषय के विद्वानों, सुधी समीक्षकों और चिन्तकों द्वारा लिखे गये हैं । सामग्री अत्यन्त उपयोगी है । यह सामग्री एमए. पूर्वार्द्ध (द्वितीय प्रश्नपत्र) आधुनिक काव्य से सम्बन्धित है जो छात्रों के लिए उपयोगी है और साथ ही आधुनिक कविता के पाठकों और समीक्षकों के लिए भी उपयोगी प्रमाणित होगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है । जिन विद्वानों ने इस प्रश्नपत्र में अपने लेख प्रस्तुत किए हैं, वे सब बधाई के पात्र हैं । जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य समय देकर उपर्युका इकाइयों का लेखन किया है, उन सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभार प्रकट करता है और यह अपेक्षा करता है कि भविष्य में भी वे विश्वविद्यालय का सहयोग करते रहेंगे ।

इकाई - 1 मैथिलीशरण गुप्त का काव्य : 'साकेत' (अष्टम सर्ग, भरत-मिलाप, चित्रकूट-मिलन, कैकेयी-राम संवाद)

काई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कवि परिचय

- 1.2.1 जीवन परिचय
- 1.2.2 कृतित्व परिचय
  - 1.2.2.1 कवि मैथिलीशरण गुप्त
  - 1.2.2.2 नाटककार मैथिलीशरण गुप्त
  - 1.2.2.3 अनुवादक मैथिलीशरण गुप्त
- 1.2.3 गुप्त जी की कृतियाँ
  - 1.2.3.1 काव्य-कृतियाँ
  - 1.2.3.2 नाटक
  - 1.2.3.3 अनूदित कृतियाँ

1.3 अष्टम सर्ग का परिचय

1.4 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या

- 1.4.1 औरों के हाथों से....
- 1.4.2 हे भरत भद्र, अब कहो....
- 1.4.3 यह सच है तो अब लौट चलो.....
- 1.4.4 हा माल मुझको, कहो, न यों.....
- 1.4.5 मेरे उपवन के हरिण आज.....

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.6 सन्दर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने पर आप-

- मैथिलीशरण गुप्त के जीवन का परिचय पा सकेंगे ।
- रचनाकार के व्यक्तित्व के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- कवि-रचनाओं से परिचित हो सकेंगे ।
- कवि के चुने हुए काव्यांश का वाचन कर सकेंगे और उनकी संदर्भ सहित व्याख्या के विषय में जान सकेंगे ।

- आप कवि से संबंधित ऐसे संदर्भ-ग्रंथों को जान सकेंगे जो उसके बारे में आपकी जानकारी को और अधिक बढा सकते है ।

1.1 प्रस्तावना

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि के रुप में प्रसिद्ध हैं। कवि-कर्म के साथ उन्होंने नाटक भी लिखे तथा अनुवाद कार्य भी किया। भारतेन्दु युग से काव्य में खड़ी बोली के प्रयोग की शुरुआत हुई एवं उसे आंदोलन के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उठाया। खड़ी बोली के काव्य में प्रयोग के आन्दोलन में द्विवेदी जी के शिष्य के रुप में गुप्तजी ने अहम भूमिका निभाई, जिसके लिए उन्हें आज याद किया जाता है। द्विवेदी युग के समय भारत पराधीन था। लोगों में साहित्य चेतना के साथ राष्ट्रीय चेतना जगाने का नवजागरण-कार्य गुप्तजी ने किया। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने भारत के भव्य अतीत को पौराणिक-ऐतिहासिक कथानकों, पात्रों द्वारा आधुनिक संदर्भ से जोड़ कर साहित्य सृजन किया। विशेषकर इतिहास और पुराण के उपेक्षित पात्रों एवं चरित्रों तथा उनमें भी नारी चरित्रों का उत्कर्ष उनका लक्ष्य रहा । स्वाधीनता आन्दोलन के साथ संस्कृति एवं साहित्य को जोड़कर खड़ी बोली के आरंभिक काव्यरुप से लेकर 'साकेत' जैसे भाषा के प्रौढ़ प्रयोगवाली विविध रचनाएँ हिन्दी साहित्य जगत को गुप्तजी ने ही दी । भाव और भाषा का अनूठा संगम उनकी रचनाओं में दिखाई देता है ।

1.2 कवि परिचय

1.2.1 जीवन परिचय

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। हिन्दी कविता में खड़ी बोली के सफल प्रयोग के लिए उन्हें याद किया जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शिष्य के रुप में उन्हें ख्याति प्राप्त है। द्विवेदी जी द्वारा उठाये गये खड़ी बोली आन्दोलन को गति देने में गुप्त जी की अहम भूमिका रही है । साथ ही कविता के माध्यम से भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित कर सांस्कृतिक चेतना प्रज्वलित करने का श्रेय भी उनको दिया जाता है। उन्होंने इतिहास-पुराण के उपेक्षित पात्रों और उसमें भी विशेषकर नारी पात्रों का उत्कर्ष अपने काव्यों के द्वारा किया है। भारत के जन -जन में संस्कारों का सिंचन हो, मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हो, राष्ट्रीय भावना प्रबल हो, सारे भेदभाव और असमानता दूर होकर एकता और समानता के संदेश का संचार हो, इसके लिए अपनी कलम से गुप्तजी साहित्य-सृजन करते रहे।

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संवत 1943 में श्रावण शुक्ल द्वितीया सोमवार, 3 अगस्त सन 1886 को हुआ था । गुप्तजी के जन्म स्थान को लेकर विवाद है । उनका आदि स्थान बुंदेलखंड में स्थित पदमावती बंचाय माना जाता है । कुछ विद्वानों ने उनका जन्म स्थान चिरगांव (झाँसी) माना है । जन्म के समय उनका नाम लाला मदनमोहन जू' रखा गया था । पिताजी ने उनका नाम श्री मिथिलाधिप नन्दिनीशरण रखा था, जो

बाद में मैथिलीशरण गुप्त नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसके अलावा उन्होंने 'रसिकेश', 'रसिक बिहारी', 'रसिकेन्द्र', 'मधुप', 'भारतीय', 'स्वदेश' आदि नामों पर प्रसिद्ध रचनायें लिखी थीं, पर प्रसिद्ध 'गुप्त जी' के नाम से ही हुए।

गुप्तजी के पिता का नाम सेठ रामचरण था, जो घी का पैतृक व्यवसाय करते थे । माता का नाम काशीबाई था, जिनके प्रति गुप्तजी को अपार स्नेह था । गुप्तजी पाँच भाइयों में तीसरे क्रम में थे-महरामदास, रामकिशोर गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त तथा चाराशीला शरण गुप्त । गुप्तजी का आदर्श परिवार था । बचपन में नटखट स्वभाव होने के बावजूद वे तीव्र एवं प्रखर बुद्धि के धनी थे । रामभक्ति उन्हें लहू के संस्कारों एवं परिवार से प्राप्त हुई थी । नारी के प्रति कोमल भावना, स्वतंत्र प्रवृत्ति, परोपकारभाव, निर्मल स्वभाव आदि उनके चरित्र-निर्माण की विशेषताएँ थीं ।

प्रारंभिक शिक्षा गाँव के स्कूल में ही हुई । पिताजी अंग्रेजी पढ़ा-लिखाकर डिप्टी कलेक्टर बनाना चाहते थे, परन्तु गुप्तजी ने जीवन की पाठशाला से शिक्षा प्राप्त करना उचित समझा । घर पर पढ़ाई हुई, जिससे अंग्रेजी की पढ़ाई विशेष रही । घर पर ही गुप्तजी ने संस्कृत, हिन्दी तथा अनूदित रचनाओं को पढ़कर अपनी ज्ञानार्जन-प्रक्रिया को सक्रिय रखा । गुप्तजी का तीन बार विवाह हुआ । तीसरी पत्नी सरयू देवी से उर्मिलाचरण पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । पहली दो पत्नियों एवं उनकी संतानों की मृत्यु से गुप्तजी को गहन आघात का अनुभव हुआ था । सरयू देवी उनके सुख-दुःख में सहभागी बनी । गुप्तजी ने जीवन में कई दुःखों का सामना 'रामकृपा' मानकर किया । 1935 के बाद उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ । सामाजिक सद्भाव, मर्यादित प्रेम, ग्रामीण जीवन, पारिवारिक सामंजस्य आदि उनके व्यक्तित्व की ऐसी विशेषताएँ जो उनके जीवन से अटूट रुप से जुड़ी हैं ।

सादा जीवन और उच्च विचार गुप्तजी का मूल मन्त्र रहा है, जिसकी प्रेरणा उन्हें गांधी जी से मिली थी । सादगी, सौम्यता, सरलता, मधुरता उनके व्यक्तित्व के अभिन्न गुण थे । इसी कारण उनके व्यक्तित्व में असाधारण आकर्षण था । छायावादी कवयित्री महादेवी ने गुप्तजी के बारे में लिखा है कि- "अपने रुप और वेशभूषा दोनों से इतने राष्ट्रीय है, कि भीड़ में मिल जाने पर शीघ्र ही खोजे नहीं निकाले जा सकते । जो विशेषताएँ उन्हें सबसे भिन्न कर देती हैं वह है उनकी बँधी हुई दृष्टि और मुक्त हँसी (हंस-मार्च-1939 पृ. 49) । सामाजिकता, विनोद-प्रेम और सद्रावना, प्रकृतिप्रेम, अनुभूति-निष्ठता उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी । अनुभूतिशीलता होते हुए भी गुप्त जी स्वकेन्द्रित नही थे, वे समाजलक्षी थे ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी गुप्तजी के काव्य-गुरु थे । द्विवेदी जी की प्रेरणा से 'सरस्वती' पत्रिका में खड़ी बोली में सर्वप्रथम गुप्तजी की 'हेमन्त' पद्यरचना छपी । उसके पश्चात गुप्तजी नई काव्यभाषा के कवि बने । आचार्य द्विवेदी जी के आदेशानुसार उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका में ही लिखा और द्विवेदीजी ने उनकी प्रत्येक रचना का संशोधन किया । अधिक संसर्ग से वे उनके पट्ट शिष्य बन गये ।

द्विवेदीजी के अलावा गुप्तजी का कई साहित्यकारों के साथ संबंध रहा । जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' का प्रथम संस्करण गुप्तजी ने प्रकाशित किया । श्री बहिस्पत्यजी ने 'जयद्रथ' पढकर गुप्तजी को 'उर्मिला विरह' खण्डकाव्य लिखने को कहा । राजा रामपाल सिंह ने सन् 1912 में 'भारत-भारती' की रचना हेतु प्रेरणा दी । महादेवी वर्मा के कहने पर ने निराला जी, इलाचन्द्र जोशी, गंगाप्रसाद पाण्डेय के सहयोगी बने । इनके अलावा गुप्तजी के वृन्दावनलाल वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पन्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', बनारसीदास चतुर्वेदी, अज्ञेय, जैनेन्द्र, डा. नगेन्द्र आदि से भी घनिष्ठ मधुर संबंध रहे ।

भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की लड़ाई में सक्रिय भाग लेने के कारण 17 अप्रैल सन् 1914 को गुप्तजी को जेल जाना पड़ा । उन्हें झाँसी की जेल में रखा गया । बाद में कई जेलों में बदला गया । वे अपना अधिक समय कताई में बिताते थे । जेल में ही उन्होंने 'अजिन 'कुणालगीत', तथा 'जय भारत' के कुछ अंश लिखे । कारागार में उनका आचार्य नरेन्द्र देव और गांधीजी से संपर्क व घनिष्ठ संबंध हुआ ।

1.2.2 कृतित्व परिचय

हिन्दी साहित्यकारों में गुप्तजी लगभग पचास वर्षो तक छाये रहे । गुप्तजी का काव्यारम्भ 'भारत मित्र', वैश्योपकारक, 'राघवेन्द्र', 'पाटलिपुत्र', 'मोहिनी' और 'सरस्वती' के माध्यम से हुआ। वे 'विशालभारती', 'सुधा' एवं 'माधुरी' पत्रिका के संपर्क में भी रहे। उनकी रचनाएँ 'आजकल', 'नईधारा', 'नया समाज', 'नवनीत', 'धर्मयुग', 'प्रतीक' आदि पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई ।पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'नेहरा अभिनन्दन ग्रंथ', 'मुंशी अभिनन्दन ग्रंथ', 'राजेन्द्र, जगजीवनराम अभिनन्दन ग्रंथ', 'काशी विद्यापीठ स्मारक ग्रंथ, 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ' आदि में आपकी पद्य रचनाएँ संकलित की गयीं। गुप्तजी का रचनाकर्म सन् 1901 से प्रारंभ होकर सन् 1960 में उनकी काव्य रचना 'रत्नावली' के प्रकाशन पर समाप्त होता है । इसी काल के दौरान गुप्तजी ने महाकाव्य, खण्डकाव्य, पद्यनाटक, अनुवाद, आख्यान तथा मुक्तक एवं फुटकर रचनाएँ की । गुप्त जी का कृतित्व व्यापक एवं विस्तृत है । पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने गुप्तजी के काव्य- विकास को भाषा की दृष्टि से बारह-बारह वर्ष युग में विभाजित कर तीन विभागों में बाँटा है । 'भारत भारती' का रचनाकाल सिद्धावस्था है और 'साकेत' तथा 'यशोधरा' सृजनावस्था की रचनाएँ हैं । प्रथम चरण है-सन् 1901 से 1910 का जिसमें गुप्तजी हिन्दू राष्ट्रवाद तथा पुनर्जागरण से प्रेरणा ग्रहण कर खड़ी बोली में काव्य रचना करने का प्रयास करते है । दूसरा चरण सन् 1910 से 1925 का है, जो गुप्तजी की सृजन प्रक्रिया की निर्माणावस्था रही । इसी समय में गुप्तजी ने वर्णनात्मक एवं रूपात्मक काव्य लिखे । इसी क्रम में 'पंचवटी' उल्लेखनीय है । अधिकांश अनुवाद कार्य भी इसी समय में हुआ । उनकी आदर्शवादी, पुनरुत्थानवादी, नीतिवादी, राष्ट्रीयतावादी जैसी काव्य-प्रवृतियाँ स्पष्ट हुई । सन् 1926 से 1937 के बीच का समय (तृतीय

चरण) गुप्त जी के उत्कर्ष का काल माना जाता है । इस युग में अधिकांश चरित्रप्रधान महाकाव्य एवं वस्तु-व्यंजक रचनाएँ लिखी गयी । अपनी रचनाओं में उन्होंने भारतीय संस्कृति के उत्थानमूलक एवं प्रगतिशील स्वरूप की रचना की । इसी समय तप, त्याग, कर्मण्यता एवं करुणा उनके जीवनदर्शन में अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं । इसी समय मानवता के आदर्श एवं नारी चरित्र की उब स्थिति पर कवि की दृष्टि केन्द्रित होती है, सांस्कृतिक भावना एवं राष्ट्रीय चेतना प्रबुद्ध होती है । इसके बाद के काल को गुप्तजी की रचनाओं का प्रौढकाल कहा जा सकता है । इसी समय गुप्तजी की ख्याति चरम स्थिति को प्राप्त करती है ।

गुप्तजी की काव्य-सर्जना में उत्तरोत्तर विकास दिखाई देता है । मानसिक और कलात्मक दोनों स्तर पर कवि, सक्षम बनता जाता है । कवि की युग चेतना, सांस्कृतिक भावना, जीवन दर्शन तथा काव्यकला क्रमश: उत्कर्षाभिमुख रही है ।

1.2.2.1 कवि मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी ने प्रबंध काव्यों की रचना की है जिनमें 'साकेत' एवं 'जयभारत' महाकाव्य के रूप में ख्यात है । उन्होंने अनेक खण्डकाव्यों की भी रचना की ।

पौराणिक खण्डकाव्यों में - द्वापर, नहुष, शक्ति आदि प्रमुख है।

रामायण - महाभारत आधारित - पंचवटी, बकसंहार, वनवैभव, सैरन्ध्री, हिडिम्बा ।

ऐतिहासिक काव्यों में - सिद्धराज, रंग में भंग ।

चरित्रात्मक खण्डकाव्यों में - यशोधरा, विष्णुप्रिया, रत्नावली ।

वर्णनात्मक एवं मुक्तक काव्य रचना भी गुप्तजी ने की है । 'पद्य प्रबंध' और 'मंगल घट' में इनकी कतिपय रचनाएँ संकलित हुई है । कुछ 'सरस्वती पत्रिका' में छपी है जैसे, 'स्वर्गीय संकीर्तन', 'ग्राम्यजीवन', 'दो दृश्य', 'प्रयाग की प्रदर्शिनी', 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 'सुकवि-संकीर्तन', 'राज्याभिषेक', 'पूर्वप्रभा', 'हिन्दू विश्वविद्यालय', 'मृत्यु', 'संबोधन', 'भारतभारती', 'किसान', 'पृथ्वीपुत्र' आदि ।

1.2.2.2 नाटककार मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी ने नाटकों की रचना भी की है । उनकी पौराणिक नाटकों में 'तिलोत्तमा' और 'चन्द्रहास' है । उनका रामायणीय पद्य नाटयलीला' अप्रकाशित हैं । उनका बुद्धकालीन पद्य नाटक 'अनघ' है । इसके अलावा गीतिनाटक की रचना भी की है, जो इस प्रकार हैं- 'वैतालिक, 'स्वदेश संगीत', 'मंगलघट' राष्ट्रीय हैं, जबकि 'झंकार' एवं 'संवेदना' आध्यात्मिक हैं ।

1.2.2.3 अनुवादक मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी ने काव्य और नाटक के अलावा कई रचनाओं के अनुवाद करने का कार्य भी किया है । एक सफल साहित्यकार के साथ अच्छे अनुवादक के रूप में भी वे प्रसिद्ध हैं।

उनकी बंगला भाषा से अनूदित रचनाएँ हैं- 'विरहिणी व्रजांगना', 'वीरग़ंना', 'मेघनाद वध' 'प्लासी का युद्ध'। 'गीतामृत' नामक अनूदित रचना में संस्कृत से गीता के द्वितीय अध्याय का अनुवाद है । ऐसे बहुमुखी प्रतिभाशाली साहित्यकार गुप्तजी को 'यशोधरा' और 'द्वापर' प्रकाशित होने तक उन्हें युग प्रवर्तक कवि, प्रतिनिधि कवि, राष्ट्रकवि, द्विवेदी युग के 'शीर्षस्थ कवि', महावीर के प्रसाद, आधुनिक युग के वैतालिक आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है । 50 वें वर्ष में अनेक स्थानों पर उनकी स्वर्ण-जयंती मनाई गई । सन् 1936 में गांधीजी के कर-कमलों से 'मैथिलीशरण काव्यमान ग्रंथ' भेंट कराया गया, जो काशी की तुलसी मीमांसा परिषद की ओर से था। गुप्तजी को कई पुरस्कारों से भी पुरस्कृत किया गया । सन् 1937 में मंगला प्रसाद पारितोषिक, सन् 1952 में अंजलि और अर्ध्य, हिडिम्बा और पृथ्वीपुत्र के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत, 1946 में करांची अधिवेशन में 'साहित्यवाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया गया। 1948 में उन्हें आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट की उपाधि प्रदान की गयी । सन् 1954 में भारत सरकार द्वारा पदमभूषण तथा गांधीजी के द्वारा लोकमत से राष्ट्रकवि की उपाधि, सन् 1952 में राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के सदस्य के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ। ऐसे महाकवि, राष्ट्रीय चेतना को जगानेवाले राष्ट्रकवि का निधन 11 दिसम्बर 1964 को हुआ ।

1.2.3 गुप्तजी की कृतियाँ

वैसे गुप्तजी के व्यक्तित्व की चर्चा के दौरान उनके रचनाकर्म का परिचय प्राप्त किया जा चुका है । यहाँ उनकी प्रमुख रचनाओं का काल क्रमानुसार संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(1) **रंग में भंग (सन् 1909) :-** गुप्तजी का यह प्रथम खण्डकाव्य है जिसका प्रकाशन सन् 1909 में हुआ । खण्डकाव्य की विषय वस्तु ऐतिहासिक है । खड़ी बोली का स्थिर रुप न होने के कारण भाषा काव्योपयोगी नहीं मानी जाती थी, ऐसे समय गुप्तजी ने इस काव्य का सृजन किया । प्रतिरोध की भावना से समाज व राष्ट्र को कितना नुकसान होता है, वह चितौड़ के नरेशों के आपसी द्वन्द्व के माध्यम से बताया गया है ।

(2) **जयद्रथ वध (सन् 1910) :-** सन् 1910 में प्रकाशित गुप्तजी का यह दूसरा खण्डकाव्य है । यह महाभारत की घटना पर आधारित वीर रस प्रधान रचना है

(3) **भारत भारती (सन् 1912) :-** सन् 1912 में प्रकाशित इस काव्य ने कवि को राष्ट्रकवि के रुप में ऊँचे पद पर बिठाया । भारत की अवनत दशा, उसके कारणों की खोज एवं भव्य अतीत के गौरवपूर्ण गान से उन्होंने नवजागरण का कार्य सम्पन्न किया ।

(4) **किसान (सन् 1917) :-** भारतीय कृषक की दुर्दशा का चित्रण करते हुए कृषक आन्दोलन की पीठिका के रूप में इस काव्य की भूमिका रही है ।

(5) **पंचवटी (सन् 1925) :-** प्रस्तुत कृति में अपनी अनन्य रामभक्ति को वर्णित करते हुए राम के वनवास के जीवन के चिरपरिचित सूर्पणखा प्रसंग को नवीन उद्रावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है । गुप्तजी ने सूर्पणखा प्रसंग को अधिक मानवीय, रोचक, सजीव एवं आकर्षक बनाया है। गुप्तजी की रचनाओं में 'पंचवटी' का विशिष्ट स्थान है।

(6) **स्वदेश संगीत (सन् 1925) :-** यह भारतवासियों को जागरण का सन्देश देने के लिए नूतन और पुरातन विचारों का पारस्परिक संबंध स्थापित करते हुए राष्ट्रभक्ति वाली कविताओं का संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 1925 हुआ था ।

(7) **हिन्दू (सन् 1928) :-** यह काव्य हिन्दुओं की दुर्दशा का चित्रण प्रस्तुत करता है

(8) **शक्ति (सन् 1928) :-** पौराणिक देव-दानव संग्राम से संबंधित इस खण्डकाव्य में व्यष्टिगत शक्ति के एकत्रीकरण से महान शक्ति का निर्माण हो सकता है-इस बात का संदेश दिया गया है। यह काव्य सन् 1928 में प्रकाशित हुआ था ।

(9) **सैरन्धी :-** विकसित काव्य-शिल्प में निर्मित यह काव्य महाभारत की उस अज्ञातवास की घटना पर आधारित है, जिसमें द्रौपदी सैरन्धी नाम धारण कर रहती है। इसमें कीचक-द्रौपदी का प्रसंग करुण रस की प्रधानता के साथ चित्रित है।

(10) **वन वैभव (सन् 1928) :-** महाभारत की पांडवों एवं कौरवों की आपसी लड़ाई के परिप्रेक्ष्य में भारत में विदेशी शासक द्वारा आपस में फूट डालकर हिन्दू-मुस्लिम के बीच जो लड़ाई करवायी जाती है, उसी के संदर्भ में इस काव्य की विषय-वस्तु को रखा गया है। गांधीजी के बताये रास्ते पर चलकर सांप्रदायिक विद्वेष का समाधान ढूंढ़ने की कोशिश करने वाला यह काव्य सन् 1928 में प्रकाशित हुआ था ।

(11) **बक संहार (सन् 1928) :-** महाभारत पर आधारित इस खण्डकाव्य में नारी-जीवन की महिमा एवं जीवनोत्सर्ग वर्णित है।

(12) **विकट भट (सन् 1929) :-** यह गुप्त जी की प्रथम अतुकान्त रचना है, जो जोधपुर के राजा सवाई मानसिंह को केन्द्र में रख कर रची गयी है । इस ऐतिहासिक काव्य का प्रकाशन सन् 1929 में हुआ ।

(13) **गुरुकुल (सन् 1929) :-** सन् 1929 में प्रकाशित इस काव्य में सिख गुरुओं के जीवन चरित्र का वर्णन करते हुए हिन्दू मुस्लिम एवं सिक्खों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है ।

(14) **साकेत (सन् 1932) :-** सन् 1932 में प्रकाशित इस प्रबंध काव्य में उर्मिला, कैकेयी जैसे नारी पात्रों के उत्कर्ष एवं भरत सहित तीनों के चरित्रों का उज्ज्वल अंकन करने का प्रयास किया गया है । कवीन्द्र-रवीन्द्र के 'काव्येर उपेक्षिता' शीर्षक से प्रभावित होकर तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के उर्मिला विषयक लेख से प्रेरित होकर इस काव्य का सृजन किया गया। 'साकेत' का घटना-केन्द्र

साकेत है । राम के वनगमन की घटना साकेत में घटती है । उर्मिला के विरह-वर्णन का केन्द्र भी साकेत है । उर्मिला एवं कैकेयी को विशेष महत्व देने के बावजूद राम के चरित्र में उनकी जीवन साधना और जीवनदर्शन की सफल अभिव्यक्ति हुई है । द्विवेदी युगीन सांस्कृतिक विकास के प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में 'साकेत' को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

(15) **यशोधरा (सन् 1932) :-** यह सन् 1932 में प्रकाशित रचना है । इसमें यशोधरा के चरित्र की गरिमा, नारी की शांति और उसकी करुणा स्थिति की अभिव्यक्ति की गयी है । इतिहास प्रसिद्ध घटना पर आधारित इस खण्डकाव्य में उत्तरार्ध में गुप्तजी ने कल्पनामयी सृष्टि की है ।

(16) **द्वापर (सन् 1936) :-** सन् 1936 में प्रकाशित श्रीमदभागवत पर आधारित यह खण्डकाव्य कृष्ण चरित्र की सापेक्ष अभिव्यक्ति है ।

(17) **सिद्धराज (सन् 1936) :-** यह सन् 1936 में प्रकाशित गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के जीवनवृत पर आधारित ऐतिहासिक खण्डकाव्य है ।

(18) **नहुष (सन् 1940) :-** यह सन् 1940 में प्रकाशित गुप्तजी का महत्वपूर्ण पौराणिक खण्डकाव्य है । मनुष्य जब तक पूर्णता प्राप्त न कर ले, तब तक वह अपनी दुर्बलताओं के कारण बार-बार उठता-गिरता है-इस सत्य को कवि ने नहुष के माध्यम से अभिव्यक्त किया है ।

(19) **जयभारत (सन् 1952) :-** यह महाभारत पर आधारित सन् 1952 में प्रकाशित महाकाव्य है।

(20) **विष्णुप्रिया (सन् 1957) :-** प्रस्तुत कृति सन् 1957 में प्रकाशित हुई है। इस वर्णनात्मक खण्डकाव्य में चैतन्य महापुरुष की पत्नी एवं उनकी सहधर्मिणी विष्णुप्रिया का चरित्र काव्यबद्ध किया गया है । इसमें विष्णुप्रिया के उपेक्षित चरित्र का उत्कर्ष प्रधान है ।

(21) **रत्नावली सन् 1960 :-** यह सन् 1960 में प्रकाशित तुलसी की पत्नी रत्नावली पर आधारित मुक्तक काव्य है । अनेक ऐसे मुक्तक एवं काव्यों के संग्रह तथा काव्य गुप्तजी ने रचे हैं ।

1.2.3.2 नाटक

'तिलोत्तमा' (सन् 1916 में प्रकाशित)
गुप्तजी के पौराणिक नाटक : बुद्धकालीन पद्यनाट्य-
'अनघ' - (सन 1925 में प्रकाशित)

1.2.3.3 अनूदित कृतियाँ

गुप्तजी ने विरहिणी 'ब्रजलंना', 'वीरांगना', 'मेघनाद वध' तथा 'प्लासी के युद्ध' का बंगला भाषा से अनुवाद किया था । उन्होंने संस्कृत भाषा से श्रीमदभगवदगीता के दूसरे अध्याय का अनुवाद 'गीतामृत' नाम से किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि गुप्त जी एक सफल कवि ही नही, वरन एक सफल नाटककार एवं अनुवादक भी है।

1.3 अष्टम् सर्ग का परिचय

अष्टम सर्ग गुप्तजी की प्रबंध कृति 'साकेत' का एक महत्वपूर्ण सर्ग है । कवि ने 'रामायण' के जिस प्रसंग को आधार बना कर प्रस्तुत काव्य की रचना की है, यह सर्ग उस प्रसंग की महत्वपूर्ण कड़ी है । इस सर्ग की मूल-संवेदना चित्रकूट प्रसंग से संबद्ध है, जब भरत अपने परिवार, सेना एवं राज्य के नागरिकों के साथ चित्रकूट में राम से मिलने आते हैं, जिससे कि वे राम को 'पुन: अयोध्या ले जा सकें। भरत-मिलाप, चित्रकूट एवं कैकेयी राम संवाद इस सर्ग की महत्वपूर्ण घटनायें है, जिन्होने इस सर्ग को मर्म स्पर्शी, भावपूर्ण एवं प्रभावशाली बना दिया है। यह सर्ग काव्य कथा के विकास की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है, पात्रों के चरित्रोदघाटन की दृष्टि से भी उतना ही उल्लेखनीय है । यही वह सर्ग है, जिसमें सीता को अपने गार्हस्थ्य सुख की अभिव्यक्ति करने, उर्मिला को अपने पति के सम्मुख भावाभिव्यक्ति करने, भरत के द्वारा राम के सम्मुख अपना निर्दोष पक्ष प्रस्तुत करने, कैकेयी को अपना पश्चाताप करने तथा अपराध स्वीकार करने का अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ है। यह सर्ग प्रत्येक पात्र के चरित्र के उज्जवल पक्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसलिये यह 'साकेत' का एक महत्वपूर्ण सर्ग है।

1.4 काव्य-वाचन और सदंर्भ सहित व्याख्या

1.4.1 औरों के हाथों से यहाँ नहीं पलती हूँ,

औरों के हाथों से यहाँ नहीं पलती हूँ ।
अपने पैरों पर आप खड़ी चलती हूँ ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुचि फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ ।
तनु -लता-सफलता-स्वाद आज हो आया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ।
जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं,
जी भरकर उनको देख जुड़ा जाते है ।
जब देव कि देवर विचर-विचर आते हैं,
तब नित्य नये दो -एक द्रव्य लाते है ।
उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ।
किसलय कर स्वागत हेतु हिला करते हैं
मृदु- मनोभाव-सम सुमन खिला करते हैं ।

डाली में नव फल नित्य मिला करते हैं
तृण-तृण पर मुक्ता-भारत झिला करते है ।
निधि खोल दिखला रही प्रकृति निज माया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ।
कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा ?
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा ।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन मे ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा ।
वह वधू जानकी बनी आज यह जाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया ।

संदर्भ :

प्रस्तुत अंश 'साकेत' के अष्टम सर्ग से लिया गया है। इसके रचनाकार मैथिलीशरण गुप्त हैं और उनकी यह सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रबंध कृति है। गुप्तजी द्विवेदी युग के प्रमुख कवि हैं। खड़ी बोली का काव्य में प्रयोग कर द्विवेद्वी जी द्वारा शुरु किये गये खड़ी बोली आन्दोलन में सशक्त भूमिका निभाने वाले कवि के रुप में उन्हें ख्याति प्राप्त है।

प्रसंग :

उक्त अंश में राम-सीता लक्ष्मण सहित वनवास के दौरान चित्रकूट में पर्णकुटी बनाकर रहते थे, उस समय वनवास में सीता को राज-भवन सदृश या उससे अधिक खुशी प्राप्त होती है। सीता को पति और देवर के संग प्रकृति की गोद में जो नैसर्गिक जीवन व्यतीत करने का सुनहरा मौका मिला है, उस समय के सीता के मधुर भावों का अंकन कवि गुप्त जी ने इन शब्दों में किया है । सीता स्वमुख से अपनी प्रसन्न चित्तावासव्था की अभिव्यक्ति करती है ।

व्याख्या :

वैसे सीता राजकुमारी थी और राम के साथ विवाहोपरान्त राजा की पत्नी रानी बनती है। दोनों स्थितियों में राज परिवार में मिलनेवाले सुखों की वह भोक्त्री थी । उसी सीता को राम के साथ (विवाह के बाद तुरन्त) वन जाना पड़ता है । हालाँकि सीता राम के साथ वन जाने का निर्णय खुद लेती है । कहाँ राज-भवन का सुखभरा जीवन-जहाँ सब कुछ सहज सुलभ है । परिश्रम की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और कहाँ वन का कंटक एवं समस्याओं से भरा जीवन ! ऐसी स्थिति में भी सीता अपने पति एवं देवर के साथ होने के कारण वन में राज-भवन सदृश खुशी प्राप्त कर रही है । वस्तुत: खुशी या सुख का संबंध बाह्य भौतिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा मन से अधिक होता है । सीता के मन की प्रसन्नता का रहस्य समझने पर उसकी अभिव्यक्त खुशी भी समझ में आ जाती है । वन मे पेड़ पौधों, फलों-फूलों के साथ नैसर्गिक जीवन जीने में सहज रूप से श्रम हो जाता है । स्वाश्रय की भावना पुष्ट होती है । तनु-लता की सफलता का स्वाद सीता समझती है। तन-मन की स्वस्थता से सुखी जीवन की उपलब्धि राजभवन के सुख

से अधिक मूल्यवान है। अत: सीता कहती है मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया। अर्थात यहाँ वन में भी उन्हें राजभवन के सहश सुख ही प्राप्त हो रहा है। वन में पति और देवर अपना दैनिक कर्तव्य निभाते हुए सायं जब लौटते हैं, तब सीता के लिए साथ में कुछ ले आते हैं। एक साथ पत्नी और भाभी का सुख प्राप्त कर सीता का विनोद समाता नहीं है । सुबह फूलों का खिलना मानों हमारा स्वागत करना होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मृदु मनोभाव जैसे खिल रहे हों । शाखाओं पर नये फलों का झूलना, तृण पर जमे ओस कणों पर सूरज की किरणें पड़ती हैं, तथा मानों किसी ने मोतियाँ बिखेरी हों, ऐसा लगता है। प्रकृति अपना वैभव-निज माया जो कि क्षणिक होता है-दिखलाती है । ऐसी खुशी कुटिया में रहने के कारण ही मिली है । विवाह के बाद तुरन्त वन जानें का प्रसंग अधिक दुख देने वाला था । लोगों के द्वारा कहा गया होगा कि क्या भाग्य है सीता के? ससुराल आते ही वनवास? ऐसी स्थिति में चारों ओर से शोक एवं व्यथामय वातावरण से सीता के मन को भय प्राप्त होना स्वाभाविक है । परन्तु सीता यहाँ स्पष्ट कहती है कि-कौन कहता है कि-मेरे भाग्य ने मुझे ठगा है? वह तो सुनकर उत्पन्न होना वाला भय था जो अब दूर हो गया है । स्वाश्रय जीवन का प्रशिक्षण, प्राकृतिक जीवन की प्रसन्नता मनुष्य को सहज, सरल बना देती है । अत: सीता कहती है- "कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा, वन में ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा। 'असल गृहस्थ जीवन का अनुभव सीता को कुटिया में, वनवासी जीवन से मिला है । अत: अब वह वधू से जाया बन गई है ।

विशेष:

1. "मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया" पंक्ति प्रस्तुत काव्यांश की ध्रुव पंक्ति के रुप में आई है जिससे वन्यजीवन से, प्रकृति के साथ निकट संबंध से उत्पन्न लगाव से सीता के मन की प्रसन्नता को व्यक्त किया गया है, जो किसी राजभवन के सुख-वैभव से कहीं अधिक है ।
2. 'वन में ही गार्हस्थ्य जगा है मेरा" पति और देवर के साथ प्राकृतिक परिवेश में गृहस्थ जीवन की सार्थकता का रहस्य एवं परस्पर स्नेह का सौन्दर्य सीता को समझ में आया ।
3. 'निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया" में प्रकृति के अपार एवं वैविध्यपूर्ण रुप का पता चलता है ।
4. बड़े ही सरल एवं सहज ढंग से धरणीसुता जानकी के प्रकृति एवं पारिवारिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है।
5. सरल भाषा की सहजता को कायम 'रखते हुए कवि ने उपमा एवं रुपक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है, जैसे- 'किसयल-कर', 'मनोभाव सम सुमन' ।

1.4.2 हे भरत भद्र, अब कहो.....

'हे भरत भद्र, अब कहो अभीप्सित अपना,'

सब सजग हो गये, भंग हुआ ज्यों सपना ।
हे आर्य, क्या रहा भरत अभीप्सित अब भी?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी?
पाया तुमने तक-तले अरण्य बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा?
तनु तड़प-तड़पकर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा?
हा! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा ।
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा ।
अब कौन अभीप्सित और आर्य वह किसका?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका ।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा?

संदर्भ :

प्रस्तुत अंश द्विवेद्वी युग के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध प्रबंध रचना 'साकेत' से लिया गया है । 'साकेत' प्रबंध काव्य में भरत की व्यथा, कैकेयी के अनुताप एवं उर्मिला की विरहाभिव्यक्ति के माध्यम से कवि ने इन तीनों पात्रों का उत्कर्ष करने का प्रयास किया है। तीनों के उज्जवल चरित्रों का अंकन मार्मिक ढंग से किया गया है।

प्रसंग :

कैकेयी के वर मांगने के कारण, पिता दशरथ की आज्ञा-पालन हेतु राम, सीता और लक्ष्मण सहित वनगमन करते है। पुत्र-वियोग में दशरथ की तड़पकर मृत्यु होती है। यह सब भरत की अनुपस्थिति में होता है। भरत के लौटने पर जब अपनी माता कैकेयी के बारे में उसे पता चलता है, तब भरत बहुत दुःखी होता है। वह माँ को भावावेग में बहुत कुछ सुनाकर राजगद्दी पर बैठने से मना करता है। अपने अनन्य भ्रातृ प्रेम के कारण वह राम को मनाकर अयोध्या लाने के लिए चित्रकूट जाता हैं। वहाँ जब राम भरत से प्रश्न करते हैं कि-"अब कहो अभीप्सित अपना तब भरत अपनी व्यथा पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हैं, जो उक्त अंश में अभिव्यक्त की गयी है।

व्याख्या :

चित्रकूट में सभा बैठती है । भरत, राम लक्ष्मण सब मौन थे । मौन भंग करते हुए राम भरत से प्रश्न पूछते हैं- "हे भरत भद्र, अब कहो अभीप्सित अपना" । राम के शब्द पूरी सभा में प्रसारित होते ही सब सजग हो जाते है मानों कोई स्वप्नभंग हुआ हो । भरत वैसे भी दुःखी था । राम के प्रति भरत का अगाध स्नेह था । अत: राम ने भरत को आते ही आलिंगन देकर उसे शान्त किया था। भरत को आशा थी कि राम जरूर लौटेंगे । सभा के सामने राम ने जब प्रश्न किया, तब भरत के अंतर की पीड़ा

दुबारा फूट पडी । भरत के लिए अभीप्सित तो राम हैं, पर यहाँ राम ही जब प्रश्न करते हैं कि अपना अभीप्सित बताओ, तब भरत के भावों का बाँध टूट जाता है । अब भावों का आवेग इतना प्रबल है कि वह रोके रुकता नहीं है । 'अभीप्सित' शब्द को यहाँ अनेक संदर्भ से जोड़कर भरत अभीप्सित के अर्थ की सार्थकता को समझाते है। क्या सचमुच भरत के लिए अब भी कुछ अभीप्सित बचा है। राजा के लिए अंकटक राज्य की प्राप्ति अभीप्सित होता है, लेकिन भरत के लिए राज्य प्राप्ति का लक्ष्य नहीं था। अत: पीडा की अभिव्यक्ति सरल किन्तु वक्र ढंग से की है । अकंटक राज्य मिलने पर भी भरत के लिए अब क्या कुछ अभीप्सित बचा है । आपने (राम ने) वन पाया और मैंने राज्य- अब क्या अभीप्सित बचा है? वैसे सत्ता के लिए भाई-भाई के बीच खून की नदियाँ बही है, इतिहास गवाह है, लेकिन भरत के लिए सत्ता से ज्यादा भाई का स्नेह है । अत: वह कहता है कि इसी सत्ता से मेरी माँ कैकेयी ने आपको वन भेजा, जिसके कारण पिता की पुत्र-वियोग में तड़प-तड़पकर मृत्यु हुई । क्या भला भाई और पिता को गंवाने के बाद भी मेरे लिए कुछ अभीप्सित शेष रहा है? हाँ इसी अपयश की प्राप्ति हेतु मेरा जन्म हुआ था । मेरी ही जननी के हाथों मुझे भाई और पिता की हत्या के अपयश का कलंक जो लगना था । अपयश के कलंक को मौत से अधिक माना गया है । सज्जन अपयश के बजाय मृत्यु को वरेण्य मानते हैं, लेकिन भरत के भाग्य में तो वह भी नहीं है ।

भरत की पीड़ा भरत ही समझ सकता है । अत: वह कहता है कि इन परिस्थितियों में मेरे लिए क्या अभीप्सित है? यह समझ नहीं पाता हूँ । अत: आप ही बता दें मेरा अभीप्सित । भ्रष्ट मन से निकले भ्रष्ट विचार जो माता कैकेयी के थे, जिसने पूरे परिवार को तितर-बितर कर दिया, नष्ट कर दिया । तत्पश्चात अब जीवन का क्या मतलब है? अब मैं दूसरों को नहीं, अपना मुँह खुद को भी नहीं दिखा सकता हूँ। भरत की असमंजस की स्थिति भावावेश से उत्पन्न है, जिसमें वे कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहे हैं।

विशेष :

(1) 'अभीप्सित' शब्द को विविध सदंर्भ से जोड़कर भरत की व्यथा की अभिव्यक्ति मार्मिक ढंग से की गई है ।

(2) भरत के चरित्र का उत्कर्ष हुआ है ।

(3) भरत का अपने बड़े भाई राम के प्रति अनन्य प्रेम एवं समर्पित भ्रातृभाव की अभिव्यक्ति हुई है ।

(4) गुप्तजी के शब्दप्रयोग के कौशल से काव्यांश में अर्थगौरव का सफल निर्वाह हुआ है।

1.4.3 यह सच है तो अब लौट चलो

'यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को ।"

चौंके सब सुनकर अटल कैकेयी-स्वर को ।
सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृत्त यथा विधु-लेखा ।
बैठी थी अचल तथापि असंख्यतरंगा,
वह सिंही अब भी हहा मोमुखी गंगा-
"हा जनकर भी मैने न भरत को जाना,
सब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह माना ।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया ।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर अबलापन के लिए कौन-सा पथ है?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो ।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ?
राई भर भी- अनुताप न करने पाऊँ?"
थी सनक्षत्र शशि-निशा ओस टपकाती.
रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती ।
उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी, ।
"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी ।
जल-पंजर गत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे ।
पर था केवल क्या ज्वलित भाव हो मन में?
क्या शेष बचा था कुछ न और इस जन में?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य-मात्र, क्या तेरा?
पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा?
थूकें मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूकें,
जो कोई जो कह सके, कहें क्यों चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
हे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझ से?
कहते आते थे यही अभी नरदेही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले 'हो ।"

अब कहे यही सब हाय । विरुद्ध विधाता,
'हे पुत्र पुत्र' ही, रहे कुमाता माता ।"
बस मैंने इसका बाह्य-मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय ने देखा, मृदुल गात्र ही देखा,
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा ।
युग-युग चलती रहे कठोर कहानी-
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी ।"
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा-
'धिक्कार! उसे था महास्वार्थ ने घेरा ।
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई ।"
पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई
'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई ।

संदर्भ :

उपर्युक्त काव्यांश 'साकेत' से लिया गया है। 'साकेत' प्रबंध काव्य है, जिसके रचयिता कवि मैथलीशरण गुप्त है। गुप्तजी द्विवेदी युग के सबसे प्रसिद्ध कवि हैं। 'साकेत' रामायण और रामचरितमानस आदि पर आधारित रचना है, पर इसमें कैकेयी के चरित्र को उज्वल बनाने की प्रसंग-योजना कवि का मौलिक सृजन है।

प्रसंग :

जब पिता की आज्ञा का पालन करने हेतु राम वन में गये, तब भरत कैकेयी के वरदान की बात सुनकर राजगद्दी पर बैठने से इनकार कर देता है। कैकेयी को अपने शान्त स्वभाव के बावजूद भरत क्रोधाविष्ट होकर खरी-खोटी सुनाता है। पिता की मृत्यु और भाई का विरह उसे काफी आघात पहुँचाता है। अन्त में, शत्रुध्न एवं माताओं समेत वह राम को लेने के लिए चित्रकूट पहुँचता है। चित्रकूट में भाई के साथ मिलन के अनन्तर जो सभा बैठती है, उसमें भरत से अपना अभीप्सित व्यक्त करने की बात राम कहते हैं। भरत के भीतर भावों का जो तूफान था, वह उमड़ पड़ता है। व्याकुल भाई को समझाने एवं शान्त करने के लिए राम कहते है- "उसके आशय की थाह मिलेगी किसको? जनकर जननी ही जान न पाई जिसको?' यह वाक्य सुनकर कैकेयी अपना अनुताप अभिव्यक्त करती है, जो प्रस्तुत अंश में है।

व्याख्या :

राम के वचन सुनते ही कैकेयी मौका पाकर अपने भावप्रसाद को वाणी का रुप प्रदान करती हुई कहती है कि सचमुच, भरत निर्दोष है, तुम लौट चलो घर को । सारा दोष तो मेरा ही है । मौन बैठी हुई रानी कैकेयी वैधव्य तुषारावृत्त विधु लेखा-सी थी ।

शान्त बैठी थी, पर उसके भीतर असंख्य भाव तरंगें उठ रही थीं, उन तरंगों की चंचलता दिख रही थी । कैकेयी रानी अब स्रोतस्विनी गोमुखी-गंग बन चुकी थी । कुल मिलाकर कैकेयी अपने भीतर की व्यथा व्यक्त करके अपने निर्दोष और अकलंकित होने का प्रमाण देती है तो साथ में यह भी स्पष्ट करती है कि राजगद्दी के लिए उसका अपना मोह या भरत का तनिक भी नहीं है । भरत तो निश्छल है । कैकेयी के इस अनुताप भरे वचन से उसके साफ दिल होने का तथा भरत के प्रति ममत्व होने के बावजूद इस वरदान मांगने के पीछे भरत का 'कोई हाथ नहीं है, ऐसा स्पष्ट होता है । राम, भरत और सभा में बैठे सभी लोगों के सामने अपना कलंक स्वीकार कर वह निर्मल गंगा की तरह पवित्र होती है । वह कहती है कि मेरी दुर्बलता के कारण मैं अपराधिन हूँ । किसी भी माँ को अपना बेटा अधिक प्रिय होता है । वह किसी भी हालत में उसकी मौत के बारे में सोच भी नहीं सकती । यहाँ कैकेयी राम से कहती है-यदि भरत के द्वारा उकसाने पर मैंने ऐसा किया हो, तो मैं पति के समान पुत्र को भी खोऊँ । मेरी बात ध्यान से सुनो, उसमें यदि सार लगे तो उसे, चुन लो । मैं पहाड़-सा पाप करके मौन बैठी रहूँ । अपना अनुताप व्यक्त न कर पाऊँ तो इस संसार में मुझसे बड़ी अभागिन और कौन होगी ? कैकेयी के ऐसे वचनों को सुनकर-रात्रि में चाँद भी मानो ओस टपकाकर रो रहा हो, ऐसा लगता था । सभा के लोग रो रहे थे । उस सभा में रानी की उपस्थिति उल्का के समान तेज प्रकाशन का कार्य करती थी । उसके इस व्यक्तित्व से सब में भय, विस्मय और खेद उत्पन्न हो रहा था ।

कैकेयी अपने वरदान मांगने से उत्पन्न त्रासदी के लिए किसी और को नहीं, खुद को जिम्मेदार मानती है । लोग मन्थरा के कान फूँकने से ऐसा हुआ - ऐसा मानते हैं पर कैकेयी कहती है, जब मेरा ही मन अपने पर विश्वास नहीं कर सका, जिसका परिणाम यह हुआ, अब इसके लिए मन्थरा को क्यों दोष दें ? अगर मेरा विश्वास राम और भरत के प्रति पूर्ण होता तो आज ऐसी नौबत क्यों आती ? मेरे भरत को, जिसको मैंने जना है, मैं खुद ही उसे समझ न पाई । भरत का राम के प्रति इतना स्नेह है कि वह राम के बिना रह नहीं सकता तो फिर राज्यपद कैसे स्वीकार करेगा ? और वह भी राम के वनवास के बाद । मेरे मन में ईर्ष्या की आग ने मुझे पूर्ण रुप से विचारहीन स्थिति में रख दिया था । मैं पुत्र के मोह में पुत्र के स्वभाव और राम के प्रति अपने वात्सल्य को भूल चुकी थी, लेकिन मैं मोह में अंधी थी । मेरे वात्सल्य से भला राम अपरिचित है क्या? आज मेरा बेटा भरत मुझे अपनी माता कहने से झिझक रहा है, मेरा अपना वत्स आज पराया हो गया है - "पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा' । जब मैं अपने बेटे को नहीं समझ पाई तो मेरा बेटा भी मुझे माता न मानें इसमें आखिर दोष किसका? किसी का नहीं, सिर्फ मेरा ही है । जिसे जो कहना है वह कहे, मुझ पर थूकना है थूके, मैं इसी लायक हूँ । पर आखिर यह सब मैंने अपने वात्सल्य के कारण किया है । मेरा मातृपद छीनने का अधिकार मैं किसी को नहीं दे सकती । जो करना है, कहना है, करो, कहो, थूको, पर मैं भरत की माता तो हूँ ही । कलंकिनी ही सही पर

माता हूँ । राम और क्या दुहाई दूँ? लोग पहले कहा करते थे कि पुत्र-भले ही कुपुत्र हो सकता है पर माता कुमाता नहीं होती । अब लोग कहेंगे पुत्र तो पुत्र ही रहा, लेकिन माता-कुमाता हो गई । मैंने भरत का बाह्य शरीर, छल गात्र देखा । उस कोमल शरीर का दृढ़ हृदय नहीं देखा था । मैंने अपना स्वार्थ ही देखा, परमार्थ नहीं । इसीलिए आज यह दिन देखने को मिला कि-पुत्र भी मुझसे घृणा करता है । मेरे जीवन की इस कठोर कहानी को लोग युगों-युगों तक गाते रहेंगे कि रघुकुल में ऐसी अभागिन रानी थी जिसने पुत्र-मोह में, पति और पुत्र दोनों को खो दिया । महास्वार्थ ने मुझे घेर लिया । मेरे जीवन को कई जन्मों तक धिक्कार मिलेगा । यह धिक्कार अपने स्वार्थवश पूरे परिवार को नष्ट करने के कारण प्राप्त होगा । कैकेयी अपने अनुताप को व्यक्त करती हुई अपना सारा अन्तर्मन खोलती है । बात चरम सीमा तक आ पहुँचती है । राम को लगता है कि- अब माँ को सम्भालने की आवश्यकता है । कहीं वह अपराधभाव दूसरी दिशा न पकड़ ले । परिस्थिति समझकर राम बोल उठते हैं- "सौ बार धन्य वह एक लाल की माई' यह सुनकर कैकेयी को कितनी सात्वना मिली होगी । जलते हुए हृदय को सभी लोगों के एक साथ कहने से कितनी शीतलता का अनुभव होगा, यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है ।

विशेष :

(1) रानी कैकेयी के चित्रकूट की सभा में विधवा रूप में, उसके चंचल मन के अंकन करने में, अनुताप के समय वह अब गौमुखी गंगा है-ऐसा कहने में कवि के कैकेयी के विविध चित्र खींचने की कुशलता का पता चलता है ।

(2) राम-कैकेयी के संवाद से कैकेयी राम के वनवास के प्रति अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करती है । स्वयं के अपराध का दोष दूसरे के सिर पर नहीं डालती । अत: यहाँ कैकेयी के चरित्र के उज्जवल पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है ।

(3) भरत के प्रति कैकेयी के वात्सल्य भाव पर कोई संदेह करे, यह कैकेयी को स्वीकार नहीं, परन्तु साथ में अपने अपराध के लिए कोई भरत को दोषी माने, यह भी स्वीकार्य नहीं ।

(4) सभा में कैकेयी के विविध भावों का अंकन, कैकेयी की भावस्थिति, बाह्य दिखाव, कथन, पद्धति, संवाद में आलंकारिक उपकरणों का सुंदर प्रयोग हुआ है । जैसे - "वह सिंही अब भी हहा! गौरमुखी गंगा, वैधव्य तुषारावृत्त विधुलेखा, बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंग, उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी, बस मैंने इसका बाह्य मात्र ही देखा ।'

(5) कैकेयी के साथ भरत के उज्ज्वल चरित्र एवं राम का भरत एवं कैकेयी के प्रति अटूट स्नेह भी इस संवाद से अभिव्यक्त हुआ है ।

1.4.4 हा मात: मुझको, कहो, न यों....

"हा मात:, मुझको कहो न यों अपराधी ।

मैं सुन न सकूँगा बात और अब आधी ।
कहती हो तुम क्या अन्य तुल्य यह वाणी,
क्या राम तुम्हारा पुत्र नहीं वह मानी?
इस भांति मानकर हाय, मुझे न रुठाओ,
जो उठूँ न मैं, क्यों तुम्हीं न आप उठाओ ।
वे शैशव के दिन आज हमारे बीते,
माँ के शिशु क्यों शिशु ही न रहे मनचीते ।
तुम रीझ-खीझकर प्यार जताती मुझको,
हँस आप रुठातीं, आप मनाती मुझको ।
वे दिन बीते, तुम जीर्ण दुःख की मारी,
मैं बड़ा हुआ अब और साथ ही भारी ।
अब रूठा सकोगी, तुम न तीन में कोई ।"
'तुम हलके कब थे? हँसी कैकेयी, रोई!
"मां अब भी तुमसे राम विनय चाहेगा?
अपने ऊपर क्या आप अद्रि ढाहेगा?
अब तो आज्ञा की अम्ब तुम्हारी बारी,
प्रस्तुत हूँ मैं भी धर्मधनुर्धृतिधारी ।
जननी ने मुझको जना, तुम्हीं ने पाला,
अपने सांचे में आप यत्न से ढाला ।
सबके ऊपर आदेश तुम्हारा मैया,
मैं अनुचर पूत, सपूत, प्यार का भैया ।
वनवास लिखा है मान तुम्हारा शासन,
लूँगा न प्रजा का भार, राज-सिंहासन?
पर यह पहला आदेश प्रथम हो पूरा,
वह तात सत्य भी रहे न अन्य, अधूरा ।
जिस पर हैं अपने प्राण उन्होंने त्यागे,
मैं भी अपना व्रत-नियम निबाहूँ आगे ।
निष्फल न गया माँ, यहाँ भरत का आना,
सिर माथे मैंने वचन तुम्हारा माना ।"
सन्तुष्ट मुझे तुम देख रही हो वन में,
सुख धन धरती में नहीं, किंतु निज मन में ।

संदर्भ :

प्रस्तुत अंश 'साकेत' के अष्टम सर्ग से लिया गया है । 'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित प्रबंध काव्य है । खड़ी बोली भाषा का काव्य में सफल प्रयोग तथा

अत्यन्त रामभक्ति के लिए गुप्तजी प्रसिद्ध हैं । द्विवेदी युग के प्रमुख कवि के रूप में उन्हें आदर मिला है । 'साकेत' में कैकेयी, उर्मिला, भरत के चरित्रों का उत्कर्ष प्रमुख उद्देशय होते हुए भी राम के प्रति गुप्तजी का अनन्य एवं भक्ति भाव काव्य में दृष्टिगोचर होता है ।

प्रसंग :

भरत- शत्रुध्न अपनी माताओं एवं सैन्य समेत राम को अयोध्या वापस ले जाने हेतु चित्रकूट आये है । अष्टम सर्ग में चित्रकूट मिलन, राम-भरत कैकेयी के संवाद प्रमुख घटना के रुप में वर्णित हैं । भरत के बाद कैकेयी भी अवसर पाकर अपना अनुताप व्यक्त करती हुई राम को अयोध्या लौटने को कहती है । तब राम अपनी ममता, स्नेह, वात्सल्य, अनुराग, बाल्यावस्था की सारी स्मृतियों को याद करके कैकेयी से अपना अटूट बंधन है, यह जताते हैं, सांत्वना भी देते हैं । प्रेम और कर्त्तव्य में अन्तर करते हुए राम कैकेयी की बात मानते हुए भी अपने कर्त्तव्य के प्रति दृढ़ता की बात करते है । उक्त अंश में राम-कैकेयी के वात्सल्यपूर्ण संवाद की झाँकी प्रस्तुत हुई है।

व्याख्या :

यह सर्वविदित तथ्य है कि बेटा गलती करने पर माँ से माफी मांगे, - अनुनय-विनय करे, यह स्वाभाविक है पर माँ अपनी गलती का अहसास होने पर भी सामाजिक मर्यादा के चलते ऐसा नहीं कर सकती। कैकेयी यहाँ अपनी गलती स्वीकार कर राम से जब अपने अपार स्नेह एवं ममता की दुहाई देकर अयोध्या लौटने के लिए प्रार्थना करती है, तब राम स्वस्थचित्त से अपने मर्यादा पुराषोत्तम रुप के अनुसार वात्सल्यमयी माँ कैकेयी को कहते हैं कि हे माता, अब मुझे यों अपराधी मत करो, क्योंकि यह विपरीत क्रम है । अत: मैं अब आपकी आगे कुछ सुननेवाला नहीं हूँ । तुम मुझे औरों की तरह पराया समझ रही हो। क्या राम तुम्हारा पुत्र नहीं है ? और पुत्र से विनय नहीं उसे आदेश दिया जाता है। अगर आप ऐसा कहेंगी तो मैं रुठ जाऊँगा। याद है-बचपन में मैं जब नही उठता था, तब आप ही मुझे उठाती थी । मैं तो तुम्हारा उस समय भी शिशु था और आज भी हूँ। तुम मुझे रिझाकर-रिझाकर तरह-तरह से प्यार जताती थी । मुझे हँसाकर आप मनाती । वे शैशव के दिन क्या बीत गये? अब तो; मैं इतना बड़ा हो गया हूँ कि तुम तीनों माताओं से मैं उठ भी न पाऊँगा । तत्क्षण कैकेयी कहती है- "तुम हलके कब थे?' वाक्य की जो ध्वनि है, वह राम के गरिमामय चरित्र का उद्घाटन करती है । राम कभी हल्के थे ही नही । कैकेयी हँसकर रो पड़ती है । राम कहते है माँ, अब विनय नहीं, राम तुम्हारी आज्ञा चाहता है, आपका आदेश सिर माथे पर । मैं धर्म, धीरज और धनुष धारण करनेवाला हूँ अर्थात राम अपने कर्तव्य निर्वाह के प्रति कृत संकल्प है । किसी भी प्रकार की भावुकता में आकर राम अपना धैर्य नहीं खो सकता । अपने पराक्रम से पीछे नहीं हट सकता । मुझे तुम्हीं ने पाला-पोषा, बड़ा किया । मैं तो तुम्हारा अनुग्रही हूँ-जैसा भी हूँ वैसा तुम्हारा बेटा हूँ । यदि मैंने वनवास

भी लिया, उसमें भी आपकी आज्ञा ही थी । अत: अब मैं तुम्हारी आज्ञा को तोड़कर राज-सिंहासन एवं प्रजा का भार नहीं ले सकता । ऐसा करने पर तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन और मेरे आज्ञाकारी कर्तव्य रूप का हनन होगा । वनगमन के लिये तात का आदेश मुझे मिला था, जिसमें आपकी इच्छा शामिल थी । इसी कारण तो तात ने प्राण त्यागे । जब सबने अपना- अपना कर्तव्य निभाया है तो मैं भी अपने कर्तव्य का निर्वाह क्यों न करूँ?

माँ, तुम चिन्ता न करो । भरत का यहाँ आना व्यर्थ नहीं, गया है । मैं तुम्हारे वचन को सिर-माथे चढ़ाता हूँ । तुम मुझे वन में सन्तुष्ट देख रही हो । सुख वस्तुत: धन या शासन में नहीं । मन जहाँ और जिसमें सुख प्राप्त करता है, वहीं सुख मिलता है ।

विशेष :

(1) प्रस्तुत अंश में राम और कैकेयी के माता-पुत्र प्रेम की कुशलतापूर्वक अभिव्यक्ति की गई है । कैकेयी के चरित्र के उत्कर्ष के लिए ऐसी संवाद-योजना आवश्यक भी थी ।

(2) गुप्तजी को राम के आदर्श, मर्यादा पुराषोत्तम धीर, गंभीर, धर्म कर्तव्य परायण चरित्र के अंकन करने में सफलता मिली है । इस काव्यांश में उनकी रामभक्ति का पता चलता है ।

(3) गंभीर संवाद में भी "तुम हलके कब थे?" जैसे विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति कहने वाली वाक्य योजना के कारण एक ओर जहाँ गंभीर वातावरण में उपहास के कारण तनाव कम होता है वहाँ दूसरी ओर राम का गरिमामय आदर्श चरित्र ध्वनित होता है ।

1.4.5 मेरे उपवन के हरिण आज.....

"मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें, तजो भय भारी ।'
गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया-पद-तल में,
वह भींग उठी प्रिय चरण धरे दृग जल में।
"वन में तनिक तपस्या करके
बनने दो मुझको निज योग्य
भाभी की भगिनी, तुम मेरे
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य ।'
हा स्वामी! कहना था क्या-क्या
कह न सकी, कर्मो का दोष।
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो
मुझे उसी में है सन्तोष ।"

संदर्भ :

प्रस्तुत काव्यांश मैथिलीशरण गुप्त रचित 'साकेत' प्रबंध काव्य के अष्टम सर्ग से लिया गया है । 'साकेत' उर्मिला-विरह के लिए प्रसिद्ध है । कवि ने भरत, कैकेयी और उर्मिला के चरित्रों का उत्कर्ष दिखाया है । मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि के रूप में ख्याति प्राप्त है ।

प्रसंग :

अष्टम सर्ग में चित्रकूट मिलन में राम लक्ष्मण-सीता का भरत-शत्रुघ्न एवं अपनी माताओं से मिलन होता है । राम-भरत और राम-कैकेयी के सभा में संवाद के बाद सुखद समाधान होता है और निर्णय किया जाता है कि राम पिता की आज्ञानुसार चौदह वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या लौटेंगे और अपना कर्तव्य निर्वाह करेंगे । सब एक दूसरे से मिलकर प्रसन्न होते हैं । इसी समय सीता चतुराई से पर्णकुटी में खड़ी उर्मिला से लक्ष्मण का मिलन करवाती है । लक्ष्मण-उर्मिला के बीच उन क्षणों में जो मौखिक-मौन संवाद होता है उसका वर्णन उक्त अंश में किया गया है ।

व्याख्या :

'साकेत' में सब अपने कर्तव्य का पालन कर कमोबेश रूप में खुश है। सबको अपना अलग- अलग सुख व दुःख है । सीता राम के साथ वन में आकर वन में गृहस्थ का सुख पा रही है । भरत-मांडवी, शत्रुध्न-श्रुतिकीर्ति भी अपने पति के साथ है। एक मात्र उर्मिला ऐसा पात्र है जो भवन में रहकर भी पति-सुख से वंचित वन से भी कठोर दुःख पाने के लिए विवश है । उर्मिला के मन की बात कोई जानता नहीं और न ही कोई पूछता है। पति लक्ष्मण भी उर्मिला की परवाह किये बिना, उससे किसी प्रकार की बातचीत किये बिना, उसकी इच्छा समझे बिना भ्रातृ कर्तव्य-निर्वाह करने में लगे हैं। इसमें उर्मिला का क्या दोष है ?

सीता स्त्री है। एक स्त्री ही दूसरी सी की पीड़ा समझ सकती है। वन में जाने के बाद एक लंबी अवधि-चौदह वर्ष के पश्चात लक्ष्मण-उर्मिला का मिलन होगा। सीता ने उर्मिला की व्यथा को समझते हुए समय साधकर कुटिया में अकेली खड़ी उर्मिला से लक्ष्मण का मिलन करवाया। लक्ष्मण कुटिया में प्रवेश करते ही जो देखते हैं, उसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाते है । उन्हें कुछ समझ में नहीं आता है। उर्मिला की काया है या शेष उसी की छाया। वे कुछ बोल नही पाते है। तब उर्मिला लक्ष्मण की ऐसी घबराहट भरी स्थिति देख कहती है- "मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी' उर्मिला के उपवन में निश्चिन्त घूमनेवाला हरिण आज वनचारी हो गया है अर्थात भय, संशय, विस्मय, संकोच आदि भाव एक साथ जो लक्ष्मण के शरीर में उपस्थित हुए हैं, उनकी कुशल अभिव्यक्ति हुई है । उर्मिला कहती है-मुझसे डरो नहीं । मैं तुम्हें वन जाने से नही रोकूँगी । शायद लक्ष्मण ने यह सोचा हो कि उर्मिला रो-रोकर वन न जाने के लिए कहे और मेरे कर्तव्य निर्वाह में बाधा डाले । परन्तु यहाँ तो उल्टा होता है । स्वयं उर्मिला ही लक्ष्मण को-जो उनके मन में रोकने का भारी भय है-उसे छोड़ने की बात कहती है । लक्ष्मण क्या करें ? क्या सोच रहे थे और सामने क्या हो रहा है ? अपने-आप पर

लजाते हुए प्रिया के पद तल में जा पहुँचे । उर्मिला आँखों में आँसू भरे लक्ष्मण के चरण-स्पर्श करती हुई रोमांचित हो उठती है । अब लक्ष्मण कहते हैं कि मैं वन मे थोड़ी तपस्या करके योग्यता प्राप्त करना चाहता हूँ । भाभी की भगिनी मेरे लिए तुम केवल उपयोग की वस्तु नहीं हो । एक बात ध्यान देने योग्य है कि नारी को केवल उपभोग की वस्तुमात्र न समझकर उससे विशेष उसकी इयता का स्वीकार गुप्तजी ने लक्ष्मण पुरुष पात्र के द्वारा करवाया है । उर्मिला के मन में एक साथ बहुत कुछ कहने को है पर क्या कहें ? भावों की संकुलता, परिस्थितिजन्य गंभीरता और बहुत एक साथ होने से कुछ नहीं कह पाती है । इस न कह पाने में वह किसी को दोषी नहीं मानती । अपने कर्मो का ही दोष मानती है । आखिर में भारतीय संस्कृति की आदर्श नारी की भाँति वह कहती है कि-जिसमें तुम्हें सन्तोष है, मुझे भी उसी में सन्तोष है । कवि ने त्याग में भोग का आनंद जानने वाली बात उर्मिला के मुख से कहलवायी है । उर्मिला के चरित्र की यह सबसे बड़ी विशेषता बन जाती है ।

विशेष :

(1) प्रस्तुत अंश में उर्मिला के चरित्र का उत्कर्ष देखने को मिलता है । साथ ही परिस्थिति पाकर तुरन्त उत्तर देने की कला भी उर्मिला में दिखाई देती है । लक्ष्मण के लिए उपवन का हरिण जो वनचारी बन गया है, ऐसा कहने में जो ध्वनि है वह लक्ष्मण के अंतर्द्वंद और उर्मिला की विवश परिस्थिति की संकेतक है

(2) उर्मिला के चरित्र में त्यागवृत्ति, समर्पण की भावना तथा परिस्थिति में किसी को दोष दिये बिना स्वस्थता से अपना कर्तव्य निर्वाह करने की क्षमता के दर्शन होते है।

(3) लक्ष्मण की असमंजस्य की स्थिति बहुत कुछ कह जाती है । नारी केवल उपयोग की नहीं, जीवन-पथ में अन्य कई कर्मो में साथ देनेवाली सहधर्मिणी, त्यागमयी नारी हैं, इसकी अभिव्यक्ति उर्मिला के चरित्र के द्वारा की गयी है । पुरुष के कर्तव्य निर्वाह मे नारी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है नारी के प्रति यही विशेष दृष्टिकोण आगे छायावाद में विकसित रुप में दिखाई देता है ।

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा की चर्चा कीजिए ।
2. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताएँ बताइए ।
3. साकेत के अष्टम सर्ग का महत्व निर्धारित कीजिए ।
4. निम्नलिखित काव्यांशों की व्याख्या करते हुए संबंधित काव्यांश पर काव्य सौन्दर्य परक टिप्पणी लिखिए-

(i) किसलय - कर.....मन भाया ।

(ii) थी सनक्षत्र..... तुझी में जागे ।

(iii) मेरे उपवन.....दृग जल में ।

1.6 सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. मंजुला तिवारी - मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
2. डॉ. कमलाकान्त पाठक - मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली, 1960 ।
3. डॉ. दानबहादुर पाठक - मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1964 ।
4. डॉ. सी. एल. प्रभात - मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और अभिव्यक्ति, हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई, 1987 ।
5. डॉ. हरिचरण शर्मा - छायावाद के आधार स्तंभ, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर ।

♦♦♦

इकाई- 2 मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुभूति पक्ष

- 2.2.1 मैथिलीशरण गुप्त और उनका साकेत
- 2.2.2 गृहस्थ जीवन के चित्र
- 2.2.3 उर्मिला का विरह
- 2.2.4 मर्मस्पर्शी स्थलों का चित्रण

2.3 मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

- 2.3.1 प्रबंधात्मकता
- 2.3.2 दृश्यविधान
- 2.3.3 संवाद-योजना
- 2.3.4 अप्रस्तुत योजना
- 2.3.5 भाषा-योजना
- 2.3.6 छंद योजना

2.4 मूल्यांकन

2.5 विचार संदर्भ और शब्दावली

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताओं का परिचय पा सकेंगे।
- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के अनुभूति पक्ष का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की प्रबंधात्मकता, दृश्यविधान और संवाद-योजना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- गुप्तजी की अप्रस्तुत योजना, भाषा-कौशल एवं छंदयोजना की जानकारी पा सकेंगे।
- कवि के बारे में ऐसे संदर्भ की जानकारी प्राप्त करके कवि से संबंधित जानकारी और बढ़ा सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं । उन्हें खड़ी बोली में पौराणिक विषयों को लेकर सफल काव्य रचना करने में कुशल कवि के रूप में

ख्याति प्राप्त है । रामायण के उपेक्षित पात्रों के उत्कर्ष के लिए 'साकेत' की रचना की गई है । विशेषकर उर्मिला, कैकेयी और भरत के पात्रों को ऊपर उठाने का प्रयास 'साकेत' में हुआ है । सुंदर गृहस्थ चित्रों का अंकन साकेत की विशेषता है । उर्मिला के विरह वर्णन एवं मर्मस्पर्शी स्थलों का चित्रण कवि ने कुशलतापूर्वक किया है । प्रबंध के सारे तत्वों का निर्वाह करने में कवि सफल रहा है । भौतिक एवं प्राकृतिक दृश्य-विधान में कवि कौशल के दर्शन होते हैं । नाटकीयता के सर्जन में संवाद की अहम भूमिका होती है, 'साकेत' में कवि ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है । 'साकेत' की भाषा के द्वारा कवि की खड़ी बोली के प्रयोग में समर्थता का पता चलता है ।

2.2 मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुभूति पक्ष

2.2.1 मैथिलीशरण गुप्त और उनका साकेत

'साकेत' गुप्तजी के कवि-जीवन की प्रौढ़तम रचना है। वैसे 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'यशोधरा' के कवि के रूप में मैथिलीशरण गुप्त को हिन्दी साहित्य-जगत में काफी प्रसिद्धि मिली, परन्तु मैथिलीशरण व्यक्ति और कवि की जीवन-व्यापी तपस्या का फल अखण्ड रूप में 'साकेत' में मिलता है । भारतीय (हिन्दू) जीवन के चिन्तन-मनन निरीक्षण के परिणाम स्वरूप उसकी भव्य अभिव्यक्ति 'साकेत' के रूप में हुई है । रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'काव्येर उपेक्षिता' तथा आचार्य द्विवेदीजी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से प्रेरणा प्राप्त कर द्विवेदीजी के आशीर्वाद एवं छोटे भाई सियारामशरण के अनन्य अनुग्रहपूर्ण आग्रहवशात 'साकेत' का निर्माण हुआ।

'साकेत' की कहानी वाल्मीकि और तुलसी द्वारा रचित रामायण और रामचरितमानस से संबंधित है। साहित्यकारों ने प्रत्येक युग में अपनी आवश्यकताओं के अनुसार थोड़े- बहुत परिवर्तन करके इस कहानी को अपनाया है, जिसमें भारतीय आर्य संस्कृति के आदर्श, मूल्य, जीवनशैली आदि के सुन्दर चित्र है। बीसवीं शताब्दी में मैथिलीशरण गुप्त ने अपने युग की विशेष परिस्थितियों के संदर्भ में इस कहानी को अपने पूर्ववर्ती कवियों से बहुत कुछ ग्रहण करते हुए भी अनेक मौलिक उद्भावनाओं के साथ 'साकेत' के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की । रामकथा की पृष्ठभूमि के आधार के रूप में राम-सीता की कहानी 'साकेत' में उर्मिला की कहानी बन जाती है। अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण न करते हुए मर्मस्थलों को चुनकर गुप्तजी ने काव्य का रूप दिया है ।

'साकेत' का प्रारम्भ होता है उर्मिला-लक्ष्मण के वाग्विनोद से, जो अभिषेक की तैयारियों की सूचना देता है। अभिषेक, कैकेयी-मंथरा संवाद, विदा प्रसंग, निषाद-मिलन, दशरथ-मरण, भरत- आगमन, चित्रकूट-मिलाप तक की कथाएँ तो कवि ने स्वयं कही या दृश्य रूप में उपस्थित की हैं परन्तु आगे वह उर्मिला को छोड़ राम के साथ नहीं जा सके, और यदि चित्रकूट गये भी हैं तो समस्त 'साकेत' के साथ 'सम्प्रति साकेत-समाज वहीं है

सारा।' शर्पूणखा की कहानी, खर-दूषण आदि उपकथाएँ शत्रुध्न के द्वारा सूत्र-रूप से कहलवाई है । उसके बाद की घटनाओं-लक्ष्मण शक्ति तक का वर्णन हनुमान के द्वारा साकेत में ही करवाया गया है तथा युद्ध का वर्णन वशिष्ठ अपनी योग-दृष्टि द्वारा सभी साकेतवासियों को दिखलाते है । सूर्यवंश के राजाओं की कीर्तिगाथा, दशरथ, राम-जन्म, जनक का गृहस्थ, बाललीला, ताड़का-वध, प्रथम दर्शन, धनुष यज्ञ आदि आरंभिक प्रसंगों की सूचना उर्मिला से प्राप्त होती है । इस प्रकार संपूर्ण कथा की रंगभूमि 'साकेत' ही है । समस्त घटनाओं का समाहार 'साकेत' में ही हो जाता है । अत: 'साकेत' नामकरण की उपयुक्तता स्वत: सिद्ध हो जाती है ।

'साकेत' के जो मर्मस्थल हैं वो इस प्रकार हैं- लक्ष्मण-उर्मिला की विनोद-वार्ता, कैकेयी-मन्थरा संवाद, विदाप्रसंग, निषाद-मिलन, दशरथ-मरण, भरत-आगमन, चित्रकूट-सम्मिलन, उर्मिला की विरह-कथा, नन्दिग्राम में भरत और माण्डवी का वार्तालाप, हनुमान से लक्ष्मण शक्ति का समाचार सुनकर साकेत-नागरिकों की रणसज्जा, राम-रावण युद्ध और राम, भरत तथा लक्ष्मण और उर्मिला का पुनर्मिलन । जब साकेत के अनुभूतिपक्ष की बात की जाय तब इन मर्मस्पर्शी स्थलों का कवि ने जिस कुशलता एवं भावनात्मक रूप में अपनी सहज काव्य प्रतिभा के बल से सृजन किया है, उसकी झाँकी करना जरूरी बन जाता है ।

2.2.2 गृहस्थ जीवन के चित्र

मानव जीवन राग-द्वेष की क्रीड़ा है । मानव जीवन की इसी रागात्मकता वृत्ति के कारण अनेक अवस्थाओं और व्यक्तियों के बीच उसकी जो जीवन-लीला बनती है, कवि ने उसे बड़ी मार्मिकता से 'साकेत' में गृहस्थ जीवन के चित्रों के रूप में अंकित किया है। गृहस्थ जीवन के सुख-दुःख की व्यंजना सुंदर तरीके से की गई है। 'साकेत' में रघु परिवार के सुख-दुःख का वर्णन है। सूर्यकुल के इसी प्रतापी परिवार में पति-पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ, माता-विमाताएँ, देवर-भाभी, सासें-पुत्रवधुएँ, स्वामी-सेवक आदि हैं अत: परिवार बड़ा है। विभिन्न व्यष्टियों से बना हुआ यह परिवार एक संपूर्ण समष्टि है- जैसे

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले ।

गृहस्थ जीवन का प्राण दाम्पत्य-जीवन है। मानव जीवन की प्रस्तुत वृत्ति एवं काम का समुचित विकास मर्यादाबद्ध अर्थात् विवाहबद्ध होकर हो सकता है । 'साकेत' के दशरथ परिवार में पाँच दम्पति हैं- उर्मिला-लक्ष्मण, राम-सीता, भरत-मांडवी, दशरथ और उनकी तीनों रानियाँ (विशेषकर कैकेयी) तथा शत्रुध्न और श्रुतिकीर्ति। 'साकेत' का प्रधान कार्य चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि के उपरांत उर्मिला-लक्ष्मण का मिलन है। अत: स्वभावत: उसका प्रधान रस श्रृंगार है- और शृंगार में भी जीवन में विरह की विशेषता के कारण, वियोग पक्ष प्रधान है। दाम्पत्य जीवन में स्त्री-पुरुष की शारीरिक और भावनात्मक स्तर

पर परस्पर स्वीकृति जीवन में मधुरता लाती है। 'साकेत' में लक्ष्मण-उर्मिला के संवाद में इस बात को बड़े ही मार्मिक एवं सटीक ढंग से प्रस्तुत किया गया है जैसे दाम्पत्य जीवन में पत्नी के गौरव को लक्ष्मण इस प्रकार कहते हैं-

"भूमि के कोटर, गुहा, गिरिगर्त भी,
शून्यता नभ की, सलिल आवर्त भी
प्रेयसी, किसके सहज-संसर्ग से,
दीखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से ।।"

स्त्री-संसर्ग से ही जीवन में रस आ जाता है। जगत् के शून्य चित्र रंगीन बन जाते है तो दूसरी ओर उर्मिला नारी का प्रतिनिधित्व करती हुई पुरुष महिमा का वर्णन इस प्रकार करती है-

खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम
आन्तरिक सुख-दुःख हम जिसमें धरे।
और निज नव-भार यों हलका करें।

पति-पत्नी के मध्य सुख-दुःख कह-सुन सकने के कारण जीवन कितना मधुर और भारविहीन हो जाता है। भावों का व्यक्तीकरण शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य के लिए कितना आवश्यक है, इस बात का संकेत अंतिम पंक्ति में कितने सटीक ढंग से कहा गया है-"और निज भव-भार यों हलका करें ।"

ठीक इसी प्रकार प्रकृति के गंभीर और मर्यादा-मूर्ति राम भी सीता के सम्मुख साधारण मनुष्य बन जाते हैं ।राम-सीता के बीच वन में जो हास-परिहास गुप्तजी ने वर्णित किया है, वह मधुर दाम्पत्य जीवन का एक सुंदर उदाहरण है। सीता वन के वृक्षों को सींचती फिर रही हैं। राम उनके इस प्रकृति- श्री का पान कर रहे हैं-कुछ देर बाद उनका हृदय-रस शब्दों का रूप धारण कर व्यक्त होता है-

"हो जाना लता न आप लता संलग्ना
करतल तक तो तुम हुई नवल दल मग्ना
ऐसा न हो कि मैं फिरुँ खोजता तुमको।"

ऐसे ही दाम्पत्य जीवन में विपत्ति के समय में स्त्री पुरुष का संबंध कितना अवलंबित है एक दूसरे पर । ऐसा होने पर विपत्ति के क्षणों में स्त्री पुरुष के दुःख को कम करने में किस प्रकार सहायक बन सकती है। पुरुष का दुःख फिर किस प्रकार स्त्री के सहयोग से हलका हो जाता है, इस बात की झाँकी भरत-माण्डवी के उदाहरण से करवायी गयी है। चारों ओर से व्यथा,शोक दुःख से घिरे भरत जब कहते हैं-

"एक न मैं होता तो भव की क्या असंख्यता घट जाती?
छाती नहीं फटी यदि मेरी तो धरती ही फट जाती।"

यह सुनकर माण्डवी अपने आवेश को रोक नहीं पाती और कह देती है-

"हाय! नाथ धरती फट जाती, हम तुम कहीं समा जाते,
तो हम दोनों किसी मूल में, रहकर कितना रस पाते ।
न तो देखता कोई हमको, न वह कभी ईर्ष्या करता,
न हम देखते अति किसी को, न यह शोक आँसू भरता।"

मांडवी न तो उर्मिला की तरह वियोगिनी है और न सीता-श्रुतिकीर्ति की भाँति सयोगिनी । वह ऐसे पति की पत्नी है जिसका जीवन गृह-वास और वनवास का संगम है । पति की गौरव भावना के कारण उनके दुःख से वह दुःखी है । परन्तु लोगों की ईर्ष्या उसे सहय नहीं । मांडवी में स्त्रियोचित लालसाएँ प्रेम की आग है परन्तु उसकी भावनाएँ बन्दिनी हैं । इसलिए पहले वह भरत के शब्दों को सुनकर तड़प जाती है, तत्पश्चात् उसकी गौरव भावना जाग्रत होती है, वह कहती है-

"मेरे नाथ जहाँ तुम होते, दासी नहीं सुखी होती।
किन्तु विश्व की भ्रातृ-भावना यहाँ निराश्रित ही रोती।"

इसी प्रकार दशरथ-कैकेयी के उदाहरण से दाम्पत्य जीवन में संयम की सीमा न रखने पर किस प्रकार के कटु फल भुगतने पड़ते हैं । वयोचित दाम्पत्य जीवन की सीमाएं होती हैं । वहाँ थोड़ी-सी असावधानी जीवन को कैसे मरण तक ले जाती है, इस बात की पुष्टि की गई है। इसी प्रकार वात्सल्य का भी मार्मिक चित्र खींचा है। दाम्पत्य,गृहस्थ-जीवन का मूल है, तो वात्सल्य उसका फल है । प्रस्तुत काव्य में राम के प्रति दशरथ-कौशल्या, लक्ष्मण-शत्रुध्न, भरत के प्रति, उनकी माताओं का परस्पर, माता-विमाताओ का पुत्र के प्रति स्नेह तथा उस स्नेह-जनित विभिन्न भावों का मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है । ठीक ऐसे ही पुत्री को ससुराल विदा करते समय माँ-बेटी के संवाद से गृहस्थ जीवन के एक मार्मिक चित्र का अंकन किया है। बेटी की विदाई का प्रसंग बड़ा करुण होता है । जनकपुर से उर्मिला-सीता आदि के विदा के समय 'मत-रो' कहकर माता स्वयं रो उठीं-

"तुम क्यों माँ यह धैर्य खो उठीं।
यह मैं जननी प्रपीडिता ।
पर तू है शिशु आज क्रीड़िता।"
सुन, मैं यह एक दीन माँ, तुमको है अब प्राप्त तीन माँ।

कन्या की माता के मुख से निकला यह संदेश आदर्श गृहस्थ परिवार-ससुराल के लिए आज भी कितना प्रासंगिक है। इसी प्रकार देवर- भाभी के मधुर सात्विक रोमांस वाले संबंध का चित्र सीता-लक्ष्मण के संवाद से खींचा है। प्रयाग राज में गंगा-यमुना के संगम को देखकर सीता लक्ष्मण से हर्ष-गदगद होकर कह उठती है-

श्याम-गौर तुम एक प्राण दो देह ज्यों।

इस पर लक्ष्मण कहते हैं-

भाभी क्यों नहीं,

सरस्वती सी प्रकट जहाँ तुम हो रहीं।

सीता तुरन्त कहती है-

देवर मेरी सरस्वती अब है कहाँ

संगम- शोभा देख निमग्न हुई यहाँ ।

ऐसे ही मांडवी- शत्रुध्न के बीच भी एक चित्र कवि ने बनाया है, जब अयोध्या के सुख-समाचार सुनाते हैं, तब मांडवी कहती है-

"कोई तापस कोई त्यागी, कोई आज विरागी है ।

घर संभालने वाले मेरे देवर ही बड़ भागी है । "

ठीक इसी प्रकार भाई-भाई, भाई-बहन के प्रेम की सुंदर व्यंजना की अभिव्यक्ति भी 'साकेत' में हुई है । राम के विश्वामित्र के साथ असुरों से यज्ञ की रक्षा करने हेतु वन जाते समय दशरथ सुता शान्ता के रक्षाबंधन के रूप में भ्रातृप्रेम का सुंदर चित्र मिलता है । ननद-भाभी के चित्र भी है । इस प्रकार भारतीय पारिवारिक जीवन में गृहस्थ जीवन के महत्व का सुंदर चित्रण गुप्तजी ने सकुशल ढंग से किया है ।

2.2.3 उर्मिला का विरह

उर्मिला का विरह साकेत की महत्वपूर्ण घटना है । परिस्थिति की दयनीयता उर्मिला के विरह को अत्यन्त करुणा बना देती है । सीता, मांडवी, श्रुतिकीर्ति दुःखी होते हुए भी अपने पति के साथ में है, जबकि उर्मिला राजभवन में होने पर भी सुख से वंचित है क्योंकि उसका भवन (लक्ष्मण) तो वन में है । अत: माता ठीक ही कहती है-

"मिला न वन ही न गेह ही तुझको।"

उर्मिला के विरह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अन्य सुखी लोगों को देख सामान्य विरहिणी की भाँति ईर्ष्या नहीं करती । स्थिति को स्वीकार करते हुए मन को समझाती है-

"हे मन! तू प्रिय पथ का विध्न न बन।"

उर्मिला की निराधार स्थिति का वर्णन कवि ने कुशलतापूर्वक अन्य लोगों से करवाया है जिससे नायिका के गौरव-गरिमा की संरक्षा हुई है । यदि परिवारजनों के सुख और अपनी निराधार (दुःख) की स्थिति का वर्णन स्वयं करती तो वह ईर्ष्या का रूप धारण कर लेती ।

वियोग से कृश उर्मिला के चित्र को कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है-

"मुख कान्ति पड़ी पीली-पीली, आँखें अशान्त नीली-नीली।

क्या हाय यही वह कृश काया, या उसकी शेष सूक्ष्म छाया।"

स्त्री की पीड़ा स्त्री ही समझ सकती है, इसके अनुसार सीता चतुराई पूर्वक चित्रकूट में धोखे से लक्ष्मण को उर्मिला के पास भेज देती है । विरह में कृश उर्मिला को देख लक्ष्मण निश्चय नहीं कर पाते हैं कि वह उर्मिला ही है या उसकी छाया । अन्तत: लक्ष्मण की ऐसी स्थिति देख उर्मिला पुकार उठती है-

"मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें, तजो भय भारी।"

उर्मिला के उपवन का हरिण आज वनचारी हो गया है अत: कदाचित उपवन में आने से डरता है कि- बाँध न लिया जाऊँ । लेकिन उर्मिला विश्वास दिलाती है कि-डरो नहीं, मैं नहीं बाँधूगी। लक्ष्मण उर्मिला की उदारता देख लज्जित हो जाता हैं। उसके चरणों में गिर पड़ता है। उर्मिला के साथ अन्याय होने का बोध उसे होता है अत: लक्ष्मण कहते हैं-

"वन में तनिक तपस्या करके बनने दो मुझको निज योग्य।
भाभी की भगिनी, तुम मेरे अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।"

यही उर्मिला के चरित्र को अधिक उज्ज्वल बना देता है।

उर्मिला के विरह वर्णन में प्राचीन और नवीन का सम्मिश्रण है । एक ओर उसमें ताप का ऊहात्मक वर्णन है, षट्ऋतु आदि का समावेश है, तो दूसरी ओर व्यथा का संवेदनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक व्यक्तिकरण भी। उर्मिला के विरह-ताप-वर्णन में एकाध दो स्थान पर ऊहात्मकता देखने को मिलती है-

"जा मलयानिल लौट जा, यहाँ अवधि का शाप
लगे न लू होकर कहीं, तू अपने को आप।"

उर्मिला का विरह जीवन के बाहर की वस्तु नहीं है । वह राज-परिवार की वियोगिनी कुल-ललना है । वह घर-परिवार छोड़कर बाहर नहीं निकलती और न ही उन्माद की स्थिति में कोई गलत कदम उठाती है । अपने वियोग की छटपटाहट के बीच भी नित्य कर्तव्य कर्म को निभाना, पालतू पशु-पक्षियों की चिन्ता, दूसरों की सेवा सुश्रूषा करना आदि सब का निर्वाह करती है। विरह में समय कैसे कटे! वह कभी चित्र बनाती है तो कभी शुक-सारिका से मन बहलाने लगती है। विरह के दुःख से दुःखी होकर तोते से पूछती है- "कह विहग, कहाँ है आज आचार्य तेरे?" तोता हमेशा की तरह जवाब देता है- 'मृगया में ।' उर्मिला विह्वल होकर बोल उठती है-

"सचमुच मृगया में? तो अहेरी नये वे,
यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे ?"

"अहेरी नये वे" की सांकेतिक व्यंजना रमणीय हैं, और गहरी भी। यदि अहेरी नये नहीं होते तो ऐसी हत-हरिणी को छोड़कर भला जाते क्या?

दीपक जलने पर पतंगा भी जलने आ जाता है । उर्मिला को अपनी व्यथा की झाँकी वहाँ मिलती है-

"दीपक के जलने में आली, फिर भी है जीवन की लाली ।
किन्तु पतंग भाग्य लिपि काली, किस का वश चलता है?"

यहाँ परवश स्थिति का मार्मिक संकेत है । शरद में खंजनों को देख लक्ष्मण के नयनों का आभास मिल जाता है-

"निरख सखी ये खंजन आये,

फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।"

विरह में प्रिय मिलन की अभिलाषा सबसे प्रधान होती है, साथ ही अन्य काम दशाओं का जन्म इसी से होता है । उर्मिला के विरह में-

"यही आता है इस मन में...

जब वे निकल जायँ तब लेटूं उसी धूल में लोट।"

विरह में अर्ध-विस्मृति की स्थिति में प्रलाप करती हुई उर्मिला का वर्णन कितना मार्मिक हैं

"भूल अवधि-सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी 'आओ।'

किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौक बोलकर 'जाओ'।"

उर्मिला की जटिल मनोदशा का संकेत इसमें है। आदर्श और कामना का संघर्ष है । आदर्श कहता है- 'जाओ' भाव कहता है-'आओ' । उर्मिला की अर्धविस्मृति के मूल में यही द्वंद्व है।

उर्मिला के उन्माद की चरम सीमा का चित्र भी कवि ने खींचा है। जैसे-

"जिधर पीठ दे दीठ फेरती, उधर मैं तुम्हें ढीठ हेरती"

उर्मिला के विरह वर्णन में आदर्श का गौरव है और स्वार्थ का निषेध । उर्मिला का आदर्श बड़ा ऊँचा है । सती और लक्ष्मी से भी ऊँचा-

"डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ

जिये उर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।"

उर्मिला का विरह सावधि था, अत: उसका अन्त भी निश्चित है। यौवन को सहेजकर प्रिय को समर्पित करने की उसकी आकांक्षा को अस्वाभाविक नहीं मानना चाहिए। उर्मिला के विरह में ईर्ष्या का अणुमात्र स्पर्श नहीं है। वह दूसरे को सुखी देख दुःख नहीं मानती । उसके पास सहानुभूति का भण्डार है। तुच्छ वस्तु में सदगुण देखना, उर्मिला के विरह में मानवता की पुकार है।

2.2.4 मर्मस्पर्शी स्थलों का चित्रण

गुप्तजी ने 'साकेत' की कथा में मौलिक परिस्थितियों का सृजन करके मर्मस्पर्शी स्थलों का सुंदर, सरस चित्रण किया है । पूरे 'साकेत' के मर्मस्पर्शी स्थल हैं- लक्ष्मण-उर्मिला की विनोद-वार्ता, कैकेयी-मन्थरा संवाद, विदा-प्रसंग, विषाद-मिलन, दशरथ-मरण, भरत-आगमन, चित्रकूट-सम्मिलन, उर्मिला की विरह कथा, नन्दिग्राम में भरत और मांडवी का वार्तालाप, हनुमान से लक्ष्मण शक्ति का समाचार सुनकर 'साकेत' के नागरिकों की रण सज्जा, राम-रावण युद्ध और पुनर्मिलन (राम और भरत, लक्ष्मण और उर्मिला का)। उक्त स्थलों में से कुछेक उदाहरण देखने पर गुप्तजी के कवि-कर्तव्य-कर्म की सफलता का पता चलता है । जैसे दशरथ-मरण प्रसंग में-सुमन्त्र के खाली हाथ लौटने पर बोल नहीं पाना कि-नहीं लौट, क्योंकि स्थिति गंभीर है। राजा के पूछने पर प्रजा की गूँज-

"गूँजा सब धाम नहीं लौटे" दशरथ को अधिक व्याकुल बना देती है। उनके व्यथामय उद्‌गार-"गृह योग बने हैं वन स्पृही, वन योग्य हाय! हम बने गृही।" तथा वरदान याद आने पर कैकेयी को उद्देशित यह कथन-

"कोई उससे जा कहे अभी, ले तेरे कंटक टले सभी"

दशरथ-मरण पर कौशल्या, सुमित्रा, सुमन्त्र आदि रोते हैं, पर कैकेयी की विचित्र स्थिति को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

"रोना उसको उपहास हुआ । निजुकृत वैधव्य विकास हुआ।
तब वह अपने आप से डरी।"

भरत आगमन पर, भरत और शत्रुध्न को साकेत लौटने पर भावी अमंगल के संकेत कवि ने कुशल कलाकार की भाँति दिये हैं । प्रत्येक वस्तु में निर्जीवता का बोध, सरयू के चुपचाप खिसकते चले जाने के रूप में दिया है-"पार्श्व से यह खिसकती-सी आप, जा रही सरयू बही चुपचाप।" तथा शत्रुध्न का-

"पर निरख अब दृश्य ये विपरीत
हो उठा हूँ आर्य, मैं अविभीत ।
जान पड़ता है, पिता सविशेष
रुग्ण होकर पा रहे है क्लेश।"

तो दूसरी ओर भरत-शत्रुध्न के आगमन पर-

"आ गये! सहसा उठा यह नाद
बढ़ गया अवरोध तक संवाद।"

इन पंक्तियों में 'आ गये' में प्रजा के विद्रोह के स्वर के संकेत की अभिव्यक्ति की गई है । भरत की भावमय स्थिति का सुन्दर अंकन-

"हा पित! सहसा चिंहुक चीत्कार
गिर पड़े सुकुमार भरत कुमार," से किया है ।

भरत कैकेयी द्‌वारा अपने कृत्य को स्वीकार करने पर पहले तो क्रोध में आकर कुछ कह देते हैं, परन्तु उनके स्वभाव का सत उस तमस पर विजय पा लेता है । क्रोध ग्लानि में परिणत हो जाता है। ग्लानि का जन्म अपनी बुराई से होता है। ग्लानि की अनुभूति उतनी तीव्र होती है, जितनी सच बुराई की अनुभूति की मात्रा की तीव्रता । ऐसी स्थिति में भरत का कहना-

"आज मैं हूँ कौसलाधिप धन्य, गा विरुद गा कौन मुझ-सा अन्य" कितना मार्मिक है, अन्त में वह रो पड़ता है।

'साकेत' के मार्मिक स्थलों में अन्य एक महत्वपूर्ण स्थल है 'चित्रकूट मिलन'। उर्मिला के बाद 'साकेत' में दूसरी विभूति कैकेयी है। अष्टम् सर्ग में चित्रकूट मिलन का प्रसंग है। सर्ग के आरम्भ में चित्रकूट में वनवासी सीता की झाँकी मिलती है। राम-सीता के दाम्पत्य-जीवन के मधुर क्षणों में से एक प्रसंग यह है। अपनी मूर्तिमयी माया सीता को

देख राम योगी के सम्मुख जैसे अटल ज्योति जगने का अनुभव कर रहे हैं। वनवासी दाम्पत्य जीवन के मधुमय चित्रों का अंकन राम-सीता के आदर्श को सम्हालते हुए कवि ने किया है।

चित्रकूट में भरत-राम संवाद और राम-कैकेयी संवाद प्रमुख है जो केवल अष्टम सर्ग में ही नहीं, पूरे 'साकेत' में महत्व रखते हैं। इन संवादों से कवि ने राम-भरत के अटूट, अपार स्नेह का पता चलता है। भरत और कैकेयी के चरित्र को भव्य और उज्जवल बनाने का कवि का यह स्तुत्य प्रयास है। राम और भरत का चित्रकूट मिलन प्रेम और आवेग का मिलन है । भरत के हृदय में भावों का तूफान उठ रहा था। वह कुछ बोल नहीं पाता। सीधे राम के चरणों में गिरकर रोने लगते हैं- राम कहते हैं -

"रोकर रज में लोटो न भरत, ओ भाई"

तब भरत का ऐसा उत्तर-

"हा, आर्य भरत का भाग्य रजोमय ही है।"

राम को उलाहना देते हुए कहना-

"उस जड़ जननी का विकृत वचन तो पाला,
तुमने इस जन की ओर न देखा-भाला।"

राम क्या उत्तर दें? निरुत्तर हो जाते हैं। जब रात में चित्रकूट में सभा मिलती है। राम प्रश्न करते हैं-

"हे भरत भई! अब कहो अभीप्सित अपना।"

राम का यह प्रश्न भरत को शूल चुभ गया हो, ऐसा लगता है । भरत की ग्लानि पुन: एक बार उमड़ पड़ती है।' अभीप्सित' शब्द को पकड़ कर मानो भरत आवेग के आवर्त्त में चक्कर लगा रहे हों, ऐसा लगता है । डूबते-उतराते हुए भरत उनकी शक्ति को विफल करने की कोशिश करते हैं।' अभीप्सित' शब्द की पुनरावृत्ति उनके भावावेश को तरल बना देती है। यहाँ भाव-प्रवण चित्रों के अंकन में गुप्तजी को जो कौशल प्राप्त है उसके दर्शन होते हैं। जैसे-

हे आर्य, रहा क्या भरत अभीप्सित 'अब भी?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब-तब भी?
पाया तुमने तरु-तले अरण्य बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा?
तनु तड़प-तड़प कर तप्त तात ने त्यागा ।
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा?
अब कौन अ अभीप्सित और आर्य वह किसका?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका ।
मुझ से मैंने ही आज स्वयं मुख फेरा,
हे आर्य बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा?

उक्त अंश में एक साथ ग्लानि, करुणा, स्नेह, दैत्य और आवेश का एक साथ प्रवाह दिखाई देता है। भरत की दयनीय स्थिति का पता चलता है। भरत का हृदय कचोट खाकर तड़प उठता है। ग्लानि का दर्शन उसको बेचैन कर देता है। लगता है भरत के अन्तर में कवि का अन्तर हो। भरत इस दुविधामय क्षणों में अपने आपको सम्हालने में असमर्थ महसूस करता है। अत: वह राम के चरणों में समर्पित हो कहता है-"हे आर्य बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा?" परिस्थिति को समझकर राम अपने स्वभाव के अनुकूल भरत को उबारने के लिए कहते हैं-

"उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको"

कैकेयी-राम संवाद की शुरूआत भी यहाँ से होती है। राम भरत से कहते है लेकिन राम के उक्त शब्द भरत के साथ-साथ कैकेयी को भी अवलम्बन प्रदान करते हैं । जैसे ही कैकेयी बोल उठती है-"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।" गुप्तजी ने कैकेयी की स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है "सबने रानी की ओर अचानक देखा,

वैधव्य-तुषारावृत्ता यथा विधु-लेखा ।
बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा,
वह सिंही अब थी हहा! गोमुखी गंगा।"

कैकेयी अपना आग्रहपूर्ण अनुरोध आरंभ करती है-

"हाँ जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन ले, तुमने स्वयं अभी यह माना।"

रानी के उपर्युक्त शब्दों में दैन्य की जगह मातृत्व का अर्थ अभिव्यक्त हुआ है । मतलब कि यदि यह सच है कि- मैं भरत को जान न सकी तो मेरा अपराध अज्ञान-जन्य है और माँ का अपराध तो वैसे ही एक सीमा तक क्षम्य होता है । आवेश में कहते- कहते रानी चरम स्थिति तक पहुँच जाती है-

"यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।"

यहाँ उक्त कथन कैकेयी की गहनतम मानसिक स्थिति का द्योतक है। कैकेयी की सबसे बड़ी खूबी एवं कमजोरी है उसका मातृत्व। वैसे साधारण माता भी पुत्र की मृत्यु की चर्चा सह नहीं सकती, लेकिन कैकेयी जैसी पुत्र-प्रेम में पागल माता के लिए तो और भी असह्य हो सकता है। पर कैकेयी का आदेश उसकी अवस्था, बुद्धि, मर्यादा सभी को लाँघकर बह निकलता है । कैकेयी की उक्त रूपथ के दो कारण हैं-पहला भरत के चरित्र गौरव की रक्षा और दूसरा- अपने हृदय को दण्ड देने का विचार। गुप्तजी ने यहाँ बाह्य वातावरण के साथ सभी की मनोदशा का तादात्म्य दिखला कर भावों को गति को और भी तीव्रता प्रदान की है। भावों की गहनता और परिस्थिति की गंभीरता की सम्यक् अभिव्यक्ति हुई है। कैकेयी अपने इस कृत्य के लिए भाग्य या देवताओं या मंथरा को

दोषी न मानकर खुद को ही जिम्मेदार मानती है । जब वह कहती है- "मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।" राम के साथ संवाद में अपने मातृत्व की, राम के प्रति अपार स्नेह की झाँकी कराती हुई कहती है-

"कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य मात्र क्या तेरा
पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा ।"

मातृत्व को लांछित करने का जिम्मा स्वयं पर लेती हुई कहती है कि-अब तक लोक में "पुत्र-कुपुत्र हो सकता है पर माता कुमाता नहीं" यही प्रचलित था पर अब-

"अब कहें सभी हाय! विरुद्ध विधाता,
है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता-माता।"

अपने आप पर धिक्कार की भावना व्यक्त करती हुई रानी कहती है-

"युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।"

कैकेयी द्वारा अस्खलित रूप से स्व की प्रताड़ना, पीड़ा-व्यथा की अभिव्यक्ति राम के लिए असह्य हो जाती है । माँ के साथ राम भी भाव-प्रवाह में बहकर कह उठते हैं-

"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई ।"

समस्त सभा राम के इस कथन को चिल्लाकर दोहराती है। साधारण लगने वाली इन पंक्तियों पर गौर किया जाय तो एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है और वह है- "मानव हृदय के रहस्यों में प्रवेश करने की गुप्तजी की अतुल क्षमता" अपराधभाव से जलती हुई कैकेयी के लिए उक्त पंक्तियाँ उपचार का काम करती हैं। राम के इन शब्दों से कैकेयी को अपार शान्ति का अनुभव होता है । कैकेयी जैसी स्वाभिमानी रानी को दया, करुणा की अपेक्षा नहीं बल्कि शुद्ध स्नेह की आवश्यकता थी। रानी के स्वयं के शब्दों में-

"सह सकती हूँ चिर नरक, सुने सुविचारी,
पर मुझे स्वर्ग की दया दण्ड से भारी।"

अन्त में रानी कैकेयी पिघलकर-गोमुखी गंगा-शुद्ध भाव से राम के प्रति अपना मातृत्व भाव प्रक्ट करती है जिसमें भाव एवं तर्क का गुप्तजी ने अद्भुत समन्वय किया है- जैसे

(1) "मैंने इसके ही लिए तुम्हें वन भेजा
घर चलो इसी के लिए न रुठी अब यों।"

(2) मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे।
मेरे सुने प्रिय रहो न मुझसे न्यारे।
मैं इसे न जानूं किन्तु जानते हो तुम ।।

(3) हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज संभालो ।
मैं पाल न सकी स्वधर्म, उसे तुम पालो ।

अन्त में एक अचूक उक्ति के आगे राम भी विवश हो जाते हैं-

"मेरे तो एक अधीर हृदय है बेटा
उसने फिर तुमकी आज भुजा भर भेंटा।"

वस्तुत: भरत और राम तथा राम और कैकेयी के संवाद से ऐसा लगता है जैसे चित्रकूट में सुख और दुःख की लहरों के साथ आवेग का सागर उमड़ पड़ा है। उन लहरों में कैकेयी का कलंक का काला रंग यह जाता है। कवि की भावुकता की स्थिति सर्जन करने की क्षमता, भाव प्रवणता, तर्क के साथ, संबंधों की मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखते हुए, कुशलतापूर्व भ्रातृत्व एवं मातृत्व की अभिव्यक्ति का बोध हमें सहज रूप में होता है। कविता का अभिप्रेत यह है कि-उपेक्षित घृणित के प्रति सहानुभूति ही महत्ता महान् आत्माओं में ही होती है। मानव-मन की संकल्प-विकल्प की स्थिति में परिवर्तित मनोदशा का सूक्ष्म अंकन कवि ने किया है। समूचे प्रसंग से कैकेयी एवं भरत के चरित्रों को गौरव और ऊँचाई मिलती है, जो कवि का लक्ष्य भी था।

2.3 मैथिलीशरण गुप्त का काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

'साकेत' महाकाव्य है। आचार्यो एवं आलोचकों ने नाटक, प्रबंधकाव्य आदि विधाओं के लिए विभिन्न शैलियाँ बतलाई है। काव्यगत तीन शैलियाँ बताई गई हैं-गीति शैली, नाट्य शैली और प्रबंध-शैली। वस्तुत: इस वर्गीकरण को पकड़कर किसी काव्य का निर्माण कोई कवि नहीं करता है। प्रबंध में गीत और नाटक दोनों तत्वों का किसी न किसी रूप मैं समावेश हो ही जाता है। प्रबंध काव्य में गीत की अपेक्षा वर्णन प्रमुख होता है, क्योंकि घटनाओं को क्रमबद्ध प्रस्तुति करनी होती है। 'साकेत' के अभिव्यंजनात्मक पक्ष की चर्चा में सबसे प्रथम कथा-वर्णन के लिए कवि ने जिस तकनीक को अपनाया है, उसकी विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

2.3.1 प्रबंधात्मकता

प्रबंध में कथा का अविच्छिन्न प्रवाह अत्यंत आवश्यक होता है। 'साकेत' में कवि ने मुख्य-मुख्य दृश्यों को अन्वित कर धारा प्रवाह की कोशिश की है- जैसे उर्मिला-लक्ष्मण के परिहास के द्वारा अभिषेक की सूचना तो कैकेयी मन्थरा के संवाद से वियोग का बीज-वपन होता है । कवि कुशलतापूर्वक एक साथ दूसरे दृश्य को जोड़ देता है- जैसे मन्थरा के नेत्रों को कीट बनाता हुआ छोटे-छोटे दूसरे दृश्य पर चले जाना। एक ओर कैकेयी की ईर्ष्या और रोष, तो दूसरी ओर कौशल्या के आह्लाद का दृश्य। उर्मिला-लक्ष्मण वार्तालाप, राम की मनोदशा, दशरथ की चिन्ता का चित्रण क्रम में चलता है। इसी क्रम में कवि ने लौटते दशरथ की कैकेयी से भेंट करवा के वर-याचना के प्रसंग को जोड़ा है। हालांकि कहीं-कहीं कविता का प्रयास स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, तथापि

कथा की घटनाएँ प्राय: एक दूसरे से निकलती हों, ऐसी अन्विति कवि ने की है। कहीं इतनी सहज अन्विति की है- जैसे दशरथ के मूर्च्छित होते ही राम-लक्ष्मण का- "चलो पितृ वन्दना करने चलें अब" कह कर वहाँ उपस्थित करवाना या भरत के लौटने पर मन्थरा की हँसी से भरत को भावी अमंगल की सूचना का आभास होना। एक अन्य बात यह है कि जहाँ भावनाओं का प्राबल्य है ऐसे स्थानों पर कवि ने वाक् संयम-प्राय: मौन से काम लिया है। ऐसा करने से जहाँ एक ओर भाव की पूर्व अभिव्यक्ति हो पायी है वहाँ दूसरी ओर वर्णन में गतिरोध होने से कथा में विचित्रता आ गई है। जैसे- सीता और लक्ष्मण को राम के साथ वन में जाने के लिए 'साकेत' में लंबा विवाद नहीं करना पड़ता है, लक्ष्मण और सीता के निश्चय को कवि एक पंक्ति में कह देता है जैसे-

लक्ष्मण-बिदा की बात किससे और किसको
अपेक्षा कुछ नहीं है नाथ इसकी।
सीता-कहती क्या वे प्रिय जाया
जहाँ प्रकाश वहाँ छाया ।

भरत के आगमन पर कैकेयी भी एक सांस में सारी बातें कह देती है। ऐसे कई स्थल 'साकेत' में है, जहाँ भावों की प्रबलता, संकुलता के समय कवि ने सटीक, संक्षिप्त, मौन रहकर कहने की शैली अपनाई है। कथा-वर्णन के उपकरण के लिए कथोपकथन, दृश्य-चित्रण आदि की सहायता ली गयी है। कहीं-कहीं भाषण एवं स्वगत कथन शैली का प्रयोग किया है-जैसे वरयाचना की बात सुनकर शत्रुध्न का क्रान्तिकारी भाषण, चित्रकूट में सीता का स्वगत कथन। कहीं अनुमान का सहारा लिया है- जैसे आभरण रहित सितवसना माता को देख राम को पिता की मृत्यु का अनुमान। कवि का अभिप्रेत रामायण या रामचरितमानस की कथा दुबारा कहना नहीं था। अत: रामायण के ऐसे प्रसंगों, कथा को जिसे लोग जानते हैं उसे इतिवृत्तात्मक शैली में कहकर अपनी लक्ष्यसिद्धि की है- जैसे उर्मिला का रघु-राजाओं की वंश परम्परा, राम-लक्ष्मण के जन्म आदि का वर्णन सरयू से करना है। अपनी बाल्य अवस्था की क्रीड़ाओं का स्मृतिरूप में वर्णन। हनुमान द्वारा सीताहरण से लक्ष्मण शक्ति तक की घटनाओं की सूचना देना। हाँ एक बात जरूर है कि ऐसा करने पर भी कवि स्वाभाविकता, सहजता को छोड़ नहीं पाया, यही कवि के वर्णन-कौशल की विशिष्टता है। कथा-वर्णन में रोचकता एवं उत्सुकता का सफल विनियोग हुआ है। पूर्वरचित घटनाओं में कवि ने मौलिक उद्भावना करके इस तत्व को बनाये रखा है और पाठक पर उसका चिर प्रभाव भी छोड़ा है- जैसे चित्रकूट में कैकेयी की सफाई, उर्मिला-लक्ष्मण का क्षणिक मिलन, राम-रावण युद्ध आदि ऐसे ही स्थान हैं। कवि ने नाटकीय टर्न का प्रयोग कर उत्सुकता को बरकरार रखा है- जैसे राम के द्वारा- "उसके आशय की थाह मिलेगी किसको, जानकर जननी भी जान न पाई जिसको", कहने से भरत की ग्लानि को दूर करना, तो साथ में कैकेयी द्वारा इसे सुनकर अपनी बात कहने का मौका मिलना एक तरह से कथा प्रवाह को निश्चित दिशा में गति प्रदान किया है। नाटकीय विषमता या पूर्व संकेत का नाटक एवं कहानी

में प्रयोग विस्मय या कौतूहल की सृष्टि कर सहज ढंग से प्रयोग किया है जैसे- परिस्थिति की विषमता के उदाहरण के रूप में लक्ष्मण-उर्मिला के संवाद में-उर्मिला द्वारा लक्ष्मण का चित्र खींचते समय पीत रेखा का बहकर अभिषेक घट पे जाना भावी घटना का संकेत है । ऐसा ही दूसरा प्रसंग चित्रकूट में राम-सीता के परिहास में-

"करतल तक तो तुम हुई नवल दल मग्ना,

ऐसा न हो कि मैं फिरूं खोजता तुमको" में सीता के अपहरण के अनन्तर राम का सीता की खोज में भटकने का संकेत देता है।

कवि ने नाटकीय टर्न, विषमता या पूर्व संकेत को पूर्वापर क्रम में जोड़कर उसकी कार्य-कारण की तर्कबद्ध प्रस्तुति की है, जैसे भरत की कैकेयी के प्रति भर्त्सना साकेत में है, तो वहीं चित्रकूट में कैकेयी के प्रायश्चित के रूप में फूट पड़ती है- एक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा । भरत कहता है "सूर्यकुल में यह कलंक कठोर,निरख तो तू तनिक नभ कीं ओर" तो कैकेयी का चित्रकूट में कथन-

"युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी"

वैसे ही 'अभीप्सित' शब्द प्रयोग में राम, भरत के संवाद में विभिन्न भावाभिव्यक्ति हुई कथा वर्णन में कई दोष भी हैं- जैसे सजीवता का अभाव-विशेषकर तीसरे, चौथे और छठे सर्ग में। निर्जीव वर्णन जैसे कवि बलात् कर रहा है, ऐसा लगता है। कथावर्णन में एक अन्य दोष है- 'अनुपात' में कमी। कथा की गति आवश्यकता से अधिक विषम है। शुरूआत में मन्थरा, बीच में स्थिरता और अन्त में इतनी द्रुत गति मानो कुछ कहने-सुनने का समय नहीं है।

2.3.2 दृश्य विधान

'साकेत' में लंबी कथा है। परिस्थिति के अनुसार कवि ने प्राकृतिक एवं भौतिक दृश्य-विधान किया है। कथा के पात्र जब भौतिक जीवन के संकुचित घेरे में कार्यरत होते हैं तब उनके भावों और विचारों को समझने के लिए भौतिक दृश्यविधान की आवश्यकता होती है और जब पात्रों के भावों में विस्तार आ जाता है, उनकी क्रीड़ा स्थली उन्मुक्त प्रकृति बन जाती है तब प्राकृतिक दृश्य विधान की जरूरत होती है। गुप्तजी ने दोनों प्रकार के दृश्यों का नियोजन किया है। जैसे, प्रारम्भ में साकेत नगरी और राजप्रासाद का वैभवपूर्ण वर्णन है जो भव्य है। ऐसे ही साकेत में प्राकृतिक दृश्य भी अधिक हैं जो पात्रों के भवों पर घात-प्रतिघात करने वाले हैं। 'साकेत' में प्रकृति के चित्र नहीं, वर्णन है। कहीं-कहीं उसमें शिथिलता भी नजर आती है- जैसे पहले सर्ग का प्रभात-वर्णन। चित्रकूट की सभा उठ जाने के बाद सभी के मन में जगी प्रसन्नता, हृदय का हर्ष, निर्मल मन का अंकन कवि ने प्रकृति के सुंदर चित्र खींच कर किया है, जैसे-

मूँदे अनन्त ने नयन धार वह झाँकी,
शशि खिसक गया निश्चित हँसी-हँसी बाँकी।

द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला,
हाटक-पट पहने दीख पड़ी गिरि माला।

ठीक वैसे ही कवि ने वातावरण एवं भाव की तीव्र अभिव्यक्ति के लिए मानव मुद्राओं का सूक्ष्म चित्रण किया है। राम के वनवास जाने की खबर लोगों तक नहीं पहुँची थी, परन्तु वातावरण में व्याप्त चिन्ता और उत्सुकता को कवि ने इन पंक्तियों में चित्रित किया है-

झुका कर सिर प्रथम, फिर टक लगाकर,
निरखते पार्श्व से थे भृत्य आकार।

इसी प्रकार कवि ने स्थिर एवं गतिशील चित्रों का भी सुंदर चित्रण किया है। जैसे गति-चित्र का एक उदाहरण-

तनिक ठिठक, कुछ मुड़कर बाएँ देख अजिर में उनकी ओर,
शीश झुका कर चली गई वह मंदिर में निज हृदय हिलोर।

उक्त पंक्तियों में एक साथ कई गतियों का अंकन हुआ है। चित्रांकन के लिए सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता रहती है। कवि ने चित्रकूट में विधवा कौशल्या का जो चित्र खींचा है, उससे राम के मन पर उसका जो प्रभाव पड़ा, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है, जैसे-

जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,
हत जिसकी पंकज पंक्ति अचल सी काया।
उस सरसी-सी आभरण रहित, सित-वसना,
सिहरे प्रभु माँ को देख, हुई जड़ रसना।।

सित-वसना, निराभरण, विधवा रानी के दर्शन का जो प्रभाव पड़ा, उसका प्रभाव जो राम पर पड़ा है, उसे ज्यों का त्यों पाठक के मन पर उतारने के लिए कवि ने वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना की है।

2.3.3 संवाद

संवाद के द्वारा कथा की गति आगे बढ़ती है, चरित्र की गहन गुत्थियाँ सुलझती हैं और वर्णन में प्राण आते हैं। इस दृष्टि से संवाद को एक महत्वपूर्ण उपकरण माना गया है। 'साकेत' में उर्मिला-लक्ष्मण संवाद, दशरथ-कैकेयी आदि संवादों से जहाँ कथा को गति मिली है, वहीं दूसरी ओर भरत-कैकेयी वार्तालाप, मन्थरा-कैकेयी का विवाद, राम और भरत के वार्तालाप आदि से चरित्र की अंतर्वृत्तियों का विश्लेषण हुआ है। कुछ संवादों से जैसे-राम-सीता के प्रणय परिहास अथवा सीता-लक्ष्मण के संवाद से विनोद, राम-भरत के संवाद से वर्णन सजीवता, सरसता आई है। 'साकेत' के संवादों में सजीवता, स्वाभाविकता, परिस्थिति और पात्रानुरूपता, गतिशीलता और रसात्मकता का सुंदर विनियोग हुआ है। जैसे लक्ष्मण के संवाद में उनकी स्वाभाविक गर्मी दिखती है। लक्ष्मण की उग्र प्रकृति का बोध उनके कैकेयी के साथ संवाद में तथा चित्रकूट में भरत को

ससैन्य आते देख जो संवाद है, उसमें होता है। हालांकि दोनों परिस्थितियों के अनुसार उतार-चढ़ाव भी अलग-अलग है। सजीवता और उद्दीप्ति का सुंदर उदाहरण है- कैकेयी का संवाद। कैकेयी की ग्लानि हो या क्रोध या अभिमान या पश्चाताप, सभी में एक उद्दीप्ति नजर आती है। इसी कारण कैकेयी साकेत के सबसे प्राणवान चरित्र के रूप में उभरती है। ठीक इसी तरह सभी संवादों में रसात्मकता का पुट भी मिलता है- जैसे उर्मिला-लक्ष्मण संवाद, राम-सीता संवाद एवं भरत कौशल्या, राम-कैकेयी के संवाद में भावुकता का मधुर प्रसाद मिलता है तो प्रेम के परिहास में कहीं व्यंग्य, कहीं-कहीं मीठी चुटकी, कहीं हल्का- सा मान मिलता है। जैसे परिहास का सुंदर उदाहरण-

उर्मि ला बोली- "अजी तुम जग गये
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये।"

लक्ष्मण- "मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।'

यहाँ 'जागरण' और 'स्वप्ननिधि' के लिंग को दृष्टि में रखकर परिहास किया गया है। अत: बड़ा सूक्ष्म हो गया है। 'साकेत' में संवादों की विशेषता है कि उसकी रोचकता में। वार्तालाप में प्रत्युत्पन्नमति, सौजन्य और संगति से रोचकता आती है। 'साकेत' में ये सर्वत्र मिलता है। जैसे राम-रावण के उत्तर-प्रत्युतर में प्रत्युत्पन्नमति से जन्य रोचकता देखिए-

रावण-पंचानन के गुहाद्वार पर रक्षा किसकी?
मैं तो हूँ विख्यात दशानन, सुधकर इसकी।

राम- हँस बोले प्रभु- 'तभी तो द्विगुण पशुता है तुझमें?'
तूने ही आखेट रंग उपजाया मुझमें।

भरत के ससैन्य चित्रकूट में अलमन पर राम-लक्ष्मण के संवाद में संगति का कुशल प्रयोग हुआ है, जब राम कहते है-

"माता का चाहा किया राम ने आहा,
तो भरत करेंगे क्यों न पिता का' चाहा?"

2.3.4 अप्रस्तुत योजना

'साकेत' में कई ऐसे स्थान हैं, जहाँ कवि ने विभिन्न आधारों पर प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत का विधान किया है और उसमें भी विशेषकर समान अप्रस्तुत का। सामान्यत: वस्तु के सजीव वर्णन करने के लिए सादृश्य का और भाव को तीव्र करने के लिए साधर्म्य का प्रयोग होता आया है। 'साकेत' का एक दर्शनीय अप्रस्तुत विधान का उदाहरण-

"रथ मानो एक रिक्त घन था जल भी न था न वह गर्जन था"

राम को छोड़कर आये हुए रथ की समानता रिक्त-धन से दिखाई गई है। जिस प्रकार अपना सब जल लुटा कर धन सूनेपन, अभाव से मंथर गति से लौटता है वैसे ही राम को छोड़ने के बाद घोड़ों में उत्साह नहीं था, सारथी व्यथा-विमूढ़ था। गति में जीवन न होने के कारण सूने पथ पर मन्थर गति से खिसकते हुए बादलों के समान रथ चल रहा था। ठीक इसी प्रकार कवि ने बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप को सादृश्य के आधार पर बड़े सूक्ष्म कौशल से अंकित किया है-

"जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,
हत जिसकी पंकज-पंक्ति अचल-सी काया।
उस सरसी-सी आभरण रहित, सितवसना,
सिहरे प्रभु माँ को देख, हुई जड़ रसना।"

कौशल्या के विधवा-देश की इससे और अधिक सुंदर अभिव्यक्ति क्या हो सकती है भला ! कुछ अमूर्त भावनाएँ हमारे निकट इतनी स्पष्ट होती हैं कि हम उनको मूर्त रूप में ही देखते हैं। 'साकेत' में ऐसे कई उदाहरण मिलते है। जैसे-कवि ने विषादयुक्त मांडवी के वर्णन में विषाद को लौहतन्तु के रूप में अनुभव किया है और मांडवी के तेजोद्दीप्त मुख मंडल को मोती के रूप में। जैसे लौहतन्तु से मोती की स्वाभाविक शोभा में व्याघात पड़ता है, उसी प्रकार विषाद के कारण मांडवी का तेज स्वाभाविक रूप में प्रकाशित नहीं हो रहा था-

"फिर भी एक विषाद वदन के तपस्तेज में बैठा था,
मानो लौहतन्तु मोती को बेध-उसी में बैठा था।"

इसी प्रकार अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत का आच्छादन, प्रस्तुत के स्थान पर प्रतीक का प्रयोग, प्रस्तुत वर्णन के पीछे अप्रस्तुत चेतन चित्र, व्यक्ति के स्थान पर गुण का ग्रहण, विशेषण विपर्यय, लक्ष्मणा, व्यंजना आश्रित प्रणालियों का कलात्मक प्रयोग, अतिशयोक्ति, प्रसंग गर्भत्व आदि की अभिव्यंजना कौशल के रूप में कवि ने चमत्कारिक प्रयोग किया है। प्रसंगगर्भत्व का एक दर्शनीय उदाहरण-

कराणे, क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई-
मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई?

इसे पढ़ते ही भवभूति और उत्तररामचरित के साथ जुड़े हुए करुण रस की स्मृति हो उठती है।

2.3.5 भाषा

गुप्तजी भाषा में बोधगम्यता, सहजता के साथ चमत्कारिक शक्ति के दर्शन होते है। वैसे उनके काव्यों में प्रौढ़ रचना के रूप में 'साकेत' में भाषा की जो विशेषताएँ हैं वे उनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट है ही। खड़ी बोली के विकास के दूसरे चरण में द्विवेदी युग है। अत: अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के लिए गुप्तजी को

अन्य प्रमुख कवियों की भाँति संस्कृति शब्दों की शरण में जाना पड़ा है। 'साकेत' में प्रचुर मात्रा में संस्कृत पदावली का प्रयोग हुआ है। संस्कृत शब्दों के प्रयोग का आग्रहवश प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि प्रभाव वृद्धि के लिए किया गया है। कहीं-कहीं अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है-जैसे अरुंतुद, त्वेष, कल्प, आज्य, जिष्णु आदि के प्रयोग तुकपूर्ती हेतु के अतिरिक्त अन्य किसी विशेष उद्देश्य से किया गया हो ऐसा लगता नहीं है।

कुछ स्थानों पर संस्कृत व्याकरण के अनुसार नए शब्दों का निर्माण भी किया है- जैसे लाक्ष्मण्य, सपरगांबुजता। इसी तरह कवि ने असमस्त पदावली का प्रयोग अधिकतर किया है तथापि कुछ स्थानों पर काफी लम्बे पदों का प्रयोग देखने को मिलता है, जैसे- जन-धात्री-स्तन-पान-लालसा, प्रवृत्ति-निवृत्तिमार्ग-मर्यादा-मार्मिक, चपल-वल्गित-गति-लक्ष्मी आदि, लेकिन ऐसे स्थान बहुत कम है।

कवि ने कहीं-तद्भव शब्दों को तत्सम से जोड़ कर एक नया प्रयोग किया है जैसे दिन-रात संधि, कहीं अप्रचलित शब्दों को जोड़ा गया है, जैसे दोष-दूर-कारण, भूमि-भार, हारक आदि।

बहुत कम ही, लेकिन कवि ने प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग भी किया है- जैसे भरके, झींमना, छींटना, अपूर, धाता, धड़ाम, लंघन आदि। ऐसे शब्दों के प्रयोग से एक ओर जहाँ भाषा की शुद्धता को आघात पहुँचता है, वहीं दूसरी ओर माधुर्य एवं प्रभाव-वृद्धि में इनकी अहम भूमिका सिद्ध होती है। जैसे-

धाड़ मार कर वे बोलीं, कह कर हाय धड़ाम गिरी,

इसी प्रकार की जो, दीजो, मानियो, जानियो, जाय आदि क्रियाओं के पांडित्यपूर्ण प्रान्तीय प्रयोग मिलते हैं।

व्याकरण की दृष्टि से देखा जाय तो 'साकेत' की भाषा में कहीं अन्वय-दोष नहीं मिलता है, पूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया गया है। जैसे-

पूर्व पुण्य के क्षय होने तक पापी भी तो दुर्जय है,
सरला अबला आर्या ही के लिए आज मुझको भय है।

कवि की वाक्य-रचना पर कहीं-कहीं अंग्रेजी का प्रभाव दिखाई देता है, लेकिन ऐसे प्रयोग से नाटकीयता में वृद्धि होती है, जैसे-

तुम्हीं पार कर रहे आज जिसको अहो
सीता हँस कहा, "क्यों न देवर कहो।"

'साकेत' में कवि के भाषा पर अधिकार की शक्ति का अनुभव हमें होता है। चाहे वहाँ जिस रूप में, बड़े ही स्वाभाविक सरल ढंग से भाषा का प्रयोग करते नजर आते हैं। कवि को शब्द ढूँढना नहीं पड़ा है- जैसे

"सत्य है यह अथवा परिहास
सत्य है तो है सत्यानाश

हास्य है तो है हत्या-पाश।"

चाहे हम तुकान्त कहे लेकिन इसका प्रयोग भी बड़ी सरलता से किया है। यही प्रमाण है कवि के भाषा पर प्रभुत्व का।

प्रस्तुत काव्य में शब्दों और वाक्यों को पकड़ कर फिर उसका व्यंग्य के साथ प्रयोग किया है। ऐसे ही वाक्चातुर्य एवं उत्तर-प्रत्युत्तर के साधन रूप में शब्दों का प्रयोग कर कवि ने संवाद में नाटकीयता, सजीवता को भरकर प्रभाव उत्पन्न किया है। जैसे-भरत-राम के वार्तालाप में ' अभीप्सित' शब्द का और कैकेयी राम के संवाद में 'जनकर जननी भी जान न पाई जिसको' वाक्य का प्रयोग इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। लक्ष्मण-उर्मिला, लक्ष्मण-सीता और लक्ष्मण-मेघनाद के संवाद में यह देखा जा सकता है। कवि कुछ स्थानों पर थोड़े में बहुत कहकर अपनी भाषा-सामर्थ्य का दर्शन कराते हैं-जैसे

"प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार,
मृत्यु दण्ड उन तात को, राज्य तुझे धिक्कार।"

'साकेत' में जहाँ एक ओर तुक मिलाने हेतु शब्दों का प्रयोग मिलता है, वहीं दूसरी ओर माधुर्य से लबालब भरे हुए शब्दों का प्रयोग एवं यहाँ भाषा के स्वच्छ प्रयोग के सुंदर उदाहरणों की भी कमी नहीं है।

'साकेत' की भाषा की एक अन्य विशेषता यह है, पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग। एक ही श्रेणी के पात्र होने के बावजूद स्वभाव एवं प्रसंग के वैविध्य से भाषा प्रयोग में विविधता नजर आती है। लक्ष्मण की वाणी में गर्मी और औद्धत्य, उर्मिला की वाणी में शील का मार्दव एवं चंचलता, राम के वाक्य गंभीर एवं दृढ, सीता के वाक्य में एकान्त सरलता एवं भोलापन दृष्टिगत होता है।

इसके अलावा 'साकेत' की भाषा में लाक्षणिकता एवं मूर्तिमत्ता भी पाई जाती है। कुल मिलाकर कहा जाता है कि गुप्तजी की भाषा में श्लिष्ट एवं प्रौढ़ रूप में खड़ी बोली के दर्शन होते हैं। अलंकारों का सहज प्रयोग भाषा को अधिक शक्ति एवं प्रभाव देता हैं

2.3.6 छंद योजना

'साकेत' सर्गबद्ध प्रबंध काव्य है। प्रबंध में छन्दों के वैविध्य एवं प्रत्येक सर्ग में नये छंद का प्रयोग होना जरूरी माना गया है। 'साकेत' में छंदों का भाव एवं पात्र की प्रसंगानुकूलता के अनुसार प्रयोग हुआ है। जैसे प्रथम सर्ग में लक्ष्मण-उर्मिला के परिहास के प्रयोग में कवि ने श्रृंगार के खास छन्द 'पीयुषवर्षण' का प्रयोग किया है। इस छन्द में परिहासोचित चंचलता और गति का आभास दोनों तत्व है। दूसरे सर्ग में कैकेयी-मन्थरा-संवाद में खून की तेज गतिवाली मनोदशा के लिए उसी के अनुकूल 16 मात्राओं के छोटे श्रृंगार छंद का प्रयोग किया है जिससे भावनाओं का तारतम्य ठीक तरह से प्रकट हो-

"सामने से हट अधिक न बोल,
द्विजिहवै रस में विष मत घोल ।।"

तीसरे सर्ग में दशरथ के विलाप में सुमेरु का प्रयोग दशरथ की व्यथा करने में असहाय बनता है। चौथे सर्ग में गार्हस्थ चित्रों के अंकन के लिए मानव छन्द का उपयुक्त प्रयोग हुआ है। पाँचवें सर्ग में कथा की विलास-मन्थर गति के अनुकूल छन्द को रखा है। फिर छठे सर्ग में दशरथ की मृत्यु से कथा की गति के अनुकूल 'पदपादाकुलक' छन्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार सातवें सर्ग में भरत के शोक और ग्लानि की अभिव्यक्ति के कारण कथा स्थिर है तो वहाँ छन्द भी वैसा ही है।

आठवें सर्ग में कैकेयी के रंगमंच पर आने के कारण कथा में गति है। आठवें सर्ग में एक ही छंद के प्रयोग में दो भिन्न-चित्र खींचे हैं, जैसे-सीता और कैकेयी का। सीता शान्त, सरल सुखी है तो कैकेयी आगबबूला है। नवम सर्ग में विरह में भावना के अस्त-व्यस्त होने के कारण विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है।

दूसरी एक विशेषता यह है कि महाकाव्य की रुढ़ि के अनुसार सर्गान्त में छन्द परिवर्तन किया गया है, जिसमें उपाख्यान समाप्ति के साथ आगे का संकेत किया गया है। कवि कुल मिलाकर-उपर्युक्त छन्दों के अलावा आर्या, गीति, आर्यागीति, शार्दूलविक्रीड़ित, शिखरिणी, मालिनी, द्रुत-विलम्बित आदि संस्कृत तथा दोहा सोरठा, घनाक्षरी, सवैया जैसे प्राचीन छन्दों का सुंदर, कलात्मक प्रयोग किया। छन्दों के इन वैविध्यपूर्ण प्रयोग में कवि-कौशल दृष्टिगत होता है। छन्दों के प्रयोग में राग की अन्तर्धारा एवं सरल प्रवाह दिखाई देता है। आर्या के उपभेदों का इतना सुंदर प्रयोग प्रथम बार साकेत में हुआ है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी की शैली, उनके काव्य का कलापक्ष इतना सशक्त, दृढ़ है, जिसमें भाषा की स्वाभाविकता, सरलता, सहजता जैसे गुण होने के साथ-साथ चमत्कारिक शब्द एवं वाक्य प्रयोग, अभिव्यंजना के लिए अप्रस्तुत योजना का विभिन्न आधारों पर प्रयोग, संवादों का प्रभाव, छन्द योजना में वैविध्य सब एक साथ मिलकर कवि की अप्रतिम शक्ति एवं प्रतिभा का बोध कराते हैं

2.4 मूल्यांकन

प्रबंध काव्य के रूप में 'साकेत' गुप्तजी की सफल रचना है। गृहस्थ जीवन के विविध चित्रों का अंकन 'साकेत' में प्राप्त होता है। उर्मिला, कैकेयी एवं भरत के चरित्रों का उत्कर्ष किया गया है। संवादों के माध्यम से नाटकीयता का प्रभावात्मक प्रयोग प्रबंध में हुआ है। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप खड़ी बोली का उत्कृष्ट प्रयोग एवं प्रबंधात्मक शैली में उसका निर्वाह सुंदर रूप में हुआ है। एक वर्ग के चरित्र होने के बावजूद परिस्थिति के अनुसार स्वाभाविक वैविध्य दिखाई देता है। दृश्य-विधान, अप्रस्तुत-योजना के कारण काव्य के कुछ अंश अविस्मरणीय प्रभाव छोड़ जाते है, जैसे-राम-सीता, लक्ष्मण-उर्मिला का परिहास, राम-भरत एवं राम-कैकेयी का संवाद, उर्मिला का विरह। अपरिचित तत्सम शब्दों के प्रयोग का आग्रह तुकबन्दी एवं कुछ वर्णन में नीरसता 'साकेत' की सीमाएँ कही जा सकती है, तथापि समग्रता में 'साकेत' सफल प्रबंधकाव्य एवं गुप्तजी श्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं।

2.5 विचार-संदर्भ और शब्दावली

1. 'अभीप्सित' शब्द का विविध संदर्भगत प्रयोग, जिसके कारण अनेक अर्थ की अभिव्यक्ति करता है- राम का भरत के प्रति अगाध भ्रातृप्रेम, भरत का राम के प्रति समर्पण, स्नेह, अनन्य भ्रातृस्नेह, भरत की अपनी व्यथा, पीड़ा, कैकेयी के प्रति आक्रोश आदि।
2. 'मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी' का प्रयोग उर्मिला के लक्ष्मण के प्रति पत्नी के प्रति उपेक्षा, कर्तव्य की उपेक्षा का संकेत, पति के प्रति समर्पण स्नेह आदि कई भावों की एक साथ अभिव्यक्ति करता है। हरिण जो उपवन का है, आज वह वनचारी हो गया है, बड़ा ही मार्मिक बनाता है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताएँ बताइए।
2. मैथिलीशरण गुप्त के अनुभूति पक्ष की चर्चा कीजिए।
3. मैथिलीशरण गुप्त के अभिव्यंजना-पक्ष पर प्रकाश डालिए।
4. कैकेयी-राम के संवाद को बीस पंक्तियों में बताइए।
5. राम-भरत के चित्रकूट मिलन प्रसंग की चर्चा कीजिए।

2.7 संदर्भ ग्रंथ

1. मैथिलीशरण गुप्त- 'साकेत' साकेत प्रकाशन, चिरगाँव झाँसी-1997
2. डॉ. नगेन्द्र- 'साकेत' एक अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली- 2, 1987
3. डॉ. मंजुला तिवारी - मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ
4. डॉ. आशा गुप्ता - मैथिलीशरण गुप्त का काव्य : सांस्कृतिक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1997
5. उमाकान्त- मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-2, 1964
6. डॉ. द्वारका प्रसाद मित्तल- मैथिलीशरण गुप्ता का साहित्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर- 1978

♦♦♦

इकाई - 3 प्रसाद का काव्य : कामायनी
(चिंता. श्रद्धा. लज्जा एवं आनंद सर्ग)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कवि परिचय

- 3.2.1 प्रसाद का जीवन परिचय
- 3.2.2 प्रसाद का व्यक्तित्व
- 3.2.3 सृजन-कर्म

3.3 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

- 3.3.1 ओ चिंता की पहली रेखा
- 3.3.2 अरी उपेक्षा-भरी अमरते
- 3.3.3 उषा की पहली लेखा कान्त
- 3.3.4 प्रकृति के यौवन का श्रृंगार
- 3.3.5 लाली बन सरल कपोलों में
- 3.3.6 नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
- 3.3.7 हम अन्य न और कुटुम्बी
- 3.3.8 समरस थे जड या चेतन

3.4 सारांश एवं मूल्यांकन

3.5 संदर्भ गन्थ

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- द्विवेदीयुगीन कविता की पृष्ठभूमि में छायावादी काव्य-प्रवृत्ति के नवीन रूप को समझ सकेंगे।
- जयशंकर प्रसाद की काव्य संवेदना एवं छायावादी कवियों से उनके वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
- कवि-जीवन के साथ-साथ उनके रचनाकार व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे ।
- कामायनी' के काव्य-वैशिष्ट्य के साथ ही उसके कुछ व्याख्या योग्य अंशों की कलात्मकता को पहचान सकेंगे।
- कामायनी कीं 'काव्यभाषा' तथा बिंब, प्रतीक आदि शिल्पगत विशेषताओं को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी काव्य-संवेदना द्विवेदीयुगीन साहित्य-परम्परा से प्रेरित होते हुए भी एक? नवीन काव्यप्रवृति की प्रतिष्ठा करते हुए विकसित हुई थी। उन्होंने द्विवेदीयुगीन आदर्शवादी मूल्यों को तो आत्मसात् किया ही था, साथ ही खड़ी बोली हिन्दी की कोमलकांत पदावली और लालित्य से ओतप्रोत काव्यभाषा में नए भावबोध की कविताएँ लिखते हुए मानव-जीवन और प्रकृति के अन्त:सौन्दर्य का उद्घाटन भी अत्यधिक कलात्मक रूप में किया था। इस प्रकार प्रसाद का काव्य प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण के साथ ही भारतीय सांस्कृतिक चेतना और मानवातावादी मूल्यों का परिचायक रहा है। उनके काव्य का एक पक्ष जीवन की वेदना और करुणा को उभारता प्रतीत होता है, तो दूसरा पक्ष जीवन की विषमताओं और कोलाहलभरी दुनिया से अलग एक कल्पनालोक की छवि अंकित करता प्रतीत होता है जिसमें समरसता और शांति का साम्राज्य है। इस प्रकार युग-जीवन की छवियों के साथ ही प्रसाद के काव्य में रहस्यमयता और पलायन-बोध की प्रवृत्तियाँ भी हैं। इस अर्थ में अपने समकालीन कवि निराला एवं पंत से प्रसाद जी का काव्य थोड़ा भिन्न एवं विशिष्ट भी है। निराला के काव्य में विद्रोह एवं यथार्थ की चेतना अधिक सघन है तो पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति विशेष आग्रह है, लेकिन प्रसाद के काव्य में इन सब विशेषताओं का समन्वय एवं उदात्तता है जिसकी वजह से उनमें छायावाद की सभी विशेषताएँ केन्द्रीभूत होती दृष्टिगत होती हैं। हिन्दी स्वच्छंदतावादी काव्य पर अपने समय में जिस पाश्चात्य प्रभाव एवं बंगला के रहस्यवाद का लेबल लगाते हुए आलोचकों ने इसका विरोध किया था, एक प्रकार से प्रसाद जी का सारा काव्य एवं चिंतन उसका प्रत्युत्तर देता प्रतीत होता हैं। प्रसाद जी के काव्य की जो सबसे प्रमुख विशेषता है, वह है हमारा जातीय बोध। उन्होंने अतीत की परम्परा का सर्जनात्मक एवं युग-संदर्भों के अनुरूप उपयोग करते हुए छायावाद को हमारी जातीय परम्परा का काव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इस दृष्टि से 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध संग्रह में संगृहीत उनके निबंध यथार्थवाद और छायावाद तथा रहस्यवाद उल्लेखनीय हैं जिनमें उन्होंने छायावाद की मूल विशेषताएँ उद्घाटित करते हुए उसे भारतीय परम्परा का काव्य सिद्ध किया था। छायावाद के रूप में हिन्दी कविता में आए नये काव्यान्दोलन को सिंचित करके पल्लवित करने में प्रसाद जी का विशेष योगदान रहा है। मनुष्य के दुःख-सुख के साथ प्रकृति के सौन्दर्य में विराटता एवं अलौकिक सत्ता की अनुभूति प्रसादजी के काव्य में मार्मिक रूप में चित्रित होती देखी जा सकती है। प्रसादजी ने हिन्दी कविता को द्विवेदीयुगीन कविता की रूखी एवं उपदेशात्मक काव्य-शैली से मुक्त करके सरस एवं अनुभवजन्य बनाया। खड़ी बोली कविता की अभिव्यंजना शक्ति का विस्तार करते हुए उन्होंने उसे नए भावों एवं विषयों से सम्पृक्त किया। उनका संपूर्ण काव्य हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत है जिसमें प्रेम एवं सौन्दर्य की सूक्ष्म अभियव्यक्ति उनकी काव्य-संवेदना का मुख्य गुण है। शिल्प के धरातल पर भी प्रसाद का काव्य

विविधता लिये हुए है। हिन्दी गीति काव्य-परम्परा को उन्होंने युगानुरूप नवीनता एवं सरसता से सम्पन्न किया। गीत, प्रगीत, आख्यानपरक लम्बी कविताओं के साथ ही प्रबंध एवं मुक्तक सभी तरह की काव्य-शैलियों को अपनाते हुए उन्होंने हिन्दी कविता का फलक व्यापक बनाया। काव्य और संगीत का समन्वय प्रसाद की काव्यकला का एक विशेष गुण है। इस प्रकार प्रसाद का काव्य भाव, रस, रचना-विधान, काव्यभाषा, बिंब, प्रतीक, संगीत और लय की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में अद्‌वितीय है और उनकी परम्परा का विकास आगे चलकर अनेक कवियों में विविध रूपों में होता देखा जा सकता है ।

3.2 कवि परिचय

3.2.1 प्रसाद का जीवन-परिचय

प्रसाद जी का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में माघ शुक्ला दशम्, सं.1946 वि. (सन् 1889 ई.) को हुआ था। काशी में इनका परिवार 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध था। कवि प्रसाद के पितामह शिवरतन साहु काशी के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। लक्ष्मी और हृदय की उदारता का सुन्दर मेल इनके परिवार की ख्याति का एक और प्रमुख कारण था। कलाकारो और साहित्यकारों का इनके परिवार में विशेष मान था। काशी-राजघराने से भी प्रसाद के परिवार के अच्छे संबंध थे। 'जय जय शंकर' और 'हर-हर महादेव का अभिवादन' काशीराज के अलावा लोग इन्हीं के परिवार वालों से करते थे।

ऐसे ही सम्पन्न तथा कला, साहित्य एवं संगीत के वातावरण से सुवासित सुसंस्कृत परिवार में प्रसादजी का बचपन बीता था। अपने बचपन में प्रसाद जी ने बहुत वैभव का जीवन देखा था। प्रसाद जी ने काशी के क्वींस कॉलेज में आठवीं तक की शिक्षा विधिवत् रूप में प्राप्त की थी, लेकिन पिता के असामयिक निधन (1901 ई.) के पश्चात् उनके बड़े भाई शंभुरतनजी ने उनकी शिक्षा का पूरा प्रबंध घर पर ही कर दिया था। उन्होंने कई शिक्षकों से संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। प्रसाद जी बचपन से ही प्रतिभा सम्पन्न थे। नौ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने 'लघु कौमुदी' और 'अमरकोश' जैसे ग्रन्थ कंठस्थ कर लिए थे और उन्होंने बचपन से ही 'काव्य रचना' प्रारंभ कर दी थी। आरंभ में उन्होंने 'कलाधर' उपनाम से कविताएँ लिखी थीं।

प्रसाद जी ने अपने जीवन में जितना वैभव देखा था, विडम्बनाएँ और अभाव भी उससे कम नहीं देखे थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् घर और व्यवसाय का उत्तरदायित्व उनके बड़े भाई के कंधों पर आ पड़ा । शंभुरतन जी का एक तो व्यवसाय में मन नहीं लगता था, दूसरे अनेक लोगों द्‌वारा धोखा दिये जाने से व्यवसाय में घाटा होने लगा । पिता की मृत्यु के पश्चात् चाचा से संयुक्त परिवार की संपत्ति के बँटवारे को लेकर उनके भाई को मुकदमा भी लड़ना पड़ा । यद्‌यपि इस मुकदमे में शंभुरतन जी की विजय हुई,

लेकिन परिवार की प्रतिष्ठा को इससे बड़ा धक्का पहुँचा । बढ़ते हुए घर खर्च एवं व्यापार में घाटे के कारण प्रसाद जी के परिवार पर ऋण का बोझ बहुत अधिक बढ़ गया । इसी बीच उनकी माता का देहान्त हो गया । ऐसी विषम स्थितियों में भी प्रसाद जी कुछ न कुछ लिखते रहते थे और व्यापार में भाई का हाथ भी बँटाते रहते थे, लेकिन नियति का कोई अभिशाप ही रहा होगा कि सत्रह वर्ष के उस युवा कवि के सिर पर से एक दिन पितातुल्य बड़े भाई का साया भी उठ गया । अब घर में मातातुल्य भाभी के अतिरिक्त उनका कोई सम्बल नहीं रह गया था । उनकी स्थिति मानो कामायनी के मनु जैसी ही थी, जो अपने विगत वैभव पर आँसू बहा रहे थे और आगे का जीवन संकटों-रूपी सागर से घिरा हुआ था । इस सबके बावजूद प्रसाद जी टूटे नहीं । उन्होंने अपना व्यापार संभाला और कुछ वर्षो में परिवार को भी कर्ज के बोझ से मुक्त कर दिया । उन्होंने अपना विवाह भी अपने ही प्रयत्नों से किया । पहली पत्नी के देहान्त के पश्चात् दूसरा और फिर तीसरा विवाह करके उन्हें अपने खण्डित परिणय के तीन रूप देखने पड़े । एक प्रकार से प्रसाद जी का संपूर्ण जीवन संघर्ष और विडम्बनाओं की करुण कथा ही था । 'हंस' के 'आत्मकथा' विशेषांक में अपने जीवन की विडम्बनाओं का सांकेतिक रूप में उल्लेख करते हुए 'आत्मकथा' नामक कविता में उन्होंने लिखा था-

छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा?
अभी समय भी नहीं थकी सोई है मेरी मौन व्यथा?

अपने सृजन-कर्म से दुनिया को अपना श्रेष्ठतम देने वाला यह कवि भीतर ही भीतर कितनी टूटन लिए हुए था और अपनी मौन व्यथाओं को बताने में कितना संकोची था, इन्हीं टूटनों और मौन व्यथाओं को लिए हुए सन् 1937 ई. में प्रसाद जी का असामयिक निधन हो गया । मैथिलीशरण गुप्त ने प्रसाद जी के निधन पर लिखा था-

'जयशंकर' कहते-कहते ही अब भी काशी आवेंगे ।
किंतु 'प्रसाद' न विश्वनाथ का मूर्तिमान हम पावेंगे
तात भस्म भी तेरे तनु की हिन्दी की विभूमि होगी ।
पर हम जो हँसते आते थे, रोते-रोते जावेंगे

इस प्रकार प्रसाद जी का जीवन संघर्षों की कहानी ही था, लेकिन जीवन्तता और रचनात्मकता उनके व्यक्तित्व के ऐसे गुण थे जिनके सहारे जीवन में आए बड़े से बड़े संकटों का उन्होंने धैर्य के साथ सामना किया ।

3.2.2 प्रसाद का व्यक्तित्व

प्रसाद जी अन्तर्मुखी एवं सौम्य प्रकृति के व्यक्ति थे । उन्हें काव्य-संस्कार कुछ अपने परिवार के अभिजात एवं सुसंस्कृत वातावरण से तथा कुछ शिक्षकों-मित्रों के साहचर्य से

प्राप्त हुए थे । अपना व्यवसाय करते हुए अवकाश मिलने पर वे सदा कुछ न कुछ लिखते-पढ़ते रहते थे । उनकी दूकान पर साहित्यिक मित्रों की बैठकें होती रहती थीं । उनका रचनाकर-व्यक्तित्व बहुआयामी था । कविता के साथ ही नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय दिया था । उनके रचनाकार मानस पर सबसे गहरा प्रभाव भारतीय संस्कृति और परम्परा के जीवनदायी मूल्यों का था । वेदों, उपनिषदों और संस्कृत के साहित्य का उन्होंने गहराई से अध्ययन किया था । उनका परिवार शैव मतावलंबी था । अत: शैव-दर्शन के आनंदवाद के प्रति उनकी गहरी आस्था थी । बुद्ध की करुणा और अहिंसा के दर्शन से भी वे प्रभावित थे । उनके चिंतन का केन्द्रीय भाव जातीय-बोध था । अपने नाटकों में उन्होंने भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण पक्षों को प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीयता एवं मातृभूमि-प्रेम को सर्वोच्च महत्त्व दिया था । बनारसी रंग से सरोबार उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी मस्ती । विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य न खोते हुए वे चिरंतन आनंद और समरसता की खोज में लगे रहे । प्रसाद जी अन्तर्मुखी स्वभाव के होने के कारण प्रदर्शन, वाद-विवाद और साहित्यिक आयोजनों से दूर ही रहते थे । एक साधक की तरह सदा अध्ययन-चिंतन और सृजनरत रहना ही उनके रचनाकार व्यक्तित्व की विशेषता थी । प्रेम एवं सौन्दर्य-बोध उनके व्यक्तित्व में फूल में सुगन्ध की तरह व्याप्त थे । 'आँसू' नामक काव्य उनके इसी प्रेम एवं सौन्दर्य-बोध की रचनात्मक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है, लेकिन प्रसाद जी को प्रेम का एकान्त साधक मान लेना भी भूल होगी । उनके प्रेम की परिधि में मित्रों के साथ ही संपूर्ण प्रकृति, राष्ट्र एवं विश्वमानवता थी, जिसका परिचायक उनका साहित्य है । इस प्रकार प्रसाद जी का रचनाकार व्यक्तित्व प्रेम, सौन्दर्य, आनंद, नैतिकता, उदात्तता एवं उच्च आदर्शों से सराबोर था ।

3.2.3 सृजन-कर्म

प्रसाद जी आरंभ में लुक-छिपकर कविताएँ लिखते थे, क्योंकि उनके बड़े भाई इस प्रवृति को व्यापार में बाधक ही मानते थे । उनकी सर्वप्रथम 'भारतेन्दु' नामक पत्रिका (1906 ई.) में एक कविता प्रकाशित हुई थी, लेकिन उनके कवि-कर्म की वास्तविक शुरुआत 'इंदु' (1909 ई.) नामक पत्रिका के प्रकाशन से होती है । 'इंदु' प्रसाद जी की ही प्रेरणा से उनके भांजे अम्बिकादत्त गुप्त द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित की जाती थी । प्रसाद जी इसमें निरंतर लिखते रहते थे । उनकी ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली की अधिकतर आरंभिक कविताएँ तथा स्फुट लेख 'इंदु' में ही प्रकाशित हुए थे ।

प्रसाद जी की कविताओं का पहला प्रकाशित संग्रह 'चित्राधार' (1975 वि.सं.) था जिसमें उनकी ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली - दोनों ही तरह की रचनाएँ संग्रहीत थीं । आगे चलकर कुछ कविताएँ अलग करते हुए उन्होंने वि.सं. 1985 में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करवाया जिसमें आरंभिक बीस वर्षों की कविताएँ सम्मिलित कर ली गई थीं ।

प्रसाद जी की खड़ी बोली की कविताओं का पहला स्वतंत्र संग्रह 'कानन-सुसुम' (1918 ई.) था । भावमयी कल्पना के साथ विनयभाव प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ अनुभूमि एवं अभिव्यक्ति की नवीनता कानन-सुसुम की कविताओं की विशेषताएँ थीं, जिनसे आगे चलकर छायावाद के रूप में प्रतिष्ठित होने वाले काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि का अंदाज लग सकता है । प्रसाद जी ने करुणालय (गीतिनाट्य) के अतिरिक्त प्रेम पथिक और 'महाराण का महत्व जैसी आख्यानक कविताएँ भी अपने इसी आरंभिक दौर में रची थीं । परम्परागत भावबोध एवं काव्य शिल्प को तोड़ते हुए प्रकृति, प्रेम एवं सौन्दर्य-दृष्टि से ओतप्रोत स्वच्छंदतावादी काव्य चेतना को प्रमुखता से प्रस्तुत करने वाला प्रसाद जी का पहला छायावादी काव्य-संग्रह 'झरना' (1918 ई.) था, जिसमें छायावादी गतिशैली से ओतप्रोत रचनाएँ संग्रहीत थीं । आगे चलकर 'झरना' का दूसरा संस्करण 1927 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें 1913 ई. से 1927 ई. के बीच की कविताएँ सम्मिलित कर दी गई थीं । प्रेमानुभूमि प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति संवेदनशील दृष्टि के साथ ही भावोद्वेलन और मानव जीवन की जटिलताओं के प्रति एक सहज आक्रोश-भाव 'झरना' की कविताओं की विशेषताएँ थीं । हिन्दी की मुक्तक गीतिशैली 'झरना' में अपने पूरे सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त होती देखी जा सकती है । छायावादी काव्य चेतना की स्वच्छंदतावादी मुक्तक शैली का एक और काव्य 'आँसू' (1926 ई.) प्रसाद जी की इसी दौर की रचना है, जिसमें कवि ने अपने प्रेम की स्मृतियों का सूक्ष्म एवं बिंबग्राही चित्रण प्रस्तुत किया है ।

प्रसाद की गीतिपरक मुक्तक कविताओं का अंतिम संग्रह 'लहर' (1935 ई.) था । लहर की कविताएँ उनके विकसित एवं प्रौढ़ मानस की रचनाएँ हैं । इनमें वैयक्तिकता होते हुए भी एक तटस्थता का भाव है । कवि ने मानव जीवन के दुःख-सुख एवं राग-विराग के भावों की घनीभूत व्यंजना इसके गीतों में उँड़ेल दी है । रागात्मकता, लयात्मकता, संगीतात्मकता के साथ अनुभूतियों की संवेदनात्मक एवं घनीभूत व्यंजना 'लहर' के गीतों की अपनी खास विशेषताएँ हैं जिनमें छायावादी काव्य-दृष्टि अपने पूरे वैभव के साथ प्रस्तुत होती देखी जा सकती है ।

'मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्राण समा जा रे ।'

जैसे प्रेमाभिव्यक्तिपरक गीत तथा 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे', जैसे वैयक्तिक बोध के गीत 'लहर' के गीतों को एक खास अंदाज के गीत सिद्ध करते हैं । अशोक की चिंता, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि तथा प्रलय की छाया 'लहर में संगृहीत इतिहास विषयक कविताएँ हैं । इन कविताओं में मानव-मुक्ति, स्वाधीनता और राष्ट्रीय चेतना के भावों को कवि ने प्रमुखता से उभारने का प्रयत्न किया है । 'प्रलय की छाया' प्रसाद जी की एक विशिष्ट कविता है जिसमें नारी मनोविज्ञान और रूप-सौन्दर्य के अहं का प्रश्न कलात्मक रूप में उठाया गया है ।

'कामायनी' (1936 ई.) प्रसाद जी की अंतिम रचना है । यह छायावादी काव्य की ही नहीं, अपितु बीसवीं शताब्दी की संपूर्ण हिन्दी कविता की अद्‌वितीय रचना है । इसमें कवि ने एक प्राचीन मिथक के माध्यम से मानव जीवन एवं मनोविज्ञान की जटिलताओं को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है, जिनका सर्वांगीण विवेचन अगली इकाई में किया जाएगा ।

एक श्रेष्ठ कवि के रूप में ही नहीं, नाटककार एवं कथाकार के रूप में भी प्रसाद की हिन्दी साहित्य में विशेष ख्याति रही है । राजश्री, विशाख, अजातशत्रु जन्मेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कंदगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी उनके प्रसिद्ध नाटक हैं । 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' नामक कहानी-संग्रहों में उनकी संपूर्ण कहानियाँ संगृहीत हैं । कंकाल, तितली तथा इरावती प्रसाद जी के उपन्यास हैं । साहित्य चिंतन और अलोचना के क्षेत्र में भी प्रसाद जी चर्चित रहे हैं । 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' उच्छे निबंधों का संग्रह है जिसमें इन्होंने काव्य-कला और छायावाद-रहस्यवाद विषयक अपनी मान्यताओं को तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार प्रसाद जी का संपूर्ण साहित्य बहुआयामी है । उनके काव्य में एक विकास है, उदात्तता और विराटता है, और है विशिष्ट छायावादी भंगिमा जिसके कारण वे हिन्दी की काव्यधारा छायावाद के पुरस्कर्ता एवं प्रतिनिधि कवि के रूप में समादृत हैं ।

3.3 काव्यवाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

3.3.1 ओ चिंता की पहली रेखा

उद्धरण- **(1) ओ चिंता की पहली रेखा. अरी विश्व-वन की व्याली;**
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कंप सी मतवाली ।
हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ जलमाया की चल रेखा!

संदर्भ- प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ छायावाद के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद रचित कामायनी के 'चिंता' सर्ग से उद्धृत हैं । 'कामायनी' प्रसादजी की ही नहीं, सम्पूर्ण छायावाद की भी श्रेष्ठ रचना है । इस महाकाव्य में प्रसाद जी ने प्राचीन मिथक के माध्यम से मनुष्य के मनोविज्ञान और जीवन की जटिलताओं को एक रूपक या फैंटेसी के माध्यम से चित्रित किया है ।

प्रसंग- प्रकृति में महाप्रलय और देव सृष्टि के विनाश के बाद एकमात्र मनु बच जाते हैं । वे हिमालय की एक उँची चोटी पर शिला की ठंडी छाया में बैठे हुए प्रलय के कारणों पर चिंतन कर रहे हैं । मनु देवसृष्टि के अवशेष थे । उन्हें कभी भौतिक चिंताएँ नहीं हुई थीं,

लेकिन प्रलय से हुए महाविनाश के कारण पहली बार चिंता नामक मनोविकार उन्हें किस तरह विचलित कर देता है, इसकी सुन्दर व्यंजना इन पंक्तियों में हुई है ।

व्याख्या- चिंता नामक मानवीय मनोभाव को संबोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे चिंता! आज मैंने पहली बार तुम्हारा साक्षात्कार किया है । तुम्हारी अनुभूति से मुझे समझ में आ गया कि तू इस संसार रूपी वन में विचरण करने वाली सर्पिणी के समान है । जैसे वन में सर्पिणी का वास भय का कारण बन जाता है, वैसे ही हे चिंता! तूने इस संपूर्ण जगत् को अपनी उपस्थिति से भयभीत कर रखा है । कवि चिंता की तुलना ज्वालामुखी-विस्फोट के समय होने वाले प्रथम कम्पन से करते हुए अगली पंक्ति में कहता है, हे चिंता! तुम्हारा प्रभाव अत्यधिक भयावह है । जैसे ज्वालामुखी में विस्फोट के समय संपूर्ण चराचर डोलायमान हो जाता है, वैसे ही तू जिसे घेर लेती है, उसे विचलित कर देती है । मनु चिंता को संबोधित करते हुए आगे कहते हैं, हे चिंता! तू अभाव की बालिका है, क्योंकि मनुष्य में अभावों से ही चिंता उत्पन्न होती है । चिंता के बाह्य रूप में प्रकट होने वाले व्यापारों को स्पष्ट करते हुए मनु कहते हैं, हे चिंता! तू मनुष्य के ललाट पर उभरने वाले दुर्भाग्य का खल रूप है अर्थात् मस्तक पर उभरने वाली वक्र रेखाओं से तुम्हारा बोध हो जाता है । चिंता के उदय होते ही मनुष्य उससे उबरने के प्रयास शुरू कर देता हैं । मनु आगे कहते हैं - इस तरह तू मनुष्य को आशा और निराशा में डुलाने लगती है, लेकिन वह चिंता के वशीभूत होने के कारण अपने प्रयासों में सफल नहीं हो पाता है । अत: तेरा अस्तित्व रेगिस्तान में बालू के कणों में दिखाई पड़ने वाले जल की मृगमरीचिका जैसा है । तू जिसे घेर लेती है, उसकी स्थिति भी बालू के कणों में जल की खोज में भटकने वाले हिरण के समान हो जाती हैं ।

विशेष-' (1) चिंता' नामक मनोविकार का मानवीकरण करते हुए इसका मूर्त एवं बिंबग्राही चित्र प्रस्तुत हुआ है ।

(2) मनु की मनःस्थिति का अत्यधिक कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है । 'पहली रेखा' और 'प्रथम कम्प के माध्यम से कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि देव सृष्टि के अवशेष मनु को पहली बार मानवीय जीवन की विषमताओं का साक्षात्कार हुआ था ।

(3) 'चिंता' के कार्य-व्यापारों को दर्शाने के लिए 'अभाव की चपल बालिके', 'ज्वालामुखी का प्रथम कम्प तथा जलमाया की चल रेखा' जैसे उपमानों की योजना सार्थक बन पड़ी है ।

(4) हे अभाव की चपल बालिके' तथा डरी-भरी-सी दौड़-धूप में लाक्षणिकता है ।

(5) उपमा और रूपक अलंकारों की सार्थक प्रस्तुति हुई है । 'हरी-भरी-सी दौड़-धूप में उपमा तथा वन-व्याली' में रूपक अलंकार है ।

(6) 'चिंता' नामक अमूर्त भाव का मूर्त एवं मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर चित्रांकन अत्यधिक प्रभावशाली बन पड़ा है ।

3.3.2 अरी उपेक्षा-भरी अमरते

उद्धरण- (2) **अरी उपेक्षा-मरी अमरते! री अतृप्ति! निर्बाध विलास!**
द्विधा-रहित अपलक नयनों की भूख भरी दर्शन की प्यास!
बिछुड़े तेरे सब आलिंगन, पुलक स्पर्श का पता नहीं;
मधुमय चुंबन कातरतायें, आज न मुख को सता रहीं ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की अमर कृति 'कामायनी के चिन्ता सर्ग से लिया गया है । हिमालय की ऊँची चोटी पर एक शिलाखण्ड की छाया में बैठे मनु देवसृष्टि के विनाश के बारे में चिंतन कर रहे हैं । उन्हें लगता है कि देवसृष्टि का विनाश उसकी अपनी गलतियों से ही हुआ था । भोग-विलास, अहंवृत्ति और प्रकृति के साथ असामंजस्य ही उनके विनाश के प्रमुख कारण थे ।

व्याख्या- देवों की अमरता का तिरस्कार रूप में स्मरण करते हुए मनु सोचते हैं कि देवता अमरता के दंभ में सब कुछ भूल चुके थे । परिणामत: वे निर्बाध अतृप्ति और विलास में डूबे रहे । उनके विनाश का यही मुख्य कारण था । मनु ऐसी अमरता को तिरस्कार योग्य बताते हैं । अमरता के दंभ से उत्पन्न हुई अतृप्ति का विश्लेषण करते हुए मनु आगे कहते हैं, देवता इसके कारण विघ्न-बाधारहित होकर मुक्त कामवासना में डूबते गए और वासनायुक्त देव-देवांगनाएँ स्वच्छंद हो गए थे । उनकी भूख से भरी एक-दूसरे को देखने एवं पाने की लालसा मानो कभी मिटने का नाम ही नहीं ले रही थी । देवजाति के भोगविलास के इस विगत रूप का स्मरण करते हुए मनु आगे सोचते हैं, हे भोगविलास का रूप! तेरे कारण देवता और देवांगनाएँ परस्पर आलिंगनबद्ध रहते थे, वह अब कहीं है? एक-दूसरे के आकर्षण से होने वाली पुलक और स्पर्श की इच्छाएँ अब कहाँ है? वे सारे दृश्य आज नष्ट हो चुके हैं । भोग-विलास की ऐसी प्रवृत्तियों पर व्यंग्य करते हुए मनु आगे कहते हैं, परस्पर एक- दूसरे का चुंबन लेने की मुद्राएँ, कातर रूप में की जाने वाली अनुनय-विनय की क्रियाएँ महाप्रलय के कारण अब कहीं नहीं दिखाई पड़ती अर्थात् देवताओं के भोगविलास का

सारा वैभव नष्ट हो गया । इस प्रकार मनु ने देवताओं के विलासमय रूप का यहाँ अनुभूतिपरक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

विशेष - (1) मनु ने देवताओं की अमरता की भावना और इसके दंभ से होने वाली सामाजिक विकृतियों और पतनशील प्रवृत्तियों का अनुभूतिपरक विश्लेषण किया है ।

(1) स्पर्श और चाक्षुक बिंब सार्थक रूप में प्रस्तुत हुए हैं ।

(2) भाषा में व्यंजकता और लाक्षणिकता दर्शनीय है ।

(3) मनु की चिंता और पश्चाताप का मनोवैज्ञानिक धरातल पर अंकन हुआ है ।

3.3.3 उषा की पहली लेखा कान्त

उद्धरण-(3) **उषा की पहली लेखा कान्त**; **माधुरी से भीगी भर मोद**;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक धुति की गोद ।
कुसुम कानन-अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ सकार,
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार ।

प्रसंग- प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित अमर कृति कामायनी के श्रद्धा सर्ग से ली गयी हैं । महाप्रलय में बच गए मनु को लगता है इस महाविनाश में अन्य कोई प्राणी शायद ही बचा होगा! धीरे-धीरे जल-प्लावन का असर कम होने लगता है । चिंताग्रस्त मनु के मन में आशा का संचार होता है । नवीन आशा से प्रेरित हो वे तपस्या में लग जाते हैं तथा यज्ञ में बची हुई थालियाँ इस आशा से अन्यत्र रख आते हैं कि किसी बचे हुए प्राणी के काम आएँगी । इस प्रकार मनु हिमालय की एक गुफा में रहते हुए निराश तथा एकाकी जीवन व्यतीत कर रहे थे । एक दिन गांधार देश की युवती श्रद्धा घूमती हुई अचानक मनु की गुफा के पास पहुँच जाती है और उनका परिचय प्राप्त करने लगती है । निर्जन स्थान पर अप्रत्याशित रूप से उपस्थित हुई उस अनुपम सुन्दरी को देखकर मनु एकदम हतप्रभ हो जाते हैं । उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर उनके मन में जो कल्पनाएँ जगाती हैं, उन्हीं का बिंबग्राही चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है ।

व्याख्या- श्रद्धा के अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित मनु अपनी कल्पना में उसकी तुलना विविध उपमानों एवं प्राकृतिक उपादानों से करने लगते हैं । उन्हें लगता है श्रद्धा का यह सौन्दर्य मानो प्रातःकालीन तारों की द्युति से युक्त गोद में मधुरता, आनंद और मस्ती का भाव लिए हुए लज्जायुक्त सूर्य की पहले-पहल प्रकट होने वाली कमनीय किरणों के सदृश है जो एक युवती के रूप में उनके

सामने उपस्थित हो गया है । सौन्दर्य के इस वैभव से परिपूर्ण श्रद्धा के शरीर से एक विशेष प्रकार की गंध चारों ओर फैल गई है । इस तरह उसका गंधवाही सुन्दर रूप मानो बसंत ऋतु में वन-प्रदेश से मंद-मंद वायु द्वारा लायी गई सुगंध का साकार रूप है । उसके रूप-सौन्दर्य की एक सुन्दर कल्पना करते हुए वे सोचते हैं कि श्रद्धा के संपूर्ण शरीर का निर्माण मानों फूलों के मकरन्द-कणों और उनके रस से किया गया है ।

विशेष - (1) श्रद्धा के सौन्दर्य का प्रकृति के अमूर्त उपादानों द्वारा मूर्त रूप में बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण किया गया है ।

(2) उत्प्रेक्षा अलंकार की योजना अत्यन्त सार्थक बन पड़ी है ।

(3) भाषा में माधुर्य गुण एवं कोमलकांत पदावली का लालित्य दर्शनीय हैं।

(4) काव्यभाषा में लय और छंद अर्थ-ध्वनि को अधिक प्रभावशाली बना रहे हैं ।

3.3.4 प्रकृति के यौवन का श्रृंगार

उद्धरण- (4) **प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बासी फूल;**
मिलेंगे वे जाकर अतिशीघ्र. आह उत्सुक है उनकी धूल!
पुरातनता का यह निर्मोह; सहन करती न प्रकृति पल एक,
नित्य नूतनता का आनंद. किये है परिवर्तन में टेक ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध काव्य-कृति 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग से अवतरित है । श्रद्धा अपना परिचय देने के पश्चात् निराश मनु को ढाँढस बँधाती है और उन्हें प्रकृति के चक्र के माध्यम से जीवन के उत्थान-पतन का रहस्य समझाने का प्रयत्न करती है । इस प्रकार उपर्युक्त पंक्तियों में श्रद्धा का कर्मठ एवं मानवीय रूप प्रकट हुआ है जो हताश एवं निराश मनु में आशा का संचार करते हुए उन्हें प्रवृत्ति मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है ।

व्याख्या- श्रद्धा मनु में जीवन के प्रति आस्था-भाव जगाते हुए कहती है कि प्रकृति भी अपने यौवन का श्रृंगार मुरझाये हुए बासी फूलों से नहीं करती है । वह फूलों के मुरझा जाने पर उन्हें नष्ट होने के लिए धूल में फेंक देती है अर्थात् धूल जो जीवन के नाश का प्रतीक है, वे फूल अंततः उसी में मिलकर नष्ट हो जाते हैं । प्रकृति अपने यौवन का श्रृंगार सदा नूतन फूलों से ही करती है । इस तरह श्रद्धा मनु को यह दर्शन समझाती है कि जो मनुष्य अतीत की सड़ी-गली परम्पराओं से चिपके रहते हैं, वे परिवर्तनशील जीवन-चक्र का सामना नहीं कर पाते हैं और एक दिन नष्ट हो जाते हैं । इसलिए हे मनु! तुम्हें निराशा,

दीनता और पुरातनता का मोह त्याग कर नवजीवन का स्वागत करना चाहिए । प्रकृति का भी यही नियम है । श्रद्धा फिर मनु को समझाते हुए आगे कहती है, प्रकृति एक क्षण के लिए भी पुरातनता की इस कैंचुल को सहन नहीं कर पाती अर्थात् परिवर्तन को स्वीकार करते हुए नित्य नूतनता का आनंद लेती रहती है । इसलिए हे मनु! जीवन में भी वही मनुष्य प्रसन्न और अग्रशील रह सकता है जो रूढ़ियों का त्याग करके नवीनता का स्वागत करता रहता है ।

विशेष- **(1)** प्रकृति के परिवर्तनशील रूप का मानवीकरण किया गया है ।

(2) प्रकृति के परिवर्तनशील रूप की मनुष्य जीवन से तुलना अत्यधिक सार्थक बन पड़ी है ।

(3) काव्यभाषा प्रसाद गुण से ओतप्रोत है । दार्शनिक ढंग से कही गई बातें काव्य-पंक्तियों के अर्थ को अत्यधिक प्राणवान् बना देती हैं ।

(4) विचारात्मक और उपदेशात्मक बातें भी प्रकृति के उदाहरणों से पुष्ट करने के कारण सरस हो उठी हैं ।

3.3.5 लाली बन सरल कपोलों में

उद्धरण- (5) **लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन सी लगती**
कुंचित अलकों सी घुँघराली मन की मरोर बनकर जगती ।
चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली ।

प्रसंग- प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की अमर कृति 'कामायनी' के लज्जा सर्ग से ली गयी हैं । श्रद्धा से मिलन होने के पश्चात् मनु और श्रद्धा साथ-साथ रहते हुए अपने जीवन-कर्म में लग जाते हैं, लेकिन मनु का मन स्थिर नहीं हो पाता है । उन्हें कभी अपने अतीत की स्मृतियाँ सताती हैं तो कभी श्रद्धा का साहचर्य । काम द्वारा स्पप्न में कही गई बातें और उनका अर्थ उन्हें बार-बार विचलित करता रहता है । अंततः वे अपनी उद्विग्नता श्रद्धा को बताते हैं और उससे प्रणय की याचना करते हैं । मनु के इस प्रणय-संकेत से श्रद्धा लज्जा भाव से भर उठती है । एक दिन संध्या समय श्रद्धा अपने शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के बारे में विचार कर रही थी तभी छाया रूप में एक नारी जो वास्तव में लज्जा का ही रूप होती है, प्रकट होती है और श्रद्धा को अपने प्रभाव-क्षेत्र और महत्त्व के बारे में बताती हैं ।

व्याख्या- लज्जा श्रद्धा को समझाते हुए कहती है, मैं नवयुवतियों के सरस कपोलों पर लाली के रूप में प्रकट होती हूँ अर्थात् जैसे ही युवतियों पर मेरा प्रभाव होता है, उनके कपोलों पर मैं लालिमा के रूप में

दिखाई पड़ती हूँ । मैं उन युवतियों की आँखों में अंजन के रूप में भी प्रकट होती हूँ अर्थात् मेरे प्रभाव से युवतियों की आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक आ जाती है । मेरा प्रभाव उनके घुँघराले बालों में भी लक्षित किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे घुँघराले बाल ही दर्शकों के मन में वासना को जगाते हैं । लज्जा आगे अपना प्रभाव-क्षेत्र स्पष्ट करते हुए श्रद्धा को बताती है कि मैं नारी का भूषण ही नहीं, उसका सुरक्षा-कवच भी हूँ अर्थात् चंचलता और मस्ती के आवेग में भटक जाने वाली किशोरवय युवतियों के सौन्दर्य की मैं रक्षा भी करती हूँ । मैं हल्की-सी मसलन की तरह हूँ जो उनके कानों पर लाली के रूप में प्रकट होती है । कानों की मसलन और उससे उत्पन्न होने वाली लालिमा एक प्रकार से युवतियों के भटकाव को नियंत्रित करने का काम करती है । इस प्रकार लज्जा श्रद्धा को अपना परिचय देते हुए अपने कल्याणकारी पक्ष को भी प्रस्तुत करती है ।

विशेष- **(1)** लज्जा जैसे अमूर्त भाव का मूर्त रूप में प्रभावशाली चित्रांकन किया गया है ।

(2) लज्जा भाव के प्रकट होने पर स्त्रियों की दशा में जो-जो बदलाव आते हैं, उनका बड़ा ही अनुभूतिपरक अंकन हुआ है । आँखे कजरारी हो जाना, गालों पर लालिमा छा जाना, बालों में घुँघरालापन प्रकट होना तथा कानों पर लालिमा दिखाई देना- थे लज्जा के बाहय प्रकट रूप हैं।

(3) छंद में मालोपमा की योजना दर्शनीय है ।

(4) 'मन की मरोर' में अमूर्त बिंब तथा 'कानों की लाली की हल्की मसलन' में चाक्षुष बिंब अत्यधिक सुन्दर बन पड़े हैं ।

(5) छंद में लयात्मकता और संगीतात्मकता है जो छायावादी काव्यभाषा के सौन्दर्य का परिचय करवाते हैं ।

3.3.8 नारी! तुम केवल श्रद्धा हो

उद्धरण- (6)

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण छायावाद के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की अमर एवं बहुचर्चित काव्य-कृति 'कामायनी के लज्जा सर्ग से लिया गया है । लज्जा श्रद्धा को अपना परिचय ही नहीं देती, अपने स्वरूप तथा स्त्रियों के हित में किये जाने वाले कार्यो से भी परिचित करवाती

है । लज्जा की बातें सुनकर श्रद्धा उससे पूछती है कि मुझे क्या करना चाहिए? अपना सर्वस्व मनु को समर्पित कर देना चाहिए अथवा नहीं? इस बात पर बीच में ही टोकते हुए लज्जा श्रद्धा से कहती है कि ठहरो! तुम तो पहले ही अपने सुनहले सपने मनु को दान कर चुकी हो, अत: अब तो विश्वास के साथ मनु का साहचर्य निभाते हुए उनकी पथ-प्रदर्शिका बनने में ही तुम्हारा महत्त्व है।

व्याख्या- लज्जा श्रद्धा को समझाते हुए कहती है, हे नारी! तुम दया, ममता, प्रेम और विश्वास का रूप हो । तुम्हारा रूप श्रद्धामय है । जैसे नदी बर्फ से ढके श्वेत एवं उज्ज्वल पर्वतों के सहारे-सहारे कठिन रास्तों पर बहते हुए अमृत के समान जल लाकर अपनी तलहटी में बसे सभी लोगों का समान भाव से पोषण करती है और प्रसन्नता से बहती रहती है, वैसे ही तुम भी मनु पर विश्वास करो और उनके साथ मिलकर विषमताओं को दूर करते हुए जीवन के कल्याण का रास्ता अपनाओ । नारी का श्रद्धामय रूप दूसरों के हितार्थ त्याग और सेवा में ही प्रकट होता है । यह जीवन जो विषमताओं से भरा हुआ है, उसमें सामंजस्य लाकर नदी की तरह सींचना ही तुम्हारा श्रेष्ठ कर्त्तव्य है ।

विशेष- (1) नदी और नारी के रूप की परस्पर तुलना सार्थक बन पड़ी है । पर्वतों से निकलकर जैसे नदी अपनी तलहटी में बसे लोगों के जीवन को सुखमय बनाती है, वैसे ही नारी भी अपने मातृत्व-रूप, दया, ममता, प्रेम, वात्सल्य और करुणा जैसे भावों से पुरुष की संगिनी बनकर अपना कल्याणी रूप प्रकट करती है ।

(2) 'विश्वास रजत नग तल में' में रूपक और 'पीयूष-स्रोत-सी में उपमा अलंकार की योजना सुन्दर बन पड़ी है ।

(3) नारी के श्रद्धामय रूप की प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति और पौराणिक साहित्य के अनुरूप है।

(4) 'पीयूष स्रोत' तथा 'विश्वास रजत नग पग तल में प्रस्तुत चाक्षुष बिंब अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं ।

3.3.7 हम अन्य न और कुटुम्बी

उद्धरण- (7)

हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है ।
शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित अमर कृति 'कामायनी' के आनन्द सर्ग से अवतरित है । 'कामायनी की समाप्ति

कवि ने समरसता दर्शन में की है । सारस्वत प्रदेश की प्रजा के साथ संघर्ष में पराजित होने के बाद मनु तपस्या करने हेतु कैलाश पर चले जाते हैं । श्रद्धा भी उन्हें खोजते हुए वहाँ पहुँच जाती है । मनु की तपस्या तथा कैलाश की महिमा से प्रभावित होकर इड़ा के साथ मानव और सारस्वत नगर की प्रजा का एक दल भी कैलाश की यात्रा करने वहाँ आ जाता है । वहाँ पर श्रद्धा इड़ा को कैलाश की महिमा और समरसता-भाव का महत्त्व समझाती है । लोगों का कोलाहल सुनकर समाधिस्थ मनु का ध्यान भी टूट जाता है । इतने लोगों को कैलाश के दर्शन हेतु आए जानकर मनु उन्हें विराट् शक्ति की अभेदता का महात्म्य समझाने लगते हैं ।

व्याख्या- कैलाश पर्वत की ओर सबका ध्यान आकृष्ट करते हुए मनु बताते हैं- देखो! यहाँ कोई एक दूसरे से पराया या अलग नहीं है । न ही किसी का कोई पृथक परिवार या कुदुम्ब है । आज हम सभी अभिन्न होकर एक हो गए हैं । तपस्वी मनु आगे कहते हैं, तुम सभी मेरे ही अंग हो जिनमें किसी प्रकार का पृथकत्व नहीं है । जैसे हाथ-पैर आदि अंगों का नाम पूर्ण शरीर है, उसी प्रकार तुम मेरे हाथ-पैरों के समान मेरे ही अंग हो । तुम सभी से ही मैं पूर्ण हूँ । मनु स्पष्ट करते हैं, यहाँ इस तपोवन में कोई भी प्राणी शापित नहीं है और न ही कोई दैहिक, दैविक या भौतिक दुःखों से दुखी प्राणी है । यहाँ की यह भूमि जीवन-रूपी है जो सबके लिए एक-सी एवं समतल है । यहाँ ऊँच-नीच और विषमता का कोई रूप नहीं है । समस्त प्राणी जो जिस स्थान पर हैं, समान भाव से आनंद को प्राप्त कर रहे हैं ।

विशेष- (1) कामायनी के प्रांरभ में प्रस्तुत एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन' की एकाकारता के रूप को यहाँ समरसता सिद्धांत द्वारा स्पष्ट किया गया है ।

(1) ब्रह्म एवं जीव की एकरूपता एवं तदाकारता का प्रतिपादन है ।

(2) जीवन-वसुधा में रूपक अलंकार दर्शनीय है ।

(3) यहाँ प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुरूप जड़-चेतन की आनंदस्वरूप परिणति को प्रतिष्ठित किया गया है ।

(4) भाषा में दार्शनिकता एवं बिंबात्मकता है ।

3.3.8 समरस थे जड़ या चेतन

उद्धरण- (8)

समरस थे जड़ या चेतन.
सुन्दर साकार बना था;
चेतना एक विलसती

आनंद अखंड घना था ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण छायावाद के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की अमर काव्य-कृति 'कामायनी के आनन्द सर्ग से लिया गया है । मनु द्वारा कैलाश दर्शन हेतु आये सारस्वत नगरजनों को कैलाश की जीवनदायी एवं पावन भूमि का महत्त्व समझाते एवं संसार के अनन्य रूप की बातें बताते देखकर श्रद्धा के चेहरे पर मुस्कान की आभा फैल जाती है । मानो मानसरोवर के तट पर उपस्थित दिव्य एवं उल्लास पूर्ण दृश्य का वह साक्षात् रूप हो । श्रद्धा इस रूप में संसार की साकार कामनापूर्ति लग रही थी । प्रकृति के उल्लास एवं चंद्रमा के रजत प्रकाश से वहाँ का वातावरण अत्यधिक मनोहारी एवं आनंदमय हो गया था । श्रद्धा के द्वारा फैलाई गई इस अलौकिक प्रेमज्योति को देखकर पर्वत पर उपस्थित संपूर्ण जड़-चेतन एवं प्राणी एक विशेष आनंद की अवस्था में जिस समरस भाव की अनुभूति करते हैं, इसी की सुन्दर प्रस्तुति उपर्युका पंक्तियों में हुई है।

व्याख्या- श्रद्धा के फैलाए प्रेम एवं अलौकिक ज्योति के रूप का दर्शन कर उस समय प्रकृति के सभी पदार्थ - चाहे वे जड़ थे या चेतन, एक समान आनंद में लीन थे । लगता था मानो सौन्दर्य ने साकार रूप धारण कर लिया है । सभी एक ही विराट चेतना शक्ति को समूची प्रकृति में क्रीड़ारत देख रहे थे । चारों ओर अखंड आनंद का साम्राज्य छाया हुआ था ।

विशेष- (1) कामायनी का उद्देश्य समरसता भाव की स्थापना था, जिसे उपर्युक्त पंक्तियों में साकार रूप में चित्रित किया गया है ।

(2) प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जड़-चेतन की एकरूपता के माध्यम से आनंदभाव की प्रतिष्ठा की गई है ।

(3) चेतन शक्ति के विराट् रूप की अभेदता को प्रस्तुत किया गया है । यही समरसता है जिसमें सभी समान रूप से आनंद में लीन हो सकते हैं । भौतिक जीवन में व्याप्त विषमताओं का तिरस्कार करते हुए मनुष्य एवं प्राणिमात्र की एकरूपता एवं समता के चिंतन को उभारा गया है ।

(4) काव्यभाषा में व्यंजकता एवं दार्शनिकता है ।

3.4 सारांश एवं मूल्यांकन

द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा आचार-विचारप्रधान अधिकांशत: वर्णनात्मक ही अधिक थी । उसमें भावों की सूक्ष्म अभिव्यंजना और मनुष्य के भावजगत् की अन्तर्ग्रन्थियों को खोलने वाले संस्कार कम नहीं थे । ये संस्कार अनुभूति की भंगिमा और अभिव्यक्ति में लाक्षणिकता आदि के सहारे आगे चलकर छायावादी काव्य में ही स्पष्ट हो सके । प्रसाद

जी ने यद्यपि आरंभ में ब्रजभाषा और खड़ी बोली में अपनी काव्य-रचनाएँ की थीं, लेकिन धीरे-धीरे उनमें स्वच्छंदतावादी काव्य की विशेषताएँ अपना स्थान बनाने लगीं । 'झरना' और 'आँसू' तक आते-आते उनके काव्य में छायावादी स्वच्छंद दृष्टि अपने सुन्दर रूप में प्रकट हो जाती है । एक प्रकार से सन् 1920 से 30 के बीच प्रसाद जी ने जिन कविताओं का सृजन किया, उनकी कलात्मकता और अनुभूति की विविधता से ही यह आभास होने लग जाता है कि आगे चलकर कवि हमें कोई विशेष प्रकार की काव्य रचना देगा । यह संयोग ही था कि 'आँसू' (1926 ई.) नामक काव्य में जिन भावानुभूतियों को प्रसाद जी ने अत्यधिक सघन रूप में अभिव्यक्त किया था तथा 'कामना' और 'एक घूँट' नाटकों में जिस ढंग से भाव-प्रधान पात्रों की सर्जना की थी, इन सभी रचनाओं को 'कामायनी' जैसी महाकाव्यात्मक रचना की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है ।

'कामायनी' प्रसाद जी की स्वछंदतावादी काव्य दृष्टि और अनुभूतियों की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है । इसमें प्रसाद जी ने प्राचीन मिथक के माध्यम से अतीत और अपने युगीन जीवन संदर्भों और मानवीय चरित्रों की रोमांटिक भावभूमि पर सर्जना की है तथा इसकी कथा को भी एक सुन्दर रचना-विधान में अनुस्यूत किया हैं ।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्नांकित अवतरणों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए और आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी लिखिए-
   1. ओ चिन्ता की..... चल रेखा ।'
   2. 'उषा की पहली..... मधु का आकार ।'
   3. 'प्रकृति का..... परिवर्तन में टेक ।'
   4. 'नारी तुम केवल..... समतल में ।'
   5. 'समरस थे जड..... घना था ।'
2. **निम्न पर टिप्पणी लिखिए-**

   (ख) जयशंकर प्रसाद के जीवन-संघर्ष का संक्षेप में परिचय दीजिए ।

   (ग) प्रसाद जी के रचनाकार-व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ बताइये ।

3.6 संदर्भ ग्रंथ

1. जयशंकर प्रसाद - डॉ. नंददुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार, इलाहाबाद।
2. डॉ. प्रेमशंकर - प्रसाद का काव्य, भारती भण्डार, इलाहाबाद ।
3. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय - प्रसाद का साहित्य, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ।
4. सं. रत्नशंकर प्रसाद - प्रसाद ग्रंथावली (दो खण्ड). लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. डॉ. हरदेव बाहरी - प्रसाद साहित्य कोश, भारती भण्डार, इलाहाबाद ।
6. डॉ. भोलानाथ तिवारी - कवि प्रसाद, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली ।

इकाई-4 जयशंकर प्रसाद के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कवि और काव्य-यात्रा

4.3 काव्य अनुभूति पक्ष

- 4.3.1 प्रकृति-सौंदर्य
- 4.3.2 नारी-सौंदर्य
- 4.3.3 प्रणयानुभूति
- 4.3.4 वेदना और करुणा
- 4.3.5 आस्था और जीवन-सत्य
- 4.3.6 अतीत के प्रति आकर्षण
- 4.3.7 कल्पना की अतिशयता
- 4.3.8 सांस्कृतिक चेतना
- 4.3.9 शैव दर्शन की पीठिका पर आनन्दवाद

4.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

- 4.4.1 काव्य-भाषा
- 4.4.2 अलंकार प्रयोग
- 4.4.3 बिम्ब प्रयोग
- 4.4.4 काव्य-रूप और छन्द

4.5 सारांश

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययनोपरान्त आप:

- छायावाद के आधार स्तम्भ जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद की स्थिति से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे ।
- प्रसाद की काव्य-यात्रा से पूर्णत: परिचित होकर उनके काव्य के अनुभूति पक्ष का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे ।
- प्रसाद के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से परिचित हो सकेंगे ।
- छायावादी कवियों में प्रसाद की स्थिति और उनके प्रदेय से अवगत हो सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

प्रेम, सौंदर्य, करुणा, वेदना और मानवता के रंगों के मेल से जो मानवाकृति उभरी, उसे आधुनिक साहित्य में प्रसाद के नाम से जाना जाता है । यह वह व्यक्तित्व था, जिसकी आत्मा में प्रेम और करुणा का जल था, आँखों में सौंदर्य को देखने-परखने और पाने की ललक थी तथा जिसके मनोराज्य में मानवता, करुणा और आनन्द की भावोच्छल प्रतिमा इधर से उधर चक्कर काटती रहती थी, प्रसाद छायावाद के उद्भावक, युग के नियामक और असाधारण व्यक्तित्व के धनी बनकर काव्य-जगत् में अवतरित हुए । युगीन परिस्थितियों से काव्य, के निर्माणकारी तत्वों का संकलन करके, पारिवारिक संस्कारशीलता से शैव दर्शन का मंत्र पाकर, इतिहास, दर्शन और संस्कृति से गृहीत जीवन के निर्मायक तत्वों को भावना के रंग में रंगकर प्रसाद ने जिस मानवता की विजय-गाथा हिन्दी-पाठकों को सुनाई है, वह उनके काव्य, नाटक, कहानी और उपन्यास-साहित्य में आद्यन्त विद्यमान है । उनका काव्य न केवल सौंदर्य-जलधि है, अपितु जीवनोदधि भी है । सर्जक प्रसाद का आविर्भाव उस समय हुआ, जब भारतेन्दु युग अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था और द्विवेदी युग अपनी नैतिकता और सुधार-परिष्कारवादी दृष्टि को दीप्त-चैतन्य किरणों की अरुणिमा में हिन्दी जगत को जीवन-मूल्यों के ग्रहण की प्रेरणा दे रहा था । प्रसाद जन्मजात अनुरागी थे, उनकी ललाट-लिखित तेजस्विता और मादक आँखों की सुरा का रंग ही इस तथ्य का संकेतक था कि कुछ नया उनके मानस में उमड़-घुमड़ रहा है । जब वे साहित्य-सृजन की ओर उन्मुख हुए तो उनकी प्रतिभा से चकित होकर कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास सभी अहमहमिकापूर्वक उनकी कलम का श्रृंगार बनने को उत्सुक हो उठे और वे उन पर उपेक्षा की गर्द नहीं डाल सके ।

प्रसाद की प्रतिभा का उत्तमांश 'कामायनी' के रूप में हमारे सामने है । यह माना कि वह छायावाद का उपनिषद है, यह भी माना कि वह आधुनिक युग की श्रेष्ठ कृति है, यह भी सत्य है कि उसमें सृष्टि के विकास की क्रमिक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, पर यह सबसे बड़ा सत्य है कि कामायनी एक जीवन-काव्य है । उसमें प्रतिपादित चिन्तन हमें राह दिखाता है और आज अपनाये जा रहे जीवन-क्रम पर पुनर्विचार के लिए आमंत्रण देता है । जब ऐसा है तो फिर 'कामायनी' को मात्र छायावाद की श्रेष्ठ रचना कहकर चुप्पी साध लेना क्या हमारे सोच का संकीर्ण रूप नहीं है? कामायनी में ऐसे जीवन-सूत्र संकेतित हैं जो उसे एक कालजयी व प्रासंगिक रचना प्रमाणित करते हैं ।

4.2 कवि और काव्य-यात्रा

अन्तर में सौंदर्य, मस्तिष्क में प्रश्नों का अम्बार और वाणी में सूक्ष्म अभिव्यंजना की क्षमता लिए हुए प्रसाद अपने प्रभावी व्यक्तित्व के साथ हिन्दी कविता के दिशा-निर्देशक भी बने और बदलते परिप्रेक्ष्य के संवाहक भी । उन्होंने शुभ्रवसना एवं संन्यासिनी बनी

कविता को नये सिरे से सजाया-सँवारा । उसके मुख को राग से रंजित किया, उसके अधरों में मदिर कंपन भरा, कपोलों को स्निग्ध किया और केशराशि को सचिक्कण किया । उनके बोल मानवता के प्रचाकर बने और उनकी शब्द-व्यवस्था परिष्कृत होकर सूक्ष्म अर्थो की वाहिका बनती हुई लाक्षणिक, व्यंजक और वक्रतापूर्ण भंगिमाओं में बदलकर जीवन, समाज और दर्शन की गुत्थियों को सुलझाने का सशक्त माध्यम बनी । इसके लिए प्रसाद को कड़ी मेहनत तो करनी पड़ी, किन्तु उनका सुफल भी छायावाद के रूप में सामने आया । निश्चय ही प्रसाद छायावाद के उद्भावक, युग के नियामक और असाधारण व्यक्तित्व के धनी बनकर काव्य-जगत में अवतरित हुए । सन् 1889 में काशी के सुंघनी साहू परिवार में जन्मे प्रसाद का कृतित्व उनके शांत-गंभीर एवं निश्छल मानवतावादी व्यक्तित्व की ही प्रतिकृति प्रतीत होता है । युगीन परिस्थितियों से काव्य के निर्माणकारी तत्वों का संकलन करके, पारिवारिक संस्कारशीलता से शैव दर्शन का मंत्र पाकर, इतिहास, दर्शन और संस्कृति से गहीत जीवन के निर्मायक तत्वों को भावना के रंग में रंगकर प्रसाद ने जिस मानवता की विजय-गाथा हिन्दी पाठकों को सुनाई है, वह उनके काव्य, नाटक, कहानी और उपन्यास-साहित्य में आद्यन्त विद्यमान है । उनका काव्य न केवल सौंदर्य-जलधि है, अपितु जीवनोदधि भी है जिसमें भाव, विचार और कला का, इच्छा, क्रिया और ज्ञान का अद्भुत समन्वय है । प्राज्ञिक और भावुक प्रसाद का कृतित्व विविधात्मक है । उनके नाटक इतिहास रस की निष्पत्ति करते हुए राष्ट्रीय संस्कृति की तात्विक मीमांसा करते हैं, तो उपन्यास यथार्थवाद का सशक्त प्रस्तुतीकरण । कहानियों में इतिहास, रोमांस, करुणा और सामयिक चिन्तना अभिव्यक्त हुई है तो काव्य में संस्कृति, दर्शन, कल्पना और अनुभूति का विनियोजन । उनकी काव्यकृतियाँ ये हैं-चित्राधार, प्रेम पथिक, करुणालय, महाराणा का महत्व, कानन-कुसुम, झरना, आँसू लहर और कामायनी । प्रसाद जी की समग्र काव्य-यात्रा को प्रारंभिक और विकसित काव्य-सोपानों के रूप में माना जा सकता है । उनका प्रारम्भिक कृतित्व चित्राधार से 'कानन कुसुम' तक की यात्रा को स्पष्ट करता है और विकसित व प्रौढ़ कृतित्व की संवाहिका कृतियों में झरना, आँसू लहर और कामायनी को लिया जा सकता है । अपने प्रारम्भिक सृजन में प्रसाद ब्रजभाषा के प्रयोक्ता, रीतियुगीन चेतना के वाहक और परम्परा के पोषक तथा भंजक दोनों रूपों में सामने आते हैं ।

'चित्राधार' गवाह है कि कभी तो वे अतीत की ओर मुड़े हैं, कभी वर्तमान की ओर झुके हैं, कभी परंपरा के प्रति आसक्ति दिखाते हैं और कभी उससे विद्रोह करते हुए नया पथ खोजते प्रतीत होते हैं । इतना ही नहीं, कभी प्रबंधात्मक शैली की ओर आकृष्ट होते हैं और कभी उससे ऊबकर स्वच्छंद, प्रगीत चेतना की ओर । स्पष्ट ही भाव, चिन्तन और कला तीनों ही संदर्भो में प्रसाद चित्राधार के माध्यम से मार्गान्वेषण करते प्रतीत होते हैं। अन्वेषण की यह प्रक्रिया उन्हें प्रकृति-प्रेम रहस्यानुभूति, भक्ति भावना, स्वस्थ श्रृंगारिकता अतीत के प्रति आसक्ति, मातृभूमि, के प्रति विनयशील और भारतीय

संस्कृति के प्रति आस्थावान प्रमाणित करती है । वस्तुत: प्रसाद के भावी काव्य एवं उसमें प्रतिरूपित चिन्तना के लिए चित्राधार चित्र का आधार ही प्रतीत होता है । 'कानन कुसुम' प्रसाद की काव्य-यात्रा का दूसरा सोपान है । इसके वर्तमान उपलब्ध संस्करण में 49 कविताएँ हैं । 'कानन कुसुम' सहज, स्वाभाविक, असाधित और प्राकृतिक रूप-रचना का प्रतीक है । इसमें संकलित एवं नियोजित कविताओं की जैसी प्रकृति है, वैसा ही इसका नामकरण भी है । इसकी कविताएँ प्रकृतिपरक, भक्तिपरक, विनयपरक और आख्यानपरक हैं । कतिपय फुटकर रचनाओं को भी इस संग्रह में स्थान प्राप्त है । इसकी प्रकृतिपरक कविताओं में पारंपरिक शैली भी है और कहीं-कहीं कवि नवीन पद्धति भी अपनाता दिखाई देता है । जहाँ-जहाँ नवीनता है, वहाँ-वहाँ मौलिक उद्भावना के साथ-साथ सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है । विनय और भक्ति की रचनाएँ प्राय: पिष्ट-पेषित शैली और भावना की स्याही से ही लिखी गयी हैं । इनमें ईश्वरीय सत्ता की प्रभुता, सर्वव्यापकता और रहस्यमयता के साथ ब्रह्म की सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता को संकेतित किया गया है । आख्यानक कविताओं- 'चित्रकूट', 'भरत, 'कुरुक्षेत्र', खीर बालक' और 'श्रीकृष्ण जयन्ती' आदि में पौराणिकता और ऐतिहासिकता का आधार ग्रहण किया गया है । इनमें सौंदर्य, श्रृंगार और प्रकृति के बिम्बांकन में प्राय: शालीनता, श्रद्धापूत दृष्टि और मर्यादा का सदैव ध्यान रखा गया है । ही, इसके शिल्प में पूर्वापेक्षा किंचित् परिवर्तन दिखाई देता है । अतुकान्त छन्द का प्रयोग यहाँ कवि की विद्रोही और स्वच्छन्दताप्रिय वृत्ति को स्पष्ट करता है ।

'करुणालय' का प्रकाशन सन् 1913 में हुआ, किन्तु बाद में इसे 'चित्राधार' में सम्मिलित कर लिया गया । आगे चलकर सन् 1928 में इसे पुन: स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान कर दिया गया । प्रसाद के अनुसार 'करुणालय' दृश्यकाव्य है, जिसे गीतिनाट्य के ढंग पर लिखा गया है । हमारी धारणा है कि यह गीतिनाट्योन्मुख काव्य है । इसकी कथावस्तु ऋग्वेद, तैत्तरीय संहिता, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, ब्रह्मपुराण और देवी भागवत आदि में बिखरी पड़ी है । इनमें बिखरी हुई कथा को प्रसाद ने शुनःशेफ, रोहित और हरिश्चन्द्र आदि से जोड़कर मौलिक प्रस्तुति की है । इस कृति के सृजन के मूल में अतुकान्त मात्रिक छंद के प्रयोग की भावना तो रही ही है, साथ ही नर-बलि का विरोध करते हुए तत्कालीन समाज की विविध स्थितियों का चित्रण करने की भावना भी प्रधान रही है । यों कला-शिल्प की दृष्टि से यह एक शिथिल रचना है, किन्तु भावी काव्य में अभिव्यक्त करुणा भावना के बीज यहाँ अवश्य देखे जा सकते हैं ।

'महाराणा का महत्व' प्रसाद द्वारा रचित आख्यानक रचनाओं की अगली कड़ी है । इसका -प्रकाशन सन् 1914 में हुआ था । इस ऐतिहासिक खण्डकाव्य में प्रसाद ने महाराणा प्रताप, रहीम और अकबर से सम्बद्ध कथानक लेकर अपनी सर्जन क्षमता का निदर्शन किया है । पाँच दृश्यों में विभक्त, 'महाराणा का महत्व' की कथा पूर्णत:

नियोजित और संगठित है । नाटकीयता, चरित्रोद्घाटन क्षमता वातावरण निर्माण और कलात्मक स्वच्छंदता के वरण के कारण यह प्रसाद की उपलब्धि है । भाषा की परिष्कृति, लाक्षणिक और व्यंजक शैली, नवीन अप्रस्तुत योजना और अरिल्ल छन्द के अतुकान्त प्रयोग के कारण यह रचना अब तक की रचनाओं में महत्वपूर्ण है । 'प्रेमपथिक' 'महाराणा का महत्व' खण्डकाव्य के पश्चात् दूसरी उल्लेखनीय रचना है । प्रेमाख्यानक के आधार पर रचित इस कृति में छायावादी काव्य-चेतना की पीठिका के दर्शन होते हैं । यों यह कोरा प्रेमकाव्य नहीं है । इसमें कवि का जीवन-दर्शन और दृष्टिकोण भी कलात्मक शैली में अभिव्यक्त हुआ है। 'प्रेमपथिक' इदम् से अहं, जगत और जीवन के समन्वय का काव्य है । प्रेममयी भावनाओं कां अभिव्यंजक होते हुए भी 'प्रेमपथिक' प्रेम के पावन और निष्कलुष रूप को प्रस्तुत करता है: ''करुणा-जमुना प्रेम-जाह्नवी का संगम है भक्ति-प्रयाग।'' डॉ. प्रेमशंकर के शब्दों में ''प्रेमपथिक हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण रचना है । इसमें प्रसाद ने प्रेम और श्रृंगार का आदर्शवादी रूप प्रस्तुत किया है । हिन्दी में यह श्रृंगार का नवनिर्माण था।''

'झरना' से पूर्व तक प्रसाद का काव्य वस्तुनिष्ठ प्रतीत होता है । यहाँ पहली बार प्रसाद आत्मनिष्ठता और निजता के प्रकोष्ठ में बैठकर नई भावधारा की यमुना में अवगाहन करते प्रतीत होते हैं । इसी में छायावाद का रंग, रहस्य और रोमान कल्पनाप्रवण और लाक्षणिक शैली की गोद में पलता दिखाई देता है । इसी कारण आचार्य वाजपेयी ने इसे छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार माना है । 'झरना प्रेमानुभूतियो के अनवरत प्रवाह को संकेतित करता है । इसमें संकलित कविताएँ प्रणय, प्रकृति के भावकणों से सिक्त और के पराग से सुवासित हैं । इनमें कवि की सौंदर्य-चेतना प्रकृति के उपकरणों का सहारा लेकर तन्मयानंद की सृष्टि करती प्रतीत होती है । वह अपनी इस सृष्टि में कहीं उद्दीप्त और कहीं विस्मय-विमुग्ध करती हुई मानवीकरण और प्रतीक शैली के कदमों से चलती हुई छायावादी चेतना में मिलती प्रतीत होती है । भाषा में पूर्णता, परिष्कृति और लाक्षणिकता तो है ही, वह व्यंजकता और नादात्मकता में भी अद्‌वितीय प्रतीत होती है । प्राय: सभी अप्रस्तुत प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण से चयनित होकर संवेद्‌य, संप्रेष्य और समानुपातिक रूप में आये हैं । उदाहरणार्थ-

कौन प्रकृति के करुण काव्य-सा
वृक्ष-पत्र की मधु छाया में
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है
अमृत सदृश नश्वर छाया में ।

'आँसू' 'झरना' से आगे का सघन प्रवाह है। 'झरना यदि छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार है तो 'आँसू' उसी प्रयोगशाला में वेदना दर्शन के उपकरणों से निर्मित और प्रमाणित कल्पना की विवृत्ति में दीप्त और सौंदर्य की तरंगों पर तैरता हुआ छायावाद का निष्कर्ष है । झरना में प्रणयानुभूतियों का अवरिल प्रवाह था तो 'आँसू' में प्रेमजनित घनीभूत पीड़ा की मादक तरंगें हैं जो कवि के हृदय-सरोवर की उत्तरी ध्रुव से

दक्षिणी ध्रुव तक की यात्रा करती प्रतीत होती हैं । झरना के प्रेम का संकोच 'आँसू' की वेदना एवं सरस व्यंजना में संकोच करता रहा, वही यहाँ आँसुओं की राह से स्वच्छंद गति पाकर बहा है । वस्तुत: आँसू की हर बूँद में कवि की पीड़ा का निचोड़ है । इस पीड़ा में करुणा की द्रवणशीलता, हिम की श्वेतिमा और हिमगिरि की मोहक उठान सी कल्पना का वैभव है । यह वह वेदनासिक्त काव्य है जिसमें यौवन की उत्तप्त दुपहरी में उद्दीप्त करने वाली प्रेम की सुरा है, रूप की आक्रामक छवियाँ हैं, आकर्षण की डोर के सहारे यात्रित प्रणयी की यात्रा है, मिलन के क्षणिक पलों की सम्पूर्णता है और अकस्मात् चमक कर विलीन हो जाने वाली बिजली के वैभव पर लुटने वाले प्रणयी की टीस है, मर्मान्तक पीड़ा है । यह पीड़ा सामान्य नहीं है, विशिष्ट है जो धरती से उठकर हिमशिखरों का स्पर्श करती हुई अपनी श्वेत आभा से संसार को उदात्त मनोभूमि पर ले जाकर वैश्विक भूमिका प्रदान करती है । आँसू में अभिव्यक्त वेदना की घनता के मूल में जो रूप-सौंदर्य है वह यौवन के मद की लालिमा से रंजित और काली जंजीरों से बँधे हुए विधु का सौंदर्य है तभी तो "अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना, सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का जगना" जैसी अधृतिसूचक पंक्तियाँ लिखी गयी हैं ।

स्मरणीय तथ्य यह है कि 'आँसू' में निरूपित वेदना दैहिक स्तर पर जन्म लेती है, मानसिक और भावात्मक स्तर पर कवि को "मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर गिनता अम्बर के तारे" जैसी बेचैन बना देने वाली स्थितियों में निरावलम्ब छोड़ देती है और यही वेदना अपने अन्तिम रूप में करुणा में पर्यवसित होकर निवैयक्तिक रूप धारण कर लेती है । स्पष्ट है कि प्रसाद की यह वेदना निष्क्रियता और निराशा की प्रेरिका न होकर जीवन-दृष्टि को परिशोधित करके प्रवृत्ति की ओर ले जाने वाली वेदना है । ऐसे वेदना-विगलित काव्य का कला-वैभव भी अद्भुत है । भाषा की परिष्कृति उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी कि शब्दों की आत्मा के तलघर में छिपी सूक्ष्म अर्थवत्ता । इसी से इस काव्य की मधुमिश्रित शब्दावली में एक आवेग है, एक प्रवाह है जो पाठक को निरन्तर बाँधे रखता है । लक्षणा, व्यंजना और वक्रता की डोर से बँधी 'आँसू' की भाषा में आये चित्रोपम शब्द, आवेगप्रधान शैली और संवेद्यता अप्रतिम है ।

'लहर' प्रसाद की जीवनानुभूतियों की सरिता से उठी हुई वह शालीन लहर है जिसका हिमानी रंग कवि के भावोच्छवासों पर चढ़कर उसे तरल और स्निग्ध बना गया है । झरना की भावनाओं का पार्वतीय उद्वेग, कल-कल, छल-छल और आँसू की घनीभूत पीड़ा लहर के प्रगीतों में पहुँचकर पूर्णत: संस्कृत, शालीन एवं जीवन के तापों से निखर कर पवित्र और उज्ज्वल बन जीवन-पुलिनों के विरस अधरों का अनुपान करने लगी है । "वह पंकज वनों की ममत्वपूर्ण परिक्रमा को छोड़कर जन-जीवन के सूने तट पर सिकता की रेखाएँ उभार कर एक करुणार्द्र तरल-सिहर भर देती है ।" 'लहर की अधिकांश कविताएँ प्रणय और प्रकृति की भूमि से उपजी हैं, किन्तु यहाँ ये दोनों ही भाव शालीन,

गंभीर और प्रौढ़ हो गये हैं । फलत: सौंदर्य के चित्र अधिकाधिक सूक्ष्म, प्रभावी और उदात्त हो गये हैं । उनमें एक गरिमाबोध है । प्रणय यहाँ उत्सर्ग के फूलों पर आकर टिक गया है । यहाँ तक आने में उसे अनेक लौकिक संस्कारों की राह से गुजरना पड़ा है । यही कारण है कि प्रेम का यह परिशोधन, उदात्तीकरण और भव्यता बोध अनेक कविताओं में व्यक्त लौकिक प्रेम की स्थितियों को भी लिए हुए है । यही स्थिति कवि द्वारा निरूपित प्रकृति-सौंदर्य की है । वह जीवन के चरम तत्वों की प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुई है । यों रूपकों और मानवीकरणों की शैली यहाँ भी खूब है, पर सहज और संवेद्य । 'बीती विभावरी जाग री' गीत इसका प्रमाण है । आख्यानक कविताओं में 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' 'प्रलय की छाया' और 'पेशोला की प्रतिध्वनि' जैसी दीर्घ कविताएँ हैं । 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' में शेरसिंह की अन्तर्व्यथा मूर्तित हुई है । 'पेशोला को प्रतिध्वनि' में मेवाड़ की प्राचीन गौरव-गाथा संकेतित है तो 'प्रलय की छाया ऐतिहासिक परिदृश्य पर रची गयी आख्यानक कविता है । इसमें 'कमला' के रूप-स्वरूप, मानस और तज्जनित चेतना के आरोह-अवरोह का अच्छा बिम्बाकन हुआ है । इस कविता की प्रतीक योजना रूप, गुण, धर्म और स्वभाव आदि के अनुसार भावाश्रित है और भाषा व्यंजकता और प्रेषणीयता के गुणों से ओत-प्रोत है । स्पष्ट ही ऊहर कोई साधारण लहर नहीं है। उसकी विशिष्टता संग्रह में आई कविताओं के भाव-शिल्प एवं सौंदर्यबोध में निहित है ।"

'कामायनी छायावाद की चरम परिणति है और प्रसाद की गभीर चिन्तना का श्रेष्ठतम वर्चस्व है । 15 सर्गो में विभक्त यह काव्य श्रद्धा और मनु के माध्यम से सृष्टि के विकास की कथा को तो प्रस्तुत करता ही है, श्लिष्ट रूपक-विधान के सहारे मानवता के चरम विकास को भी मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक भूमिका पर प्रस्तुत करता है । बीसवीं शताब्दी की महनीय उपलब्धि के रूप में 'कामायनी' दार्शनिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और कलात्मक वैशिष्ट्य का समीकृत रूप लेकर आई है । चिन्ता सर्ग से लेकर आनन्द सर्ग तक की यात्रा करता हुआ यह काव्य हिमगिरि की एक चेतनता से समरस होने वाले मनु के जीवन का इतिहास है, मानवीय चेतना के अन्नमय कोष से आनन्दमय शिखर तक पहुँचने की यात्रा का वृत्तान्त है । इसके प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा और इड़ा हैं जो इच्छा, क्रिया और ज्ञान के प्रतिनिधि हैं । चरित्र कल्पना में प्रसाद ने पूरी ईमानदारी बरती है । मनु नायक हैं, उनका व्यक्तित्व चिन्तक, श्रद्धादेव प्रजापति, कृतज्ञ और अन्त में एक स्थित प्रज्ञ का व्यक्तित्व है । प्रारम्भिक स्थिति में मनु मननशील होकर भी फूट-फूटकर रोते से लगते हैं और अपने को हतभाग्य मानते हैं । चंचल वृत्तियाँ उन्हें घेरे रहती हैं । चिन्ता सर्ग के मनु को इस बात का गहरा अफसोस है कि उनका सभी कुछ चला गया है और अब केवल वे बचे हैं-केवल वे, जो यह कहते हैं-

शैल निर्झर न बना हतभाग्य,

गल नहीं सका जो हिमखण्ड
दौड़कर मिला न जलनिधि अंक
आह वैसा ही हूँ पाषण्ड ।

मनु के समक्ष दो विचार हैं-पहला यह कि संसार नश्वर है, विध्वंस स्थायी है और दूसरा यह कि जीवन भी नाशवान है । ये विचार मनु को निष्क्रिय बना देते हैं । श्रद्धा का आगमन, उनकी इसी निष्क्रियता को तोड़ता है, किन्तु विषमताजनित द्वन्द उन्हें भोगी और स्वार्थी बनाकर उस बिन्दु पर लाकर छोड़ देता है जहाँ वे सारस्वत प्रदेश की जनता का विद्रोह झेलते हुए घायल हो जाते हैं । वे विषमता के जाल में फँसकर वह सब झेलते हैं जो ऐसे दिग्भ्रमित और आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व को झेलना पड़ता है, किन्तु प्रसाद उन्हें इस स्थिति में कैसे छोड़ते? अत: अन्त में विषमता के भाव धीरे-धीरे तिरोहित हो जाते हैं और मनु श्रद्धा व इड़ा का साहचर्य पाकर जिस बिन्दु पर आ खड़े होते हैं, वह यह है-

मनु ने कुछ मुसक्याकर कैलास ओर दिखलाया ।
बोले देखो कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया ।
हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमीं हैं ।
तुम सब मेरे अवयव हो जिनमें कुछ नहीं कमी है ।

कैलाश पर्वत पर पहुँचकर मनु का मन संशयरहित, निष्कलुष और व्यापक तो हो ही जाता है, उनकी चेतना में यह तथ्य भी घर कर जाता है-

अपने में सीमित रह कैसे, व्यक्ति विकास करेगा
यह एकांत स्वार्थ भीषण है. अपना नाश करेगा ।

श्रद्धा 'कामायनी जगत की मंगल कामना अकेली और विश्वचेतना व पूर्णकाम की प्रतिमा है । इड़ा बुद्धि की प्रतीक तो है, किन्तु अपने सौंदर्य से नयन महोत्सव की प्रतीक भी है । इतने पर भी यह सच है कि उसका व्यक्तित्व बौद्धिक बना रहा है । श्रद्धा भारतीय संस्कृति की जीवन्त प्रतिमा है तो इड़ा आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता और यांत्रिक युग की मनोवृत्तियों के साथ जुड़ी हुई प्रतीत होती है । कामायनी जीवन की प्रमुख समस्या का समाधान भी है और आनन्दवाद की प्रतिष्ठा भी है । आज जीवन जैसा है, उसमें न कहीं चैन है और न सुख और शांति ही । यही कारण है कि कामायनी के सहारे सतत संघर्षशील और चिर अशांत जीवन को समरस और आनन्दमय बनाने की प्रवृत्ति को निरूपित किया गया है । चिन्ता सर्ग मानव की संघर्षशील और व्यथित स्थिति का निरूपक है और आनन्द सर्ग समरस और आनन्दमय स्थिति का ।

कलात्मक भूमिका पर भी कामायनी का गौरव और महत्व असंदिग्ध है । भाषा, प्रतीक, बिम्ब और छन्द की दृष्टि से कामायनी का कला-वैभव छायावाद की समस्त विशेषताओं का निदर्शक है तो भावात्मक भूमिका पर उसमें आये रस, प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य, आनन्द, मानवता और जीवन के निर्माणकारी मूल्यों का विनियोग हुआ है । रूपक-प्रयोग और मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य के कारण तो कामायनी और भी महनीय हो गयी है । तात्पर्य

यह है कि कामायनी प्रसाद के जीवनानुभवों का निचोड़ है, उनके समस्त चिन्तन का काव्यात्मक निष्कर्ष है ।

4.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

प्रसाद के व्यक्तित्व में भावना और विचारणा का अद्भुत योग था । वे जितने भावुक थे, उतने ही विचारक भी । भावुकता का वरण करके प्रसाद ने प्रणय एवं सौंदर्य के गीत गाये तो अपनी चिन्तना के फलस्वरूप आधुनिक जीवन की प्रश्निल स्थितियों का मांगलिक समाधान प्रस्तुत किया । छायावादी चेतना से अनुप्राणित प्रसाद का काव्य श्रेय और प्रेय, व्यक्तिहित और समाजहित अनुभूति और कल्पना तथा आस्था और मूल्यबोध का काव्य है । उनकी सरस चेतना का प्रतिफल बनकर आने वाले काव्य की प्रमुख प्रवृतियाँ ये हैं : प्रकृति सौंदर्य का सूक्ष्म अंकन, नारी-सौंदर्य के प्रति श्रद्धा, प्रणय के प्रति उल्लास, वेदना, करुणा, मानव और उसके जीवन के प्रति आस्था, राष्ट्रीयता और आनन्दवादी दर्शन की स्थापना आदि ।

4.3.1 प्रकृति-सौंदर्य

प्रसाद का काव्य प्रकृति की मधुर चित्रशाला है। उसमें प्रकृति का सूक्ष्म और उदात्त चित्रण मिलता है । उन्होंने प्रकृति के कोमल स्वरूप के प्रति अनुराग प्रदर्शित करते हुए उसके भयानक स्वरूप की भी आकर्षक और सजीव चित्रावली प्रस्तुत की है । कामायनी एक ऐसी कृति है जिसमें प्रलय-वर्णन के प्रसंग में प्रकृति के भयावह व प्रलयंकारी रूप को पूरे प्रवेग और आवेग के साथ अंकित किया गया है । उधर गरजती सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी, चली आ रही फेन उगलती फन फैलाये व्यालों-सी और धँसती धरा धधकती ज्वाला ज्वालामुखियों के निश्वास जैसी पंक्तियों में प्रकृति के भयानक रूप की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत की गयी है । प्रकृति के कोमल स्वरूप का बिम्बग्राही वर्णन तो उनके समस्त काव्य में आद्यन्त विद्यमान है । लहर, आँसू झरना और कामायनी में शताधिक स्थलों पर प्रकृति के कोमल, कमनीय और सूक्ष्म चित्र अंकित किये गये हैं । उनके काव्य को कहीं से भी पलटिये प्रकृति की मोहक और उदात्त छवियाँ मुस्कराती हुई मिलेंगी । उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए-

नव कोमल आलोक बिखरता, हिम संसृति पर भर अनुराग,
सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसे मधुमय पिंग पराग ।

या-

रविकर हिमखण्डों पर पड़कर. हिमकर कितने नये बनाता
दुततर चक्कर काट पवन भी, फिर से वहीं लौट आ जाता ।

(कामायनी)

ध्यान से देखें तो प्रसाद के प्रकृति निरूपण की अनेक विशेषताएँ हैं । प्रकृति मानव-सहचरी बनकर विविध स्थितियों और मनस्थितियों की निरूपिका बन गयी है । वह मानव के सुख में अपना हर्षोल्लास मिलाती है तो दुख में वह मानव की सहवर्तिनी

बनकर निश्वास छोड़ती प्रतीत होती है । मानव के सुख और आनन्द में निमग्न प्रकृति भी आनन्दमय होकर यदि हिलते दुमकल कल-किसलय देती गलबाँही डाली, फूलों का चुम्बन, छिड़ती मधुपों की तान निराली स्थिति में डूबी हुई है तो विरहानुभूति के दाहक क्षणों में वह मानव के प्रति सहानुभूति व्यक्त करती है-

व्याकुल उस मधु सौरभ से मलयानिल धीरे-धीरे,
निश्वास छोड जाता है अब विरह तरंगिनि तीरे ।
चुम्बन अंकित प्राची का पीला कपोल दिखलाता,
मैं कोरी आँख निरखता पथ प्रात समय सो जाता । (आँसू)

प्रकृति निरूपण में आलम्बन, उद्दीपन और अलंकार रूपों को तो काम में लिया ही गया है, प्रकृति का मानवीकरण तो अद्भुत है । प्रसाद द्वारा किये गये उषा, रजनी, धरा, संध्या और चाँदनी आदि के मानवीकरण अपनी समता नहीं रखते हैं । इन मानवीकरणों में कवि की कला-संयोजना और भावोपम शक्ति को सर्वत्र देखा जा सकता है । स्पष्टीकरण के लिए केवल एक उदाहरण देखिए जिसमें 'धरा' का मानवीकरण नवविवाहिता लज्जावनत वधू के रूप में किया गया है ।

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति मान किए सी ऐंठी-सी ।

इसी क्रम में आशा सर्ग में आया रजनी का मानवीकरण भी अद्भुत है । ''तृण गुल्मों से रोमांचित नग'', उल्काधारी प्रहरी से ग्रह-तारा नभ में टहल रहे आदि तथा चिन्ता, आशा, काम और लज्जा आदि भावनाओं का शरीरीकरण भी इसी श्रेणी में आता है । प्रकृति सौंदर्य के अकन में प्रसाद जी ने अलंकरण का सहारा भी लिया है । वस्तुत: प्रकृति के द्वारा भावों और वस्तुओं के अलंकरण का कार्य भी प्रसाद की कामायनी, आँसू और लहर जैसी रचनाओं में किया गया है । ''जलदागम मारुत से कंपित पल्लव-सदृश हथेली'', केतकी गर्भ-सा पीला मुँह, तुम फूल उठोगी लतिका-सी, तुम इडे उषा-सी आज यहाँ आदि पंक्तियों में प्रकृति के द्वारा ही मानवीय सौंदर्य और भावों की श्रीवृद्धि की गयी है । प्रसाद के प्रकृति काव्य में प्रतीक रूप भी उपलब्ध होता है । काम सर्ग का आदि छंद इसका श्रेष्ठ उदाहरण है । यों प्रतीक रूप में प्रकृति चित्रण के अनेक उदाहरण प्रसाद के काव्य में मिलते हैं, किन्तु स्पष्टीकरण के लिए यह काफी होगा-

मधुमय बसन्त जीवन-वन के
बह अंतरिक्ष की लहरों में
कब आये थे तुम चुपके से,
रजनी के पिछले प्रहरों में।

यहाँ समग्र प्रतीक प्राकृतिक क्षेत्र से चयनित हैं और अपने गुण, धर्म और प्रकृति आदि के द्वारा उपमेय (यौवन) का बोध कराने में सक्षम हैं । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि प्रसाद ने प्रकृति को बहुत करीब से देखा था, उसकी शक्ति, क्षमता, आकर्षण

क्षमता, ममता और संवेदनात्मक प्रकृति को गहराई से पहचाना था । यही कारण है कि उनके प्रकृति सौंदर्य में सूक्ष्मता, कोमलता, भावोपमता अलंकरण क्षमता, संवेदनीयता और प्रतीकात्मकता को पर्याप्त स्थान प्राप्त है ।

4.3.2 नारी-सौंदर्य

प्रसाद सौंदर्य के कवि हैं उनके काव्य में प्रकृति की कमनीय छवियों के साथ-साथ नारी की अनाघ्रात छवियों को भी देखा जा सकता है । प्रसाद ने नारी के जिस रूप की कल्पना की है, वह उसका पावन और निष्कलुष रूप है । उन्होंने नारी के उस आभ्यंतर सौंदर्य से परिचित कराया है जो उसके चर्म और मांस में नहीं, प्रत्युत उसकी आत्मा में निहित है, जो वासना का नहीं, अर्चना का विषय है । ऐसे सौंदर्य से पुरुष के मानस में भोग की अपेक्षा प्रेरणा, शक्ति और स्फुरण उत्पन्न होता है । प्रसाद ने स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती, ज्यों जड़ में स्फूर्ति' कहकर तथा 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में' कहकर इसी भाव को व्यंजित किया है । कामायनी में आई ये पंक्तियाँ देखिए

जो स्पर्श से परे अनिर्वचनीय आनन्द को पे रित करती हैं.
और उस मुख पर वह मुसक्यान रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम ।
+ + +
कुसुम कानन अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार ।

नारी-सौंदर्य के बाह्य वर्णन में भी जिन सूक्ष्म तन्तुओं से काम लिया गया है, वे भी उसकी अनाघ्रात, पवित्र और कमनीय छवि को ही प्रस्तुत करते हैं । 'आँसू में भी रूप-सौंदर्य के अद्भुत, मोहक और सजीव चित्र भरे पड़े हैं । चिर-यौवन से सिक्त नारी के रूप की झाँकी प्रस्तुत करते हुए प्रसाद जी ने नारी के चन्द्रमुख, सच्चिकण केशराशि और आँखों की मादक छवि को बड़ी मनोहरता से अंकित किया है । उदाहरणार्थ-

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा आज हीरों से
काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी किसने यौवन की प्याली ।

नारी की मोहक आँखों में काली अंजन की रेखा ने तो सौंदर्य को मादकता प्रदान की ही है, आँखों के आन्तरिक भाग का सौंदर्य भी अद्‌वितीय बन पड़ा है । इसे 'तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली, काला पानी बेला-सी है अंजन रेखा काली' कहकर तथा अधरों की अरुणिमा, दंत-पंक्ति की उज्ज्वलता और तदनन्तर विधु-मुख की अलौकिकता को इस प्रकार चित्रित किया गया है, देखिए-

विद्रुम सीपी संपुट में मोती के दाने कैसे?

हैं हंस न, शुक यह फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे?
मुख-कमल समीप सजे थे दो किसलय से पुरइन के,
जल-बिन्दु सदृश ठहरे कब उन आँखों में दुख किनके?

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रसाद की सौंदर्यानुभूति में कमनीयता है, मधुरिमा है, पावनता है और है गम्भीरता। उसमें तन-मन का सौंदर्य समाहित है । छायावाद ने नारी को केवल सौंदर्य-बोध की दृष्टि से देखा । यही कारण है कि वह नारी को सौंदर्य की अकलुष प्रतिमा, चन्द्रमा की मुस्कान, जुही की माला और सपनों की शोभा मानता रहा है । लज्जा सर्ग में लज्जा के मुख से कहलाये गये नारी विषयक विचार सौंदर्य की उक्त विशेषताओं को रेखांकित करते प्रतीत होते हैं-

क्या कहती हो ठहरो नारी! संकल्प अश्रु जल से अपने
तुम दान कर चुकीं पहले ही जीवन के सोने से सपने ।
नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष-स्त्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में ।

4.3.3 प्रणयानुभूति

'चित्राधार' से लेकर कामायनी तक प्रसाद प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं । प्रणय भी सौंदर्य की भाँति उनके काव्य का मूल स्वर है । प्रेम का जो स्वरूप प्रसाद के काव्य में मिलता है, वह स्वच्छंद, उदात्त और आदर्शमूलक है । प्रेमपथिक में ही कवि का यह प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण मिल जाता है । उनका प्रेम परिमित नहीं है, वह तो सौहार्द से मिलकर विश्वव्यापी बनता दिखाई देता है- किन्तु न परिमित करो प्रेम को, सौहार्द्र विश्वव्यापी कर दो' । 'लहर' में भी प्रणयगीत हैं और वहाँ भी कवि ने प्रणय के सम्बन्ध में जो कहा है उसमें प्रतिदान का भाव नहीं है, वह तो दान ही दान है । यही कारण है कि उनका प्रेम 'पागल रे! वह मिलता है कब? उसको तो देते ही हैं सब की स्थिति से प्रारम्भ होकर समष्टि में पर्यवसित हो गया है । 'लहर के प्रणयगीतों में आन्तरिक अनुभूति के साथ-साथ व्यापक दृष्टि के प्रसार का कारण भी यही है । वह व्यष्टि से समष्टि तक पहुँचता है: 'मेरा अनुराग फैलने दो, नभ के अभिनव कलरव में। वस्तुत: प्रसाद वासनात्मक प्रणय की अनुभूति करके और उसकी विफलता की वेदना को भोगकर उसे परिष्कार की भूमिका तक ले गये हैं । उन्होंने प्रेम को दो हृदयों के मधुर मिलन के रोमांटिक रूप में अंकित किया है । उनकी प्रणयानुभूति का व्यापक धरातल वह है, जहाँ प्रेम समष्टि में लीन हो गया है । श्रद्धा मनु को ही प्रेम नहीं करती है, अपितु समस्त मानवता से प्रेम करती है । जिस स्वच्छंद प्रेम का पर्यवसान करुणा में हो और जो व्यापक सुख की बात करे उसे उदात्त, आदर्शमूलक और करुणाप्रधान ही कहना उचित है । करुणा समष्टि से सम्पृक्त है, तभी तो वह आनन्दवादी भूमिका पर प्रतिष्ठित है । श्रद्धा के द्वारा मनु को सम्बोधित करके कही गयी ये पंक्तियाँ देखिए जिनमें व्यापक मानवीय दृष्टि का स्पर्श है-

औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ;
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ ।

4.3.4 वेदना और करुणा

छायावादी काव्य में कल्पनाप्रवणता का आधिक्य है । इसलिए उनकी वेदनानुभूति बड़ी तीव्र है । जहाँ तक प्रसाद के काव्य में व्यक्त वेदनानुमुति का प्रश्न है, वह प्रमुखत: समष्टि के सुख से जन्मी वेदना है जो आनन्दवाद को जन्म देती है । प्रसाद ने वेदना को उत्सर्ग का उपहार माना है । उनकी वेदनानुभूति में छायावादी स्वानुभूति की विवृत्ति, रहस्यवादी अनुभूति और सेवा भावना का मधुर मिलन है । प्रसाद ने व्यक्ति-वेदना और समष्टि वेदना को समीकृत करके अपने वेदना भाव को उदात्त भूमिका प्रदान की है । वेदना की अनुभूति शाश्वत है । उसकी अलग-अलग अभिव्यंजना छायावादी कविता में देखी जा सकती है । पंत की वेदना 'ग्रंथि' के सहारे और महादेवी की वेदना उनके असफल एवं अतृप्त प्रेम के कारण उद्भूत हुई है । निराला ने व्यक्तिगत वेदना को समष्टिव्यापी करुणा में मिला दिया है । प्रसाद के यहाँ वेदना का जो स्वरूप है, उसमें न तो वैराग्य की शांत छाया है और न लौकिक आह और कराह ही है । इसमें प्रसाद की जीवन-दृष्टि शैवमत के आनन्दवाद से प्रेरित और पुष्ट है । फलत: प्रसाद ने सुख-दुख को नियति का खेल स्वीकार करते हुए वेदना को वरदान स्वरूप माना है । उनकी धारणा है कि वेदना के पंक में ही आनन्द का कमल खिलता है, दुख की कालरात्रि की पृष्ठिका पर ही सुख और आनन्द का प्रभात उदित होता है : मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह-मिलन का, सुख दुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का मन का ।' ये पंक्तियाँ गवाह हैं कि 'आँसू' में वेदना का वैयक्तिक स्वरूप व्यापक रूप लिए हुए है । ध्यान देने की बात यह है कि प्रसाद की वेदना प्रत्यक्षत: तो व्यक्तिगत प्रतीत हो सकती है, किन्तु अपने उद्देश्य में वह मानव-मात्र की वेदना है । उसमें भौतिक अभावों की अपेक्षा आत्मा के अभावों की चर्चा अधिक है । कामायनी के नायक मनु की वेदना उसकी निजी होने के साथ-साथ विश्व की वेदना भी बन गयी है। सृष्टि के प्रारम्भ में 'निकल रही थी मर्म वेदना करुणा विकल कहानी-सी को सृष्टिव्यापी बताया गया है । वस्तुत: मनु और श्रद्धा दोनों के सहारे प्रसाद ने जिस वेदना का प्रकाशन किया है, वह सार्वजनीन है, सेवा और करुणा से आन्दोलित है ।

श्रद्धा आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखने का भाव लिए हुए है । वह 'एक युग प्रकृति की पीर' के भाव को लेकर 'मैं लोकअग्नि में तप नितान्त आहुति प्रसन्न देती प्रशान्त की स्थिति में पहुँच गयी है । स्पष्ट ही प्रसाद की वेदना करुणा से मिलकर उच्च मनोभूमि पर संस्थित है । श्रद्धा मनु के पशुबलि वाले कृत्य से दुखी होकर करुणाभिभूत हो गयी है । उसने वेदना और करुणा से भरकर कहा भी है-

ये प्राणी जो बचे हुए हैं. इस अचला धरती के
उनके कुछ अधिकार नहीं क्या वे सब ही हैं फीके ।

सुख को सीमित कर अपने में केवल दुख छोड़ोगे

इतर प्राणियों की पीड़ा लख. अपना मुख मोडोगे ।

स्पष्ट ही प्रसाद के काव्य में वेदना का मांगलिक, विश्वव्यापी और कारुणिक रूप ही चित्रित हुआ है । यह वेदना शक्ति का स्त्रोत है, जीवन में प्रवेश की प्रेरिका है और प्रसाद के आनन्दवाद और कलावाद की सहज अभिव्यंजना है । इसमें विश्व वेदना का भाव है तथा दूसरों के दुख से उत्पन्न सहानुभूति और करुणा का स्वर सर्वोपरि है । 'आँसू, में इसी से कवि ने दुख-दग्ध वसुधा को सहानुभूति और करुणा का जल दिया है-

नीचे विपुल। धरणी है दुख-भार बहन सी करती,

अपने खारे आँसू ले करुणा-सागर को भरती ।

4.3.5 आस्था और जीवन-सत्य

प्रसाद छायावादी कवियों में एक ऐसे कवि के रूप में अपनी पहचान कराते हैं जिन्हें मानव और उसके जीवन के प्रति अटूट विश्वास रहा है । वे पलायन और वैराग्य के कवि नहीं, जीवन्त आस्था बोध और प्रवृत्तिमार्गी कवि थे । कामायनी उनके आस्थावाद की सशक्त पहचान है । निराश और हताश मनु को जीवन-संग्राम में प्रवेश की प्रेरणा देने का कार्य श्रद्धा द्वारा कराया गया है । केवल ले चल मुझे भुलावा देकर जैसी पंक्तियों के आधार पर उन्हें पलायनवादी कवि नहीं माना जा सकता है । जिस कविता की ये पंक्तियाँ हैं उसी के अन्तिम भाग में जीवन को जीने का संदेश भी दिया गया है। उन्होंने लिखा है-

श्रम विश्राम क्षितिज बेला से, जहाँ सृजन करते मेला से,

अमर जागरण उषा नयन से, बिखराती हो ज्योति घनी रे।

ये पंक्तियाँ गवाह हैं कि प्रसाद जी पलायनी वृत्ति के कवि नहीं थे। वे प्रवृत्तिमार्गी थे। जीवन के प्रति अटूट आस्था रखते थे। यदि ऐसा न होता तो वे जीवन-सत्य की बोधक ये पंक्तियाँ कैसे लिख पाते-

तप नहीं, केवल जीवन सत्य, करुण यह क्षणिक दीन अवसाद

तरल आकांक्षा से भरा, सो रहा आशा का आह्लाद ।

इतना ही क्यों, प्रसाद ने तो स्पष्टत: श्रद्धा के मुख से यह कहलवाया है कि 'हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते जिसको मर कर वीर' । फिर श्रद्धा सर्ग में मनु को सम्बोधित करके लिखी गयी पंक्तियों में तो जीवन और मनुष्य में अद्य आस्था व्यक्त की गयी है । 'शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जयगान, 'डरो मत, अरे अमृत संतान, अग्रसर है मंगलमय वृद्धि' और 'बनो संसृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल' आदि कहकर मानव की शक्ति और क्षमता के प्रति आस्था व्यक्त की गयी है । यह आस्था बोध निराधार नहीं है । इसमें कवि की शक्तिप्रेरित जिजीविषा, आस्था और जीवन के प्रति विश्वास का गहरा भाव है । जीवन में प्रवेश करने के लिए आस्था का सम्बल तथा कर्म का बल लेकर जीने की सलाह 'काम ने भी मनु को दी है और स्वयं

श्रद्धा ने कर्म सर्ग में और इड़ा सर्ग में कर्म प्रेरित जीवन बिताने की जो सलाह दी है, उससे भी प्रसाद के आस्थाबोध को जिसमें मनुष्य पर आस्था व्यक्त की गयी है, हृदयंगम किया जा सकता है-

हाँ. तुम ही हो अपने सहाय
यह प्रकृति परम रमणीय, अखिल ऐश्वर्य-भरी शोधक विहीन,
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कस कर बन कर्मलीन
सबका नियमन शासन करते बस. बढा चलो अपनी क्षमता ।

4.3.6 अतीत के प्रति आकर्षण

अतीत के प्रति आसक्ति और आकर्षण छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है । प्रसाद का काव्य भी इस विशेषता से अनुरंजित है । उनकी नाट्य रचनाओं में जहाँ राष्ट्रीयता की भावना को वाणी मिली है, वहीं अतीत के गौरव के प्रति आकर्षण भी मिलता है । जहाँ तक काव्य का सम्बन्ध है, उसमें भी अतीत के प्रति आकर्षण और प्रेम खुलकर प्रकट हुआ है । 'वरुना की कछार', 'अशोक की चिन्ता, पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' आदि में यह भाव मिलता है । अतीत के प्रति प्रेम प्रकट करने की दृष्टि से कामायनी को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है । चिन्ता सर्ग में मनु अस्तगत देव-संस्कृति और अतीत के वैभव को याद करके चिन्तित होते दिखाये गये हैं-

चिर किशोरवय नित्य विलासी. सुरभित जिनसे रहा दिगन्त,
आज तिरोहित हुआ कहां वह मधु से पूर्ण अनंत बसन्त?
कुसुमित कुंजों में से पुलकित प्रेमालिगन हुए विलीन,
मौन हुई है मूर्च्छित तानें, और न सुन पडती अब बीन ।

4.3.7 कल्पना की अतिशयता

अतीत के प्रति आसक्ति के साथ-साथ प्रसाद के काव्य में कल्पना की अतिशयता भी मिलती है । कोमलता नवीनता और मसृणता के कारण प्रसाद के काव्य में प्रयुक्त उपमान और कतिपय कल्पनाएँ बड़ी अनूठी हैं । उदाहरणार्थ, चिन्ता सर्ग में देवताओं के सुख-संचय की अभिव्यंजना के लिए छायावाद में नव तुषार का सघन मिलन, देवताओं के यौवन के लिए उषा और उसकी मुस्कान के लिए 'ज्योत्स्ना, विलास भावोपम सभ्यता को मधुपूर्ण बसन्त एवं दिशाओं में व्याप्त सौरभ की अभिव्यंजना सौरभ से दिगंत पूरित था, अन्तरिक्ष आलोक-अधीर की कल्पना की गयी है । 'आलोक-अधीर विशेषण छायावादी कल्पना के अनुरूप ही है । इसी प्रकार कल्पना की अतिशयता के कारण ही सामान्य से कथन कि 'देवता अपलक अपनी प्रेमिकाओं को देखा करते थे, 'भूख भरी दर्शन की प्यास' जैसी पंक्तियाँ लिखी गयी हैं । छायावादी प्रसाद के काव्य में जहाँ अतृप्तियों का वर्णन है, वहीं कल्पना में वेदना की छटपटाहट तक आकार पा गयी है, क्योंकि छायावादी कविता का सौंदर्य अतृप्त अभिलाषाओं के रंगीन धुएँ का

सौंदर्य है । कल्पना की यह अतिशयता 'आँसू' में तो स्थान-स्थान पर देखी जा सकती है-

तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली
काला पानी वेला-सी अंजन रेखा काली ।

इसी प्रकार 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग और कर्म सर्ग में आई ये पंक्तियाँ भी देखिए जिनमें कल्पना का वैभव लुटाता हुआ प्रसाद का कवि कहता है-

1. **अरुण की एक किरण अम्लान.**
   अधिक अलसाई हो अभिराम ।
2. **जलदागम मारुत से कंपित पल्लव सदृश हथेली**
3. **उषा की पहली लेखा कांत माधुरी से भीगी भर मोद**
   मदभरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक-धुती की गोद ।

4.3.8 सांस्कृतिक चेतना

प्रसाद जी राष्ट्रीय चेतना से युक्त और सांस्कृतिक भावों से परिपूर्ण रचनाकार थे । उनका काव्य ही नहीं, अपितु उनके नाटकों में भी उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को देखा जा सकता है । उचित भी है, जो कवि भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता हो, देश से अनुराग रखता हो और राष्ट्रीय भावों का प्रचारक और प्रसारक हो, वह वही सही अर्थ में मानव-मूल्यों का विश्वासी और पक्षधर हो सकता है । प्रसाद का कामायनी जैसा काव्य स्थान-स्थान पर उनकी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति करता प्रतीत होता है। उनकी आख्यानक कविताओं में भी इतिहास और संस्कृति का सम्मिलित स्वर देखा जा सकता है । 'अशोक की चिन्ता', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' जैसी कविताओं की पृष्ठभूमि में प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना ही क्रियाशील रही है । वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से वलयित रचनाकार ही मानवतावादी या मानवीय भावों का पक्षधर और प्रसारक होकर सच्चा मार्गदर्शक बन सकता है । प्रसाद जी ऐसे ही मार्गदर्शक थे। उन्होंने मात्र कविता के लिए कविता नहीं लिखी, अपितु अपनी सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर काव्य-सृजन किया है । उनके नाटकों में भी इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को भली-भाँति देखा जा सकता है । वे ऐसे नाटककार थे जिन्होंने नाटक में कविता का और कविता में नाटक का स्वरूप साकार कर दिया है । 'चन्द्रगुप्त' नाटक की तो मूल चेतना ही राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावों से परिपूर्ण है । उनके प्रत्येक नाटक में उनका कवि-हृदय बोलता है और उनके प्रमुख पात्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावों के प्रतीक-से प्रतीत होते हैं । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में आया हुआ उनका यह गीत उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के संदर्भ में देखा जा सकता है-

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।

इसी क्रम में ये पंक्तियाँ भी देखी जा सकती हैं-

हिमाद्री तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती-
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती-
अमर्त्य वीर पुत्र हो' दृढ़ प्रतिज्ञा सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ हैं -बढ़े चलो बढ़े चलो ।

4.3.9 शैव दर्शन की पीठिका पर आनन्दवाद

प्रसाद के काव्य में शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की गयी है। नियतिवाद और कर्मवाद या प्रव्रत्तिवाद भी अन्ततः रहस्यवाद में ही मिल गये हैं । कामायनी में इसी आनन्दवाद की स्थापना 'समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था, चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था कहकर की गयी है । प्रसाद की धारणा थी कि सौंदर्यमयी चंचल कृतियों, आसुरी वृत्तियों और तर्कशील बुद्धि आदि से पूरित विषमता भरे संसार में अंततः इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य से आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है । प्रसाद की नियति भाग्य का पर्याय न होकर विश्व की नियामिका शक्ति है: 'उस एकान्त नियति शासन में चले विवश धीरे-धीरे । स्पष्ट ही प्रसाद आनन्दवादी थे और इसकी उपलब्धि के लिए उन्होंने सामरस्य पर बल दिया है । ज्ञान, इच्छा और क्रिया के असंतुलन पर दृष्टिपात करते हुए प्रसाद कामायनी में लिख गये हैं-

ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यही विडम्बना है जीवन की ।

और इसी विडम्बना को यह कहकर आनन्दवाद की भूमिका पर प्रस्तुत किया गया है-

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।

4.4 काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

प्रसाद का काव्य अनुभूति की दृष्टि से जितना समृद्ध है, अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी उतना ही सक्षम है । भाषा, अलंकार, छन्द और प्रतीक एवं बिम्बों के सफल और सार्थक प्रयोग प्रसाद काव्य की महत्तम उपलब्धियाँ हैं । अभिव्यंजना शिल्प के प्रमुख उपकरणों में पहला स्थान भाषा का है, तदनन्तर अलंकरण आदि को महत्व प्राप्त है।

4.4.1 काव्य-भाषा

अभिव्यक्ति की प्राणशक्ति का नाम भाषा है । यह वह सेतु है जिसके सहारे कवि का अनुभूत पाठकों तक सम्प्रेषित होता है । अतः संप्रेषणीयता, प्रसंगानुकूलता और भावानुकूलता भाषा की अनिवार्य विशेषताएँ हैं। प्रसाद की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली

है। यद्यपि उन्होंने पहले-पहले ब्रजभाषा में 'चित्राधार' की रचना की थी और 'प्रेम पथिक' को भी ब्रजभाषा में ही प्रस्तुत किया था, किन्तु बाद में वे खड़ी बोली के सफल कवि प्रमाणित हुए। उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त है। कामायनी, आँसू लहर और झरना जैसी श्रेष्ठ कृतियों में प्रसाद ने तत्सम भाषा का ही प्रयोग किया है । जहाँ तक प्रसाद की ब्रजभाषा का प्रश्न है, वह संस्कृत के तत्सम रूपों के सहयोग से ही निर्मित हुई है । 'चित्राधार' की अधिकांश कविताओं में ब्रजभाषा का संस्पर्श दिखाई देता है। हाँ, प्रसाद ने ब्रज प्रदेश में प्रचलित तद्भव और देशराज शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। उनकी ब्रज की रचनाओं में 'लसत', 'भीजि', 'निवारि', 'ठांवा', 'पसीजत', 'ठिठकी', चकचूर, टेरो, उछाह, गोइये, तातो ठौर और चेतो आदि ब्रज के प्रचलित तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग मिल जाते हैं । ब्रजभाषा में ही आये दिन प्रयुक्त होने वाले उर्दू फारसी के शब्द भी प्रसाद के शब्द-भण्डार में देखे जा सकते हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त खड़ी बोली भाषा को प्रमुख विशेषताएँ ये हैं-

1. प्रसाद की भाषा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त है । उसमें न केवल संस्कृत के शब्दों का, अपितु दीर्घ सामासिक शब्दावली व संधिज शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।
2. प्रसाद के काव्य में प्रयुक्त शब्द तत्सम, तद्भव और देशज तीनों प्रकार के हैं । यह ठीक है कि उनके काव्य में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, किन्तु ध्यान रहे ये तत्सम शब्द भी दो प्रकार के हैं. दार्शनिक और साहित्यिक । दार्शनिक तत्समों का प्रयोग कामायनी में मिलता है । चिति, समरस, लीला, कला, उन्मीलन, काम, श्रेय, विषमता, भूमा, नियति और त्रिपुट ऐसे ही दार्शनिक तत्सम शब्द हैं । साहित्यिक शब्द तो सर्वत्र हैं ही । एक तीसरे प्रकार के तत्सम शब्द भी प्रसाद के काव्य में उपलब्ध होते हैं । ये वे शब्द हैं जो हिन्दी में न केवल अप्रचलित हैं, अपितु दुष्भाष्य भी हैं यथा-श्वापद, आवर्जना, नाराच, आलम्बुषा, ब्रज्या, ज्योतिरिंगणों और तिमिंगलों आदि । इस प्रकार की तत्सम शब्दावली भी विविधवर्णी है, किन्तु अतिरिक्त क्लिष्टता फिर भी उसमें नहीं है ।
3. तद्भव शब्दों का प्रयोग भी प्रसाद की भाषा में प्रचुरता से हुआ है-निबल, सपना, सुहाग, नखत, रात, तीखा, राज, पीर, प्रान, परम, सांझ, अर्ध, परदेशी, नाव आदि ऐसे ही शब्द हैं । इनका प्रयोग तत्सम शब्दों के साथ होने से खटकता नहीं है ।
4. देशज शब्द भी प्रसाद की भाषा के गौरव हैं और भाषा की जीवन्त शक्ति के प्रतीक हैं । इनके प्रयोग से प्रसाद की काव्य-भाषा भावश्री और लोकश्री से संसिक्त होकर सामने आयी है । ऐसे शब्दों में पेंग, झीमना, बकना, बयार, दाँव, ठिठोली, खुट्टी, बुल्ला, गेल, झिटका मचल, सुआ, पुआल, अटकाव, घोट, हिचकी आदि को लिया जा सकता है ।
5. प्रसाद एक सजग शिल्पी थे । अत: शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति भी उनके काव्य में मिलती है । उनके द्वारा प्रयुक्त स्वनिर्मित शब्दों में गुलाली, विकस चली, दिपती,

अलगाता और सलील आदि के कारण भाषा माधुर्ययुक्त हो गयी है । प्रसाद ने मधुर, मधु, महा, चिर और चिति आदि शब्दों को आगे पीछे जोड़कर भी अनेक नये शब्दों का निर्माण कर लिया है ।

6. ध्वन्यात्मकता प्रसाद की भाषा की अन्यतम विशेषता है । अरराया, रिमझिम, झिलमिल, छपछप, थर-थर, सन-सन और धू-धू आदि शब्दों का प्रयोग ऐसा ही है। अपनी ध्वनि से ही अर्थ की प्रतीति कराने में सक्षम 'आँसूं' में पर्याप्त हैं । 'आँसू' की भाषा में कवि ने व्यंजना शक्ति का प्रयोग करके सांकेतिकता और भावाभिव्यंजकता की पर्याप्त सृष्टि की है । 'बिजली माला पहने फिर मुस्कराता सा आँगन में, हाँ कौन बरस जाता था रस बूँद हमारे मन में' पंक्तियों में वाच्यार्थ से लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक ही की यात्रा तय कर ली गयी है।
7. लाक्षणिकता प्रसाद की काव्य-भाषा की सातवीं विशेषता है । कामायनी और आँसू ही क्यों, झरना और लहर में भी लाक्षणिक भाषा का प्रचुर प्रयोग हुआ है । 'रक्त की नदी में सिर ऊँचा छाती कर तैरते थे' में साध्यवसना लक्षणा का वैभव है, तो 'मेरे जीवन के सुख निशीथ जाते-जाते रुक जाना में प्रयोजनवती लक्षणा का सौंदर्य समाहित है। शीतल ज्वाला जलती थी ईधन होता दृग जल का में 'ज्वाला' का लक्ष्यार्थ वेदना है, तो 'झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद-माला में झंझा भावों की तीव्रता की, बिजली पीड़ा की और 'नीरदमाला' निराशाजनित भावों की संकेतिका बनकर आई है । सैकड़ों उदाहरण और भी हैं जो प्रसाद की लाक्षणिक भाषा के वैभव को संकेतित करते हैं।
8. प्रसाद की काव्य-भाषा में प्रतीकों का प्रयोग भी पर्याप्त वैविध्य लिए हुए है । उनके प्रतीक प्रयोग से भाषा मधुर, गम्भीर और लालित्यपूर्ण हो गयी है । प्रसाद के अधिकांश प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से लिये गये हैं, किन्तु कतिपय ऐसे भी हैं जो दर्शन और संगीत कला के क्षेत्र से लिए गए हैं । दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग कामायनी में मिलता है । शेष साहित्यिक प्रतीकों में परंपरागत और नवीन दोनों ही वर्गो के प्रतीक हैं । विधु, काली जंजीरें, फणि और हीरे जैसे पारम्परिक प्रतीक क्रमश: मुख, काले बाल, वेणी और माँग का प्रतीकार्थ रखते हैं । इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में भी परम्परागत प्रतीक के रूप में नीलम की प्याली (यौवन मद की लालिमा), विद्रुम सीपी (लाल होंठ), मोती (दाँत) और शुक (नासिका) आदि को लिया जा सकता है :

   1. मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली
   2. विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे?

   नूतन अर्थ के घोतक स्वच्छंद प्रतीकों का प्रयोग भी प्रसाद के काव्य में बहुतायत से हुआ है । ऐसे कतिपय प्रतीकों की सूची यह है- पतझड़(नीरस), सूखी फुलवारी (शुष्क जीवन), किसलय (सरसता), क्यारी (हृदय), किरण (आश-उत्साह), बसन्त

(यौवन), तपन (व्यथा), आकाश (अदृष्ट और हृदय), उषा (सुख), शशिलेखा (कीर्ति), कुसुम सुमन (मन, भावनाएँ), कुसुम(तारागण), खूप अचेत (जड़ता), बयार (जीवनदायिनी) आदि । इन प्रतीकों के प्रयोग से भाषा मे कठिनाई नहीं आने पाई है, बल्कि भाषा भावात्मक, सौंदर्यमूलक और बिम्बग्राहिणी शक्ति से युक्त हो गयी है । भाषा का माधुर्य गुण भी जो कि प्रसाद काव्य की विशेषता है, इन प्रतीकों के प्रयोग से संरक्षित और सुरक्षित बना रहा है ।

9. अभिव्यक्ति को सप्राण बनाने के लिए कहीं-कहीं प्रसाद की भाषा मुहावरों और लोकोक्तियों से भी युक्त हो गयी है । ध्यान रहे मुहावरों का प्रयोग प्रसाद की भाषा में सहज और अयत्नज है तभी तो उसकी प्रवाहशीलता और प्रेषणीयता बरकरार रही है : 'भीगे नयन, छाती का दाग खोजना, अपने ही बोझ से दबना, तिल का ताड़ बनाना, लकीर पीटना, मर-मर कर जीना, साँस उखड़ना और सुहाग छीनना तथा सुख का बीन बजाना आदि मुहावरे प्रसाद काव्य के गौरव बने हुए हैं। उपर्युका विवेचन के संदर्भ में कह सकते हैं कि प्रसाद की भाषा परिष्कृत शब्दावली से निर्मित हुई है । उसमें आये शब्द अर्थ के धन से सम्पन्न, प्रेषणीयता से भरपूर, लोकोक्तियों एवं मुहावरों के रंगों में निखरे चित्रात्मक विच्छिति से दीप्त और लाक्षणिक, प्रतीकात्मक एवं व्यंजनाप्रवण शब्दावली के सौष्ठव और मारक प्रभाव से युक्त भाषा के निर्माता हैं । प्रसाद एक ऐसे शिल्पी थे जिन्हें शब्दों की अन्तरात्मा में छिपे अर्थ का ज्ञान था । अत: उन्होंने जिस भाषा को अपनाया है, वह न केवल मृदु ललित और सरस है, अपितु भावोपमता प्रेषणीयता और बिम्बोद्भावन क्षमता से भी भरपूर है । उसमें एक कलात्मक संसार सहज ही देखा जा सकता है ।

4.4.2 अलंकार प्रयोग

अप्रस्तुत विधान से तात्पर्य उस समग्र अलंकरण सामग्री और उसके प्रयोग से है जिसकी सत्ता और स्थिति काव्य में वर्ण्य-विषय से पृथक है और जिसका प्रयोग काव्य में अतिरिक्त लावण्य भर देता है । प्रसाद के काव्य में श्री, शोभा और लावण्य की जो प्रसार है, उसके पीछे उनके अलंकरण का विशेष हाथ है । प्रसाद के काव्य में भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है । उनके प्रिय अलंकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय हैं जिन्हें उनके सभी काव्य-ग्रंथों में देखा जा सकता है । उनकी उपमाएँ ललित, मार्दवयुक्त, प्रभावी और अर्थ-गरिमा से दीप्त हैं तो उत्प्रेक्षाएँ उनकी कल्पनाशक्ति की परिचायिका हैं और रूपक भाव की सघनता और संश्लिष्टि के द्योतक हैं । मानवीकरण के सहारे प्रसाद ने मनोभावों का न केवल मूर्तिकरण किया है, अपितु जड़ पदार्थो और अमूर्त भावों का चैतन्यीकरण भी किया है । आँसू कामायनी, लहर और झरना की काव्य-विभा गवाह है कि अलंकरण का सहारा प्रसाद ने जान-बूझकर नहीं लिया है, अपितु वह एक सहज प्रक्रिया का

परिणाम है । उनकी उपमाओं में वैविध्य है, इन्द्रधनुषी रंग हैं और सबसे अधिक सटीकता है । कतिपय प्रयोग देखिए करुणा की नव अँगड़ाई सी, मलयानिल की परछाई-सी, उषा-सी ज्योति रेखा, अवशिष्ट रह गयी अनुभव में अपनी अतीव असफलता-सी, अवसादमयी श्रम दलिता-सी छायापथ में तारक द्युति-सी, घनश्यामखण्ड-सी आँखों में और 'पीयूष स्त्रोत-सी बहा करो' आदि प्रयोगों में उपमा का वैभव है । ये उपमाएँ ललित, मधुर और प्रभावी तो हैं ही, एक अतिरिक्त लावण्य से भी दीप्त हैं । मूर्त के लिए अमूर्त, अमूर्त के लिए मूर्त और मूर्त के लिए मूर्त और अमूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का यह विधान कवि की सूक्ष्म कल्पना का परिचायक है । कहीं कहीं तो उपमाओं के प्रयोग में कवि की सूक्ष्म कल्पना शालीन और श्वेताभा से भी मंडित है और यौवन-बसन्त के रंगों से भी । उदाहरणार्थ- 'चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसे, उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी । प्रसाद के रूपकों एवं सांगरूपकों की संश्लिष्ट और भावुक सघनता को सर्वत्र देखा जा सकता है । स्पष्टीकरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए-

इस हृदय कमल का घिरना अलि अलकों की उलझन में
आँसू मरंद का गिरना मिलना निश्वास पवन में ।

इन पंक्तियों में सांगरूपक है और 'तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली व 'अंकित कर क्षितिज-पटी को तूलिका बरौनी तेरी में रूपक-सांगरूपक का सौंदर्य समाहित है । इन दोनों अलंकारों के प्रयोग से तथा मानवीकरण के कारण प्रसाद की कविता बिम्बमयी हो गयी है । सफल और श्रेष्ठ बिम्ब वहीं आये हैं जहाँ अलंकृति का वैभव सुरक्षित है । कतिपय उदाहरण देखिए और कवि की घनात्मक बिम्ब योजना व अलंकृति के वैभव में डुबकियाँ लगाइये-

''धीरे-धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई मुख धोती शीतल जल से ।''
''सिंधु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में मान किये सी ऐंठी-सी ।''

4.4.3 बिम्ब प्रयोग

प्रसाद जी का काव्य सफल और श्रेष्ठ बिम्बों का उदाहरण प्रस्तुत करता है । कामायनी, आँसू लहर और झरना आदि सभी में सफल बिम्बों की योजना हुई है । कलात्मक एवं भावात्मक संतुलन बनाये रखकर भी प्रसाद ने दृश्य, मानस, संवेदनापरक और आध्यात्मिक बिम्बों के विधान में अपने कौशल का परिचय दिया है । उनके बिम्ब कहीं अलंकारों के सहारे निर्मित हुए हैं, कहीं भावोपमता की ती भाता के कारण, कहीं दृश्य या घटना के अंकन के लिए तो कहीं विविध संवेदनों को आधार बनाकर बिम्ब-सृष्टि की गयी है । कतिपय उदाहरण देखिए-

बीती विभावरी जाग री

अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट उषा नागरी ।

उपर्युक्त पंक्तियों में आया बिम्ब अनेक कारणों से विशिष्ट बन गया है । यह वह बिम्ब है जिसमें चाक्षुष गुण भी है, संवेद्य बिम्ब भी है और कुल मिलाकर एक सांस्कृतिक चेतना का बिम्ब भी उभरकर आता है । ऐसे बिम्ब प्रसाद-साहित्य की अक्षय निधि हैं । झरना, आँसू और कामायनी के अन्तर्गत जो बिम्ब उपलब्ध हैं वे न केवल अलंकृत बिम्ब हैं, अपितु संवेद्य, भावोपम और संश्लिष्ट बिम्ब भी हैं । कामायनी का तो प्रत्येक सर्ग बिम्ब-विधान की दृष्टि से अद्‌वितीय बन पड़ा है । आशा सर्ग में आई हुई ये पंक्तियाँ देखिए जो एक उत्कृष्ट बिम्ब की वाहिका बनी हुई हैं-

सिन्धु सज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति
मान किए सी ऐंठी-सी ।

चिन्ता सर्ग, आशा सर्ग, श्रद्धा सर्ग, लज्जा सर्ग और इड़ा सर्ग बिम्ब विधान की दृष्टि से विशेषोल्लेख्य है । 'आँसू' जैसा मानवीय विरह का काव्य भी बिम्ब-विधान की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावित करता है । नारी नि:सर्ग सौंदर्य से परिपूर्ण प्रिया के अनुपम केश-कलाप पूर्ण सिर का यह बिम्ब देखिए जो अपनी रमणीयता में अकेला है-

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से?

इसी प्रकार यौवन के मधु की लालिमा से परिपूर्ण एवं काजल की रेखा से सुशोभित प्रिया की काली-काली आँखों का यह दृश्य-बिम्ब देखिए जो पाठक के मन-प्राण को बाँधने की क्षमता रखता है-

काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली
मानिक-मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली?
तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली
काला-पानी बेला-सी है अंजन-रेखा काली ।

कहने का अभिप्राय यह है कि प्रसाद का काव्य अद्भुत, मार्मिक, संश्लिष्ट, भावोपम और संवेद्य बिम्बों से भरा पड़ा है ।

4.4.4 काव्यरूप और छन्द

प्रसाद की काव्य चेतना प्रगीतात्मक रही है, किन्तु बावजूद इसके उन्होंने कामायनी और आँसू के रूप में प्रबन्धों की सृष्टि भी की है । आँसू का प्रबन्धत्व भाव-राशि के क्रमिक बँधाव पर आधारित है, तो कामायनी का महाकाव्यत्व शास्त्रीय सीमाओं का स्पर्श करता हुआ भी स्वच्छंद भूमिका पर अवस्थित है । लहर, झरना और प्रेमपथिक में प्रगीत चेतना भी है और दीर्घ कविता का ऐसा विधान भी है जो कतिपय अर्थों में प्रबंधत्व के

निकट प्रतीत होता है । उनके द्वारा प्रयुक्त छन्द परम्परागत ही हैं किन्तु शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' आदि में मुक्त छन्द और अतुकान्त छन्द का प्रयोग हुआ है । कामायनी में पारम्परिक छंदों का वैविध्य है । वहाँ सार, श्रृंगार, ताटंक वीर और रूपमाला आदि छंदों का सफल प्रयोग हुआ है । कतिपय छन्द ऐसे भी हैं जहाँ पादाकुलक और पद्धरि का मिश्रित रूप भी मिलता है । 'आँसू' में प्रयुक्त 'आँसू' छन्द कामायनी के आनन्द सर्ग में भी प्रयुक्त हुआ है । कुल मिलाकर छन्द-विधान और काव्य-रूप की दृष्टि से भी प्रसाद का काव्य प्रभावी और आकर्षक बन पड़ा है ।

4.5 सारांश

छायावाद अपने आप में एक विशिष्ट काव्यधारा रही है । जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक भी थे, मार्गदर्शक भी थे और विशिष्ट कवि भी थे । निराला का कृतित्व वैविध्यपूर्ण था और उनका सृजन जीवन का पार्श्ववर्ती होने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। वे क्रांति के अग्रदूत, पौरुष के श्रृंगार युगीन विषमताओं और निजी व्यथाओं से तप-तचकर निर्भीक, स्पष्टवादी और मानवता का जयघोष करने वाले कवि थे । महादेवी जी का तो सृजन प्रारम्भ से अन्त तक ही एक जैसा रहा है ।हाँ, पंत में वैविध्य दिखाई देता है, किन्तु वह वैविध्य मार्क्स और गांधी के सैद्धांतिक परिवेश से मिलकर कहीं-कहीं पर्याप्त हल्का हो गया है । प्रसाद जी ऐसे वैविध्यवादी थे ही नहीं, वे तो सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के आदर्शीकरण के पक्षधर थे । वे अतीत का मंथन कर वर्तमान के अनुकूल अमृत खोजते रहे और पंत हवा के हर रुख के साथ चंचल होते रहे । पंत ने अपने को दोहराया बहुत है । प्रसाद में यह दोहराहट नहीं है । प्रसाद अतीत के प्रति न केवल जिज्ञासा भाव रखते थे, अपितु आस्था भी रखते थे, जबकि पंत वर्तमान से प्रेरित होकर भावी के निर्माता बनने का प्रयत्न करते रहे । यों निर्माता दोनों हैं, पर एक अतीत के शिलापट्ट पर वर्तमान की ऐसी रेखाएँ खींचता रहा जो भावी की नियामिका बनी और दूसरा वर्तमान की जाह्नवी से अमृतमयी पावन धार निकालकर भावी समाज के लिए नवल सृष्टि रचने में संलग्न रहा । एक ने अतीत के समुद्र-मंथन से अमृत निकालकर वर्तमान को दिया और दूसरे ने वर्तमान जीवन की अनुभावना कर भावी के लिए स्वप्न संजोये । भावुक भी दोनों ही थे । प्रसाद की भावुकता अकेली नहीं है । उन्हें सहचर के रूप में चिन्तन भी मिला है । उनके काव्य में हृदय और बुद्धि का समन्वय है, भाव और तर्क का समायोजन है, रंग और रूप की मैत्री है, दिव्य और मधुर का संगम है, शरीर और मन का संग्रथन है, लता और वृन्त का मिलन है, पुष्प और गंध का ग्रंथिबंधन है और क्षितिजों का सौंदर्य है । पंत में भी यह समन्वय है तो, पर एकात्मकता नहीं जो प्रसाद के पास है । पंत का चिन्तक और भावुक पूरी तरह मिल नहीं पाया है । पंत के पास भावुकता का तीर तो है जो पाठक के मर्म को बेध देता है, पर तर्क का वह कवच नहीं जो भावुकता के तीर से अपनी रक्षा कर सके ।

फलत: पंत घायल करते हैं, किन्तु प्रसाद घायल करने के साथ-साथ उसकी मरहमपट्टी भी कर देते हैं । एक वाक्य में प्रसाद विशिष्ट कवि, चिन्तक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक पुरुष हैं ।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रसाद के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके कृतित्व पर प्रकाश डालिए ।
2. "प्रसाद के भावलोक में प्रेम, श्रृंगार और रागतत्व की प्रधानता तो है ही, उसमें घनीभूत विषाद की छाया भी देखने को मिलती है ।" इस कथन की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत कीजिए ।
3. "प्रसाद का प्रकृति-सौंदर्य छायावादी कविता के मेल में होते हुए भी नवचेतना का स्वर लिए हुए है ।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए ।
4. "सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीयता का मिला-जुला स्वर प्रसाद-काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है ।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।
5. प्रसाद की काव्य-भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
6. प्रसाद-काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों, बिम्बों और अलंकार-सौंदर्य को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।

4.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ-युग कवि जयशंकर प्रसाद
2. प्रभाकर श्रोत्रिय-प्रसाद साहित्य में तत्व
3. डॉ. नगेन्द्र-प्रसाद और कामायनी
4. डॉ. हरिचरण शर्मा -छायावाद के आधार स्तम्भ
5. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना-हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि
6. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना -प्रसाद दर्शन
7. डॉ. विजयबहादुर सिंह-प्रसाद, निराला और पंत
8. डॉ.इंद्रनाथ मदान-प्रसाद प्रतिभा

♦♦♦

इकाई- 5 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का काव्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 काव्य वाचन

5.2.1 जुही की कली

5.2.2 (प्रिय) यामिनी जागी

5.2.3 मैं अकेला

5.2.4 स्नेह-निर्झर बह गया है

5.2.5 संध्या सुन्दरी

5.3 प्रसंग सहित व्याख्या

5.3.1 कविता परिचय (जुही की कली)

5.3.2 कविता परिचय (प्रिय यामिनी जागी)

5.3.3 कविता परिचय (मैं अकेला)

5.3.4 कविता परिचय (स्नेह-निर्झर वह गया है)

5.3.5 कविता परिचय (संध्या सुन्दरी)

5.4 संदर्भ ग्रंथ

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- निराला की सरस काव्य-पंक्तियों से परिचित हो सकेंगे ।
- निराला की काव्य-पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या करने की पद्धति को भली-भाँति समझ सकेंगे ।
- निराला की कविताओं के भाव-सौंदर्य को भली-भाँति हृदयंगम कर सकेंगे ।
- निराला की कविताओं के कलागत सौंदर्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

निराला छायावाद के एक उल्लेखनीय कवि हैं । उन्होंने अपनी सशक्त एवं परिष्कृत काव्य-कृतियों के माध्यम से हिन्दी कविता को द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता, उपदेशपरकता और नीरसता से बाहर निकालकर मधुर, सरस, भव्य एवं जीवन्त बनाया। उनकी लगभग सभी कविताओं में एक अद्भुत वैभव है, गरिमा है, वेदना है और अनुराग है । 'जुही की कली', 'प्रिय यामिनी जागी', स्नेह निर्झर बह गया हैं', 'मैं अकेला' तथा

'संध्या सुन्दरी' आदि इस इकाई में प्रस्तुत सभी कृतियाँ भाव एवं शिल्प दोनों ही की दृष्टि से अत्यन्त सशक्त, सरस एवं प्रभावशाली हैं ।

5.2 काव्य वाचन

5.2.1 जुही की कली

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी - स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी - जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी,
विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल ।
आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आयी याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या? पवन
उपवन-सर-सरित गहन गिरि-कानन
कुंज-लता-पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह!
नायक के घूमे कपोल,
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल ।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही-
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये,
कौन कहे
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों को झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,

चौंक पड़ी युवती
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज-पास,
नसमुख हँसी-खिली,
खेल रंग प्यारे-संग ।

5.2.2 (प्रिय) यामिनी जागी

(प्रिय) यामिनी जागी ।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख
तरुण-अनुरागी ।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे.
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे.
ज्योति की तन्वी, तड़ित-
द्युति ने क्षमा माँगी ।
हेर उर-पट फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय-नेह की जय-माल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी ।

5.2.3 मैं अकेला

मैं अकेला,
देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस की सान्धय बेला ।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला ।
जानता हूँ नदी-झरने,
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख,
कोई नही भेला ।

5.2.4 स्नेह-निर्झर बह गया है

स्नेह-निर्झर बह गया है

रेत ज्यों तन रह गया है ।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है- 'अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी नहीं जिसका अर्थ-
जीवन दह गया है ।'
दिये हैं मैंने जगत् को फूल-फल,
किया है अपनी प्रतिभा से चकित-चल, पर अनश्वर था सकल पल्लविल पल-
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है ।
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को, निरुपमा ।
वह रही है हृदय पर केवल अमा
मैं अलक्षित हूँ यही
कवि कह गया है ।

5.2.5 सन्ध्या सुन्दरी

दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,-
किन्तु गम्भीर-नहीं है उनमें हास-विलास ।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक ।
अलसता कीं-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली ।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
नुपुरों में भी रुन-झुन रुन-झुन रुन-शुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं-
व्योममण्डल में - जगती-तल में-
सोती शान्त सरोवर पर उस अमर कमलिनी-दल में-

सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में-
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में-
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में-
क्षिति में-जल में-नभ में-अनिल-अनल में-
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं,-
और क्या है? कुछ नहीं ।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला वह एक पिलाती
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने ।
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।

5.3 प्रसंग सहित व्याख्या

5.3.1 कविता परिचय (जुही की कली)

'जुही की कली' निराला की श्रेष्ठ रचना है । इसके रचनाकाल को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है । सामान्यत: यही माना जाता है कि इसका प्रथम प्रकाशन 'मतवाला' के अठारहवें अंक में सन् 1923 में हुआ था । डॉ. रामविलास शर्मा की भी यही मान्यता है । हाँ, कुछ समीक्षकों ने इसे निराला की प्रथम रचना माना है और कुछ की यही धारणा है कि यह कविता निराला ने अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद लिखी थी । श्री दुलारेलाल भार्गव का कथन है कि "निराला की प्रारम्भिक रचनाएँ तो सरस्वती के सम्पादक ने लौटा दी थीं, किन्तु हमने वे 'माधुरी' के प्रथम वर्षीय अंकों में ही छापी थीं । 'तुम और मैं' और 'जुही की कली' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं । हमें वे इतनी पसन्द आयीं कि हमने उन्हें 'माधुरी' के प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया था तब तक मतवाला का प्रकाशन आरम्भ नहीं हुआ था ।" श्री शालिग्राम उपाध्याय की मान्यता है कि 'जुही की कली' निराला की प्रारम्भिक और प्रौढ़ रचना है जिसे कई पत्रिकाओं से वापस आना पड़ा था । वह सर्वप्रथम 'अनामिका' (1923) में अन्य आठ कविताओं के साथ संगृहीत थी।" इस प्रकार स्पष्ट है कि निराला की इस रचना के सम्बन्ध में अनेक मत-मतान्तर हैं । वैसे यदि ध्यान से देखें तो यह मत कोई अर्थ नहीं रखता कि यह निराला की प्रथम रचना है । इसके प्रथम होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है । कारण ये हैं-

1. जुही की कली में पर्याप्त प्रौढ़ता और काव्यात्मकता है ।
2. यह प्रथम इसलिए भी नहीं हो सकती क्योंकि इसे कई स्थानों से संपादकों ने लौटा दिया था । यह प्रथम प्रकाशित रचना भी नहीं है ।

इस कविता के अन्तर्गत निराला ने पवन को नायक और जुही की कली को नायिका के रूप में चित्रित किया है । स्वयं निराला के कथनानुसार जुही की कली तथा पवन नायक का मिलन 'तमसोमाज्योतिर्गमय' की काव्य में मार्मिक प्रस्तुति है । कविता में जुही की कली का आद्यन्त मानवीकरण किया गया है और छायावादी कला-वैभव, कल्पना-वैभव और सौंदर्यबोध की मिली-जुली चित्रावली बनी इस कविता ने हिन्दी जगत् को पर्याप्त प्रभावित किया है ।

अवतरण1

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, पत्रांक में.
वासन्ती निशा थी,
विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल ।

शब्दार्थ- **विजन =** एकान्त, निर्जन । वन-वल्लरी = उपवन की लता । सुहाग- भरी = सौभाग्यवती । अमल = निर्मल अथवा धवल । वासन्ती' निशा = बसन्त की रात्रि । **विरह-विधुर न=** वियोग की अग्नि से विदग्ध । मलयानिल = दक्षिण में स्थित मलयगिरि से प्रवाहित होने वाली वायु ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यावतरण निराला की बहुचर्चित और प्रसिद्ध कविता जुही की कली का प्रारम्भिक अंश है । इसके अन्तर्गत कवि निराला ने जुही की कली की स्थिति, उस के सौंदर्य का वर्णन करते हुये मानवीकरण किया है ।

व्याख्या- कवि निराला कह् रहे हैं कि अर्द्धरात्रि की नीरवता एवं निस्तब्धता के मध्य निर्जन एकान्त वन की एक लता पर बिछे पलों की शैया पर जुही की कली प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थी । वह सौभाग्यवती सुन्दरी और कोमलवदना तरुणी की तरह पूर्ण यौवना कली भी अपने प्रिय के प्रेम में पगी और उसी की मधुर गुर प्रेम-क्रीड़ाओं तथा स्नेहिल प्रेमालापों से युक्त स्वप्न का आनन्द प्राप्त कर रही थी । इस गौरवर्णा जुही की कली रूपी तरुणी की देहलता कोमल थी । प्रियतम का स्मरण करती हुई वह अब तक थक चुकी थी और अन्त में शिथिल होकर गम्भीर निद्रा में निमग्न हो गयी थी । हाँ, प्रगाढ़ निद्रा के मध्य भी वह प्रिय को विस्मृत नहीं कर पाई थी । जाग्रत अवस्था की स्मृति एवं चिन्तना गहरी निद्रा के बीच भी स्वप्न बनकर सामने आ गयी थी । प्रिय के अभाव में उसका मुख अधखिला था और यही कारण है कि कवि ने उसे कली कहा है ।

प्रियतम से दूर परदेश में स्थित नायक मलयानिल भी अपनी प्रिथ का वियोग बड़ी कठिनाई से सह पा रहा था । ठीक भी है, एक तो बसन्त की निशा थी, चारों ओर मधुर मादकता छाई हुई थी, परिणामस्वरूप विरह का उद्दीपन रह-रहकर बढ़ता जा रहा था । जुही की कली बनी नायिका उसे याद कर-करके सो चुकी थी और
स्वप्न में भी उसी के क्रियाकलापों और उनसे जुड़ी अनुभूतियों को देख रही थी । इस प्रकार एक ओर घर पर बैठी हुई प्रवत्स्यतपतिका परदेश में स्थित प्रियतम को स्मरण कर रही थी और दूसरी ओर परदेश में स्थित प्रिय भी प्रिया द्वारा बार-बार याद किए जाने के कारण विरह से व्याकुल हो रहा था।

टिप्पणी- (1) इस पद्यांश में पवन और जुही की कली को क्रमश: नायक और नायिका के रूप में चित्रित करके निराला ने प्रकृतिपरक उपमानों के सहारे भौतिक जगत् में रंग-रूपों और मानवीय क्रिया-व्यापारों का सजीव चित्रांकन किया है ।

(2) इस अंश में 'अमल कोमल तनु तरुणी' तथा पवन को विरह-मधुर मलयानिल कहकर मानवीकरण का विधान किया गया है । यह शैली छायावादी कविता की रेखांकित करने योग्य विशेषता है ।

(3) पद्यांश में आये 'निशा और 'पत्रांक' शब्द विशेष रूप से हमारा ध्यान खींचते हैं । निस्सन्देह ये शब्द सार्थक भी हैं और साभिप्राय भी हैं । 'निशा' शब्द के प्रयोग से समूचा परिवेश सामने आ जाता है । इस शब्द के प्रयोग से आधी रात और रात्रि के तीसरे प्रहर के बीच का परिवेश साकार हो उठता है । निशाकाल बारह से तीन बजे तक ही होता है । इसी प्रकार 'पत्रांक' शब्द तरुणी नायिका जुही की कली की कोमलता और स्निग्धता को एक साधे सजीव बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत कर देता है । नायिका के शरीर में तरुणाई का विकास हो चुका है । पत्र के अंक में सोने वाली तरुणी की तरुणिमा, कोमलता और उसका लावण्य पत्रांक शब्द में सिमटकर आकर्षण पैदा कर रहा है ।

(4) 'विजन-वन-वल्लरी', 'अमल-कोमल,' 'मलयानिल, स्नेह-स्वप्न' आदि शब्द तत्सम तो हैं ही, समासनिष्ठ होते हुए भी प्रसंगानुकूल हैं ।

(5) 'सोती थी दृग बन्द किए', 'प्रिया संग छोड़' आदि के प्रयोग से नाटकीयता और गतिशील बिम्ब की सृष्टि हो गयी है ।

(6) इस अवतरण में वृत्यानुप्रास, मानवीकरण जैसे अलंकारों का सार्थक प्रयोग देखने को मिलता है ।

अवतरण 2

आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,

आयी याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या? पवन
उपवन-सर-सरित गहन गिरि-कानन
कंज-लता-पुंजों को पार कर पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ

शब्दार्थ -कान्ता = स्त्री । कम्पित = काँपती हुई । कमनीय = सुन्दर । गहन-गिरि-**कानन =** गहरे अथवा बीहड़ पवन अथवा वन । कुंज-लता-पुंज = वन वाटिका का लता-समूह । केलि = प्रेम-क्रीड़ा।

प्रसंग- निराला द्वारा रचित 'जुही की कली' कविता के इस द्वितीय अवतरण में स्नेह-स्वपनमग्न-अमल-कोमल-तनु-तरुणी नायिका जुही की कली के चित्रण के पश्चात् यही विरह-विधुर नायक जो दूर देश में स्थित है, की विह्वलता और प्रेमाकुलता का चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

व्याख्या- कवि निराला कह रहे हैं कि बसन्त की स्वच्छ निर्मल चन्द्रिका से युक्त मस्तीभरी रात्रि में नायक को प्रिया जुही की कली की स्मृति ने व्याकुल कर दिया । नायक पवन को अपनी प्रिया से बिछुड़ने पर उसकी स्मृति बार-बार व्यथित करने लगी। स्पष्ट शब्दों में बासन्ती निशा के सुन्दर वातावरण को देखकर नायक पवन को अपने संयोगकालीन विगत अभिसार-वेला की स्मृति हो आई । आसपास का परिवेश, मादक रात्रि उसे कामोद्दीप्त करने लगी । परिणामस्वरूप उसके नेत्रों के सामने क्रम-क्रम से अभिसार के सभी दृश्य साकार होने लगे । आज बिछुड़कर उसे मिलने की वे कभी न समाप्त होने वाली मधुर बातें भी याद आने लगी । चाँदनी से धुली श्वेत, कोमल, निर्मल और शीतल अर्द्धरात्रि की वेला पुन: उसके नेत्रों के सामने नाच उठी । उसे लगा कि जैसे गलबाँही डाले प्रेमी युगल के मधुर प्रेमालाप के दृश्य भी क्रमश: मूर्तित होते जा रहे है । इसी क्रम में स्मृति की कचोटने वाली स्थिति अनेक रंगीन और मादक चित्रों में उसके सामने आ खड़ी हुई । आलिंगन के निमित्त बढ़ाये हाथों के स्पर्श मात्र से प्रिया के शरीर में कम्पन प्रारम्भ हो गया था । कवि यह कहना चाहता है कि जिस प्रकार कोमल पवन के हल्के स्पर्श से कली और पुष्प-पत्र में कम्पन होता है, वैसा ही कम्पन स्मृति के क्षणों में भी होने लगा । विगत में हुए मिलन की वेला की मधुर बातें चाँदनी में नहाई हुई निर्मल रात्रि और कान्ता का काँपता हुआ शरीर आदि सभी उसे रोमांचित करने लगा । परिणामस्वरूप मलयानिल प्रिया से मिलने के लिए आतुर हो उठा । ऐसी स्थिति में नायक पवन भी अपने आपको संभाल नहीं सका । उपरिवर्णित सभी स्मृतियों ने एकत्र होकर प्रेमी पवन को अपनी प्रिया से मिलने को विवश कर दिया । तात्पर्य यह है कि पवन रूपी नायक अथवा प्रिय अपनी इस मिलनोत्कण्ठा को दबा नहीं पाया । परिणाम यह निकला कि आवेग की स्थिति में उद्विग्न और अधीर हो पवन रूपी नायक प्रिया जुही की कली से मिलने के लिए तीव्र गति से चल पड़ा । प्रिया-मिलन की तीव्र उत्कण्ठा और मन में उत्पन्न आवेग के कारण पवनरूपी नायक

को मार्ग के बाधा विणों का भी ध्यान नहीं रहा । उन्हें वह उपेक्षित करता हुआ भयंकर वेग से आगे बढ़ने लगा । मार्ग में कितने ही नदी-नाले, पहाड़, जंगल, खाई और काँटे भी आये, पर उसे इस प्रकार की बाधाओं की कोई चिन्ता नहीं थी । परिणामस्वरूप वह प्रवेग से उन सभी मार्ग की बाधाओं को लाँघता हुआ अपनी प्रेयसी कली के पास जा पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने प्रिया से केलि-क्रीड़ा की और प्रेयसी का प्लान मुख भी हर्ष से उल्लसित होता हुआ आनन्द से भर उठा ।

टिप्पणी- **(1)** इस अवतरण में निराला ने प्रेमी पवन की विरह-विदवल मनोदशा का अंकन मनोवैज्ञानिक शैली में किया है । एक प्रेमी की प्रतिक्रियाओं का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है ।

(2) उपवन सर-सरित, गहन गिरि कानन' जैसे प्रयोगों के माध्यम से प्रेमी हृदय में मिलने की आतुरता, विदवलता और मार्ग की बाधाओं की उपेक्षा करके मिलनोत्कण्ठा के कारण मात्र गति की तीव्रता को ही सूचित नहीं किया गया है, अपितु इस प्रकार के शब्द-विधान के सहारे निराला जी ने पाठक के समक्ष एक सजीव और स्पष्ट बिम्ब प्रस्तुत कर दिया है । ऐसे कम और सरल शब्दों का सहारा लेकर इतना सशक्त सजीव और भावपूर्ण बिम्ब निराला ही दे सकते थे ।

(3) जुही की कली प्राकृतिक सौंदर्य की कविता है । अत: इस अंश में भी चित्रित सभी क्रिया-व्यापार प्राकृतिक उपकरणों से जुड़े हुए हैं । वातावरण भी प्राकृतिक है । मानवीकरण शैली के प्रयोग द्वारा इस वर्णन को और अधिक स्पष्ट, गतिशील और मनोहर बनाने का प्रयास किया गया है । पवन नायक का प्रिया से मिलने के निमित्त दिव्य बाधाओं की चिन्ता न करते हुए पूरे प्रवेग से आगे बढ़ते जाना गतिशील चाक्षुष बिम्ब की सृष्टि कर रहा है । पूरे अंश में मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ हैं ।

अवतरण 3

जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह!
नायक के चूमे कपोल,
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल ।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही-.
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये,
कौन कहे
निर्दय उस नायक ने
निपट नितुराई की

कि झोंकों को झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज-पास,
नम्रमुख हँसी- खिली, खेल रंग प्यारे-संग ।

शब्दार्थ-हिंडोल = झूलना, हिलना । सुकुमार = कोमल । हेर = देखकर ।

प्रसंग- निराला द्वारा रचित जुही की कली कविता के इस तृतीय अवतरण में कामातुर नायक पवन नायिका के पास पहुँचता है ।

व्याख्या- निराला कह रहे हैं कि विरह-व्यथित एवं कामातुर अधीर नायक पवन मार्ग की समस्त कठिनाइयों को झेलता हुआ नायिका के पास पहुँच जाता है । कुछ क्षणों के निमित्त वह ठिठककर रह जाता है, क्योंकि नायिका तरुणी कली गहरी नींद में निमग्न थी । बहुत सम्भव है कि नायिका स्वप्न में प्रिय-मिलन के आनन्द का उपभोग कर रही थी । उसे इस बात का आभास था अथवा कहें कि अवगति थी कि स्वप्न में आने वाले प्रिय सचमुच ही उसके निकट शैया के पास आ पहुँचे हैं । एक ओर तो यह स्थिति थी और दूसरी ओर नायक के हृदय में मिलन का वेग तीव्रता से दौड़ रहा था । अत: नायक पवन को इस प्रकार निष्क्रिय और चुपचाप खड़े रहना न तो उचित लगा और न उसके लिए सम्भव ही था । ऐसी स्थिति में नायक पवन ने अधीर होकर अपनी तरुणी को जगाने का प्रयत्न किया । नीरवता में तनिक भी आहट न होने पाये, परिस्थिति की यह माँग थी अत: प्रिया को जगाने के लिए अधीर बने हुए नायक ने उसके कोमल, गोल और गोरे कपोलों को चूम लिया । इस चुम्बन से लता भी इतनी स्पन्दित हुई कि वह झूले की भाँति झूल उठी, किन्तु प्रगाढ़ निद्रा में मग्न प्रियतमा कली पर इस चुम्बन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वह यथावत सोयी रही । अपने विशाल बंकिम नेत्रों को बन्द कर नायिका चुपचाप पड़ी रही । कवि ने कल्पना की है कि स्त्री के लिए यह धृष्टता की ही बात है कि प्रियतम विदेश की यात्रा की विविध कठिनाइयों को सहकर थका-हारा प्रिया के पास पहुँचा हो, किन्तु वह उसके स्वागत के लिए तत्पर न हो, अपनी मुस्कान के द्वारा उसकी थकान उतारने के स्थान पर निद्रा के आनन्द में निमग्न रहे । वस्तुत: यह कैसी प्रगाढ़ निद्रा है कि हल्के से मीठे चुम्बन और स्पर्श का उसके शरीर पर कोई स्पन्दन नहीं हुआ । ऐसा प्रतीत होता था कि यौवन की मादक मदिरा का पान कर नायिका मदहोशी की स्थिति में सोयी हुई थी । संकेत यह है कि यौवन रूपी मदिरा को नायिका ने इतना अधिक पी लिया था कि उसे आसपास के परिवेश की तनिक भी सुध-बुध नहीं रही । परिणामस्वरूप वह भी अपने विशाल बंकिम नेत्रों की पलकों को मूँदकर प्रगाढ़ निद्रा में पड़ी रही ।

निराला कह रहे हैं कि इस प्रकार के किंचित् प्रयासों के पश्चात् जब नायिका की आँखें नहीं खुलीं और वह प्रिय पवन के स्वागतार्थ सजग नहीं हुई तो अधीर और कामातुर नायक ने आवेश में आकर उसके कोमल तन की कोमलता की बिना चिन्ता किए एक निर्मम प्रिय की भाँति निर्दयतापूर्वक उस सुरम्य, कोमलांगी सुकुमारी के कोमल शरीर को झकझोर डाला । इतना ही नही, उसने आवेश में आकर गौरवर्ण स्निग्ध कपोलों को भी मसल दिया । जब नायक ने आवेशमग्न होकर यह क्रिया की, तब नायिका अचानक चौंक पड़ी । उसने चकित होकर अपने चतुर्दिक देखा, अपनी दृष्टि को घुमाया और फिर चिरप्रतीक्षित अपने प्रिय को समीप पाकर वह रोमांचित और पुलकित हो उठी । उसने अपने मुख को नीचे झुका लिया और प्रियतम के अधिक समीप आ गयी । इतना ही नहीं, वह अपने प्रिय के साथ एकात्म होकर एकदेह हो गयी ।

टिप्पणी- (1) कविता के इस अंश में ''निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँद रही'' से प्रगाढ़ निद्रामग्न तरुणी का बिम्ब बड़ा स्पष्ट और जीवन्त हो उठा है। 'यौवन की मदिरा पिये' से इसमें अर्थ की व्यंजकता प्रभावात्मकता एवं चारुता. और अधिक बढ़ गयी है ।

(2) कवितांश में वल्लरी, निरालस बंकिम और विशाल आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रसंग और भाव के अनुरूप हुआ है । कवितांश के अन्तिम भाग में देशज और स्थानीय शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । निठुर और देह ऐसे ही शब्द हैं ।

(3) कवितांश के अन्तिम भाग में नायक को निपट निष्ठुर कहकर निराला ने एक प्रकार से सुकुमारी तरुणी के प्रति अपनी सदाशयता व्यक्त की है ।

(4) अन्तिम पंक्तियों में मानव-आवेग के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक निरीक्षण का परिचय मिलता है । आवेग और उत्तेजना के चरम क्षणों में नायक का निष्ठुर हो जाना सहज स्वाभाविक तो है ही, मनोवैज्ञानिक भी है ।

5.3.2 कविता परिचय ((प्रिय) यामिनी जागी)

(प्रिय) यामिनी जागी' कविता की रचना सन् 1927 में हुई थी । इस कविता में यामिनी के रूप में सद्य:जाग्रत नायिका के सौंदर्य का वर्णन किया गया है । कविता में एक लज्जाशीला नायिका की मनोवैज्ञानिक भाव-भंगिमाओं का गतिशील बिम्ब है । इसमें नारी के गार्हस्थ्य जीवन के प्राकृतिक सौंदर्य का आलेखन भी है । 'यामिनी जागी' श्रृंगार का एक निवैयक्तिक रूप प्रस्तुत करने वाली कविता है । इसमें सौंदर्य की चेतना मन की बाहय और आभ्यन्तर सत्ता को ग्रहण करती है और इसमें वासना की गंध तक नहीं है । नारी का यह मानवीकृत चित्र प्रकृति के आरोपण से बड़े सजीव बिम्ब के द्वारा उभरकर पाठकों के सामने आया है । सम्पूर्ण कविता एक भावाकुल बिम्ब को प्रस्तुत करती है । नायिका की छोटी से छोटी मुद्रा भी इस बिम्ब में छूटी नहीं है ।

अवतरण 1

(प्रिय) यामिनी जागी ।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख
तरुण-अनुरागी ।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित-
धुति ने क्षमा माँगी ।
हेर उर-पट फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय-नेह की जय-माल
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी ।

शब्दार्थ-यामिनी = रात्रि । अलस = अलसाये । पंकज = कमल । अरुण = सूर्य । तरुण-अनुरागी = तरुण प्रियतम में अनुरक्त । अशेष = सम्पूर्ण । पृष्ठ = ग्रीवा । बाहु-उर = पीठ, गर्दन और भुजा व हृदय । तन्वी =कृशांगी । तड़ित द्युति = बिजली की चमक ।

प्रसंग- निराला द्वारा रचित '(प्रिय) यामिनी जागी' एक लघु आकार वाली कविता है । इस कविता में निराला ने प्रिय के साथ रात्रि भर जागरण करने वाली नायिका का सुन्दर, सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । यह सजीव चित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पूरी कविता में एक ऐसा बिम्ब है जो चाक्षुष होने के साथ - साथ गतिशील और नायिका की विविध भंगिमाओं को चित्रित करने में निराला की प्रतिभा का परिचायक है ।

व्याख्या- कवि निराला प्रारम्भिक पंक्तियों में चित्रित कर रहे हैं कि प्रिय के साथ रात्रिभर जागरण करने वाली नायिका न केवल आकर्षक है, अपितु अपनी भाव-भंगिमाओं से सभी के मन को आनन्दित करने वाली भी है । प्रातःकाल होने पर जब प्रिया और प्रियतम अलग होते हैं, उस समय की रूप और भाव योजना को चित्रित करते हुए निराला ने कहा है कि प्रिय यामिनी जाग गयी है । उसके नेत्र अलसाये हुए हैं । वे अर्द्ध विकसित कमल के सदृश हैं जो सूर्य की उज्ज्वल आभा से युक्त अपने तरुण प्रियतम में अनुरक्त हैं । प्रिया शैया से उठते ही बड़ी अनुरागमयी प्रतीत हो रही है । प्रिया के केश खुले हुए हैं किन्तु इन खुले हुए केशों में अप्रतिम शोभा समाई हुई है। खुले हुए केश नायिका की पीठ, ग्रीवा, बाहु और वक्षस्थल पर बिखरे हुए हैं । केशराशि से घिरा हुआ नायिका का मुख ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे बादलों ने सूर्य को घेर लिया हो । वह गौरवर्णी तन्वंगी नायिका अपनी चंचलता में विद्युत-द्युति के समान है । भाव यह है कि नायिका ने मुस्कराते हुए प्रिये से क्षमा माँगी है । क्षमा

माँगना विदाई लेने का औपचारिक कृत्य है । नायिका वक्षस्थल पर पड़े हुए अंचल को संभालकर मुख पर के बालों को पीठ की ओर समेटकर चारों ओर दृष्टि डालकर मन्द गति से चल पड़ी है । दैनिक गृह-चर्या में सद्यःप्रवेश करने वाली इस पतिप्राणा प्रेयसी ने प्रिय के स्नेह की जयमाला पहन ली है । अब वह प्रेयसी गृहकार्य में संलग्न होते ही रात्रि की श्रृंगारिक चर्चा से एकदम मुक्त है । भाव यह है कि रात्रि में जो आनन्द प्राप्त हुआ, अब वह उससे मुक्ता होकर गृहकार्यों में संलग्न हो गयी है । निराला ने स्पष्ट लिखा है कि गृहिणी और प्रिया - इस समन्वित उज्ज्वल रूप की अभिव्यक्ति है, जो त्याग के स्वर्णिम सूत्र में पिरोयी हुई है ।

टिप्पणी- (1) इस कविता में प्रत्येक संवेदनशील और सहृदय पाठक को रात्रि जागरण करने वाली नायिका के स्वरूप की स्थिति तो देखने को मिलती ही है, कमल तथा सूर्य के उपमानों द्वारा नायिका के - सहज प्राकृतिक सौंदर्य का आभास भी दे दिया गया है ।

(2) 'खुले केश' में नायिका की स्वाभाविक स्थिति का चित्रण हुआ है । 'जयमाला' शब्द नारी के विजय-गर्व और अटूट स्नेह का सूचक है ।

(3) अन्तिम पंक्तियों में भारतीय गृहिणी के उस स्वाभाविक स्वरूप का वर्णन हुआ है जब वह परिवार के अन्य लोगों को अपनी श्रृंगारिक स्थिति से अवगत नहीं होने देती है ।

(4) 'वासना की मुक्ति' शब्द दार्शनिक आदर्शों के साथ पारिवारिक आदर्शों की भी अभिव्यक्ति कर रहा है । यहाँ श्रृंगारिक चित्र को कविता के अन्त में शांत रस में परिणत कर दिया गया है ।

(5) 'तड़ित द्युति' के समान 'प्रिय स्नेह की जयमाल' में उपमा की नवीनता द्रष्टव्य है और नारी को जयमाल का एक रूपक देकर पाठकों के मन में मार्मिक संवेदना जगायी गयी है । 'अलस मुख' में रूपक है और तन्वी-तड़ित में अनुप्रास का सौंदर्य देखते ही बनता है । 'त्याग में तागी' में विरोधाभास का सौंदर्य भी द्रष्टव्य है ।

5.3.3 कविता परिचय (मैं अकेला)

निराला द्वारा रचित 'मैं अकेला कविता का रचनाकाल सन् 1940 है । जिस समय इस कविता का सृजन हुआ, उस समय निराला अपने जीवन के लगभग 44 वर्ष पार कर चुके थे । निरन्तर संघर्षमय जीवन जीने के कारण उनके मन में जीवन और जगत के प्रति जो विचार निर्मित हुए थे, उनका प्रभाव इस कविता में देखा जा सकता है । विभिन्न प्रकार की विपत्तियों, बाधाओं और संघर्षो से जूझता हुआ कवि का अपराजेय व्यक्तित्व कविता में स्पष्ट झलकता दिखाई देता है । इस कविता में अवसाद और निराशा का कोई स्वर नहीं है, अपितु जीवन-संग्राम में जीते हुए उन क्षेत्रों और संदर्भो की स्मृति के साथ एक आश्वस्ति और प्रसन्नता का भाव है । ऐसा इसलिए है कि

निराला उन सभी स्थितियों को पार करके निरन्तर आगे बढ़ते रहे । एक प्रकार से जीवन में संघर्ष समाप्त हो चुका हैं और मानसिक अवसाद की कोई हल्की-सी छाया यदि कोई है, तो वह मात्र इस बात को लेकर है कि अब जीवन का साध्यकाल आ रहा है । इस हल्की छाया के बावजूद निराला न तो हताश हैं, न निराश हैं, अपितु जीवन्त बने हुए हैं ।

अवतरण 1

मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सांध्य बेला ।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला ।
जानता हूँ नदी-झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूँ हँस रहा यह देख,
कोई नहीं भेला ।

शब्दार्थ- सांध्य वेला = जीवन का अन्तिम समय, वृद्धावस्था । निष्प्रभ = प्रभावहीन, चमकहीन ज्योति रहित । मेला = जीवन के प्रति आकर्षण, जगत के प्रति आकर्षण । भेला= नाव, नौका ।

प्रसंग- निराला की यह लघु आकार वाली कविता 'मैं अकेला' अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यह वह कविता है जिसमें निराला ने अपने जीवन-संघर्ष के प्रति अपनी भावनाओं को शब्दबद्ध किया है । अनेक प्रकार के संघर्षो, निराशाजनक स्थितियों और द्वन्द्वों को पार करके निराला अब एक आश्वस्ति की मुद्रा में हैं, किन्तु साथ ही अपने को अकेला भी अनुभव कर रहे हैं । निराला कह रहे हैं कि अब इस जीवन में - इस संसार में मैं अकेला रह गया हूँ । एक प्रकार से जीवन के अन्तिम छोर पर पहुँच गया हूँ । जीवन का अन्तिम समय वृद्धावस्था का सूचक हैं ।

व्याख्या- निराला अपने को अकेला अनुभव करते हुए इस जीवन की सांध्यवेला का अनुभव कर रहे हैं । अपनी इसी भावना से प्रेरित होकर वे कह रहे हैं कि अब तो मेरे आधे बाल भी पक गये हैं । अब तक कपोलों में जो लालिमा और आभा दिखाई देती थी, वह भी अब शेष नहीं रह गयी है । स्वाभाविक है कि जीवन जब यौवन के सीमान्त को पार करके वृद्धावस्था की ओर बढ़ने लगता है, तब कपोलों की आभा और चेहरे की दीप्ति क्षीण से क्षीणतर होती जाती है । इतना ही नहीं, गति में भी मन्दता आ जाती है । निराला भी अपनी गति की मन्दता को अनुभव कर रहे हैं । एक प्रकार से स्पष्ट शब्दों में वे कह रहे हैं कि गति के मन्द पड़ जाने और कपोलों की आभा के

क्षीण पड़ जाने से अब पूर्व की भाँति संघर्ष करने की क्षमता भी नहीं रही है । ऐसी स्थिति में संसार और जीवन के प्रति मेरा अब आकर्षण नहीं रह गया है । अब तक मेरे प्रति जिन लोगों का आकर्षण था, अब वह भी दूर होता जा रहा है । कवि अन्त में कह रहा है कि जो कुछ नदी, निर्झर उसे पार करने थे, उन सभी को वह पार कर चुका है । अभिप्राय यह है कि अपने जीवन और जगत् के समस्त संघर्षो को पार करके निराला एक प्रकार से अकेला अनुभव करते हुए भी हँस रहे हैं । उन्हें हँसी इसलिए नहीं आ रही है कि वे दुखी हैं, अपितु अब तक जो कुछ जीवन में घटित हुआ, वह एक तमाशा मात्र था, सांसारिक संघर्ष-क्रम था, इसलिए वे हँस रहे हैं कि अब तो उनके पास कोई नौका भी नहीं है । नौका के सहारे जीवन-सागर को पार किया जा सकता है, किन्तु जब नौका ही न रहे, अर्थात् कोई साधन ही न रहे तो किस बलबूते पर जीवन को पार किया जा सकता है । संकेत यह है कि अब तक तो उन्होंने अपनी शक्ति, जिजीविषा और संघर्ष करने की प्रवृत्ति के बल पर जीवन को बिताया, किन्तु अब वैसी क्षमता भी शेष नहीं रह गयी है ।

टिप्पणी - (1) इस कविता में अवस्था के अनुसार निराला ने अपने जीवन की वास्तविक अनुभूति का चित्र प्रस्तुत किया है।

(2) समूची कविता में कवि निराला ने अपने पुरुषार्थ और संघर्षशील व्यक्तित्व की ओर भी स्पष्ट संकेत कर दिया है । अपराजेय व्यक्तित्व के धनी निराला जीवन के अन्तिम सोपान की ओर बढ़ते हुए यदि अकेलेपन का अनुभव कर रहे हैं तो यह एक सहज स्वाभाविक स्थिति का परिणाम है।

(3) कविता की भाषा सहज, सरल और व्यावहारिक है । उसमें एक प्रवाह है जो कवि की मनोदशा को न केवल संकेतित करता है, अपितु उसका यथार्थ और विश्वसनीय बिम्ब भी प्रस्तुत कर देता है ।

5.3.4. कविता परिचय (स्नेह निर्झर बह गया है)

'स्नेह निर्झर बह गया है' कविता सन् 1942 की रचना है । इस कविता में निराला ने आम की डाली के माध्यम से जीवन और यौवन की नश्वरता की ओर संकेत किया है । उन्होंने अपने उपेक्षित और निराश जीवन का चित्र भी प्रस्तुत किया है । एक प्रकार से कवि के जीवन की सच्ची अनुभूति ही यहाँ सही रूप में मुखरित हुई है । निराला एक ओर तो 'अभी न होगा मेरा अन्त' लिखकर अपनी आस्था भावना को व्यक्त करते हैं, वहीं जीवन की नश्वरता, असारता और रिक्तता की ओर भी संकेत करते हैं । इस प्रकार के विपरीत कथनों को देखकर हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि कवि के कथनों में विरोधाभास है, बल्कि यह मानना चाहिए कि यह जीवन की एक सहज अनुभूति है, सहज स्थिति है और एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके अनुसार कवि विषाद, निराशा और धीरे-धीरे नष्ट होती हुई या क्षरित होती हुई जिन्दगी के यथार्थ को सही रूप में

प्रस्तुत करता है। ऐसा तो सम्भव ही नहीं है कि मानव-जीवन सदैव बना रहे, उसमें विषाद और वेदना के साथ-साथ रिक्तता की अनुभूति का आना भी स्वाभाविक है। यही कारण है कि 'स्नेह निर्झर बह गया है' जैसी कविता का सृजन हुआ है।

अवतरण 1

स्नेह-निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है - 'अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ-
जीवन दह गया है।'
दिये हैं मैंने जगत को फूल-फल.
किया है अपनी प्रतिभा से चकित-चल,
पर अनश्वर था सकल पल्लविल पल-
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है ।
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को, निरुपमा।
वह रही है हृदय पर केवल अमा,
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

शब्दार्थ- स्नेह निर्झर = प्रेम का झरना । पिक = कोयल । शिखी = मोर । दह गया है = जल गया है। प्रभा = प्रकाश । चल = चलायमान संसार । अनश्वर = नाश रहित । पुलिन = किनारा । निरुपमा = अप्रतिम सुन्दरी । अमा = अँधेरी रात्रि । अलक्षित = उपेक्षित या जो दिखाई न दे।

प्रसंग- 'स्नेह निर्झर बह गया है' शीर्षक इस कविता के अन्तर्गत कवि निराला एक ओर तो जीवन की नश्वरता और असारता को चित्रित कर रहे हैं और दूसरी ओर अपने मन की निराशा को अभिव्यक्त कर रहे हैं ।

व्याख्या- जीवन की नश्वरता को स्पष्ट करता हुआ कवि कहता है कि एक समय था, जबकि मेरे यौवनकाल में मेरे जीवन में स्नेह का झरना प्रवाहित था । अब वह समय बीत गया है अत: झरने के प्रवाह का कोई भी चिह्न शेष नहीं बचा है । जल के बह जाने पर जैसे मिट्टी अथवा सूखी रेत शेष रह जाती है, वैसे ही शरीर के पानी अर्थात् शक्ति के वह जाने के कारण मेरा शरीर सूखे रेत की तरह शेष रह गया है। कवि कहता है कि मेरे शुष्क जीवन रूपी आम्र वृक्ष की सूखी डाली मुझसे कह रही है कि बसन्त के दिन बीत जाने के कारण अब मेरे शरीर-वृक्ष पर कोयल और बसन्त आकर

मधुर राग का आलाप नहीं करते हैं फलत: मेरा जीवन काव्य की उस अर्थहीन पंक्ति की तरह हो गया है जो न तो अपना औचित्य और अर्थ ही प्रमाणित कर पाती है और न अपनी ओर किसी का ध्यान ही आकर्षित करने में समर्थ हो पाती है। वास्तव में, अब तो इस जीवन का सुख-सौंदर्य जलकर राख होता जा रहा है ।

कवि कहता है कि मेरे जीवन रूपी आम्र वृक्ष की डाल जैसे कह रही है कि मैंने आज तक तुम्हें विविध प्रकार के फल-फूल अर्पित किए हैं, किन्तु अब देने को कुछ भी नहीं बचा है । आज तक मैंने अपनी हरीतिमा और फल व रस की सरसता से समस्त संसार को चकित बनाया था, परन्तु मेरे शरीर-वृक्ष के विकास के सारे संदर्भ नश्वर निकले । भाव यह है कि संसार में सब कुछ नश्वर है-शरीर, यौवन और समग्र प्रकृति वैभव । कुछ भी अजर अमर नहीं है । अन्तत: कवि कहता है कि अब तो जीवन का वह सारा वैभव ही नष्ट हो गया है, जो कभी था और अपनी सुषमा से सबको आकर्षित करता रहता था । कवितान्त में कवि यह अनुभव कर रहा है कि अब कहीं भी सरसता शेष नहीं रह गयी है । यही कारण है कि आम की यह सूखी डाली भी कह रही है कि अब मेरे किनारे या नीचे उगी हुई घास पर या बिछी हुई पत्तियों पर बैठने और प्रेमालाप करने के लिए कोई अप्रतिम सुन्दरी भी नहीं आती है । अब समय बीत जाने पर जैसे समस्त आनन्द और उल्लास समाप्त हो गया है । मेरे शेष जीवन में केवल गहनतम अंधकार अँधेरी रात के समान ही बह रहा है। जीवन में कोई उत्साह और सरसता का प्रकाश अब शेष नहीं रह गया है। इसी भाव से प्रेरित होकर कवि ऐसे ही स्वर में कह रहा है कि मैं भी अब इस संसार में उपेक्षित-सा हो गया हूँ । तात्पर्य यह है कि मेरे हृदय पर अमावस्या का-सा अंधकार व्याप्त हो गया है। इस अंधकार में मैं अलक्षित हूँ, कहीं मेरा अस्तित्व दिखाई नहीं दे रहा है । निराशा के सघनतम क्षणों में कवि की यह अनुभूति उसकी हताशा की धोतक न होकर जीवन के सीमान्त पर पहुँचकर एक सहज स्वाभाविक स्थिति का ही निदर्शन है ।

टिप्पणी- (1) प्रस्तुत कविता में उपमा का सार्थक प्रयोग किया गया है, वर्णन में सजीवता है और यथार्थ जनित करुणा भावना का प्रसार है।

(2) समस्त वर्णन प्रतीकात्मक है। 'स्नेह निर्झर बह गया है', 'पंक्ति मैं वह हूँ लिखी नहीं जिसका अर्थ' आदि उपमान मौलिक होने के साथ-साथ प्रसंग-सापेक्ष और भावानुमोदित है। इनमें एक ऐसी करुणा का प्रवाह है जो पाठकों के मन प्राण को भिगो देता है ।

5.3.5 कविता परिचय (सन्ध्या सुन्दरी)

'सच्चा सुन्दरी' निराला की सन् 1921 में सृजित प्रसिद्ध कविता है । मुक्त छंद में रचित इस कविता में निराला ने प्रकृति का मानवीकरण करके संध्या का बिम्ब प्रस्तुत किया है। उन्होंने संध्या की तुलना एक यौवन-सम्पन्ना सुन्दर युवती से की है जो चुपके-चुपके कदम बढ़ाती हुई धरती पर आ रही है। जिस प्रकार सांध्यवेला में चतुर्दिक

शांत वातावरण होता है, पक्षियों का कलरव बन्द हो जाता है उसी प्रकार निराला की यह संध्या-सुन्दरी मौन रहकर थके हुए जीवों को अपने अंक में विश्राम देने के लिए धरती पर उतर रही है। साद्रश्योपमा के रूप में कविता कवि की अदभूत सूझबूझ का प्रमाण है। वास्तव में संध्या-सुन्दरी जो मेघमय असमान से परी के समान उतर रही है, का मानवीकृत रूप कविता को विशिष्टता प्रदान कर रहा है।

अवतरण 1

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,- किन्तु गम्भीर-नहीं है उनमें हास-विलास ।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक ।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली ।

शब्दार्थ- दिवसावसान = दिन ढलने का समय, संध्या । मेघमय आसमान = बादलों से भरा आकाश । संध्या-सुन्दरी = सुन्दरी युवती संध्या । तिमिरांचल = अन्धकार के दामन में । हास विलास = हँसी । तारा = आकाश में संध्या के समय चमकने वाला एक तारा, बालों के बीच चमकने वाला मोती । अलसता = आलस्य । नीरवता = शांति, खामोशी । अम्बर-पथ = आकाश मार्ग पर ।

प्रसंग- 'संध्या सुन्दरी' निराला की बहुचर्चित और छायावादी सौंदर्य और शिल्प से अभिषिक्त कविता है । इस अवतरण में निराला ने संध्या-सुन्दरी का मानवीकरण करते हुए उसके धरती पर धीरे-धीरे उतरने का भावोपम चित्र प्रस्तुत किया है । इस चित्रण में स्वाभाविकता के साथ-साथ एक ऐसी विशिष्टता भी है जो किसी सुन्दरी नायिका की गति और स्थिति को निरुपित करती है।

व्याख्या- कवि निराला प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कह रहे हैं कि संध्या हो गयी है, आकाश बादलों से भरा हुआ है। चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार फैलता जा रहा है। वातावरण मौन-शांत है और चंचलता अर्थात् दिन का कोलाहल समाप्त हो गया है। कवि इस वातावरण का आरोपण एक नायिका के रूप में करता है। संध्या एक सुन्दरी परी के समान धीरे-धीरे बादलों से भरे आकाश से नीचे उतर रही है, पर उसमें अन्य स्त्रियों की तरह चंचलता नहीं है। उसका आँचल जो अंधकार की तरह काला है, स्थिर है, उसमें

कोई फरफराहट नहीं है । उसके अधर यौवन के उन्माद से भरे होने के कारण मधुर हैं, पर हैं जरा गम्भीर और उनमें हँसी भी दिखाई नहीं दे रही है। कवि निराला कहते हैं कि यह संध्या-सुन्दरी जो आकाश से चुपचाप नीचे उतर रही है, उसके इर्द-गिर्द सन्नाटा-सा छाया हुआ है । चारों ओर अन्धकार छा गया है, उसमें दूर केवल एक तारा टिमटिमा रहा है जो इसका अभिषेक करता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार इस सुन्दरी युवती के काले-काले घुँघराले बालों में एक मोती तारे की तरह -चमक रहा है जो उस हृदय-राज्य की रानी का अभिषेक-सा कर रहा है। यौवन के भार से लदी हुई संध्या रूपी नायिका बार-बार अँगड़ाई लेकर आलस्य प्रकट कर रही है, लेकिन साथ ही बहुत कोमल भी है। वह अपनी सहेली नीरवता के साथ छाया के समान आकाश मार्ग से जा रही है।

टिप्पणी- (1) अवतरण के अन्तर्गत प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। संध्या के मानवीकरण द्वारा निराला ने अदभूत, सार्थक और एक विशिष्ट कल्पना की है ।

(2) इस अवतरण में संध्या-सुन्दरी को परी-सी बतलाकर, अलसता की-सी लता और छाँह-सी जैसे प्रयोगों द्वारा उपमा अलंकार का सार्थक प्रयोग किया गया है। 'काले-काले' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है और अनुप्रास की छटा तो देखते ही बनती है।

(3) अवतरण में प्रयुक्त शब्द-विधान गत्यात्मक बिम्ब की दृष्टि से आकर्षक और जीवन्त बन पड़ा है। 'छाँह-सी अम्बर-पथ से चलीं' पंक्ति में कवि की मनोहर कल्पना और अद्भुत सूझबूझ का प्रमाण मिलता है । नीरवता को संध्या की सखी बतलाकर निराला ने वातावरण में सजीवता भर दी है । सम्पूर्ण अवतरण कवि के कल्पना-सौंदर्य और भावुक मन का जीवन्त निदर्शन है।

अवतरण 2

नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
खरों में भी रुन-शुन रुन-शुन रुन-शुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं-
व्योममण्डल में - जगती-तल में-
सोती शान्त सरोवर पर उस अमर कमलिनी-दल में-
सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल मे-
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल मे-
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में-
क्षिति में-जल में-नभ में-अनिल-अनल में-

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं,-
और क्या है? कुछ नहीं।

शब्दार्थ- अनुराग-राग-अलाप = आनन्द में मस्त करे देने वाला शब्द । व्योम-मण्डल = आकाश । जगती-तल = धरती । अमल = मलहीन, साफ । उलाल-तरंगाघात = ऊँची-ऊँची तरंगों वाला । क्षिति = पृथ्वी । अनिल = वायु । अनल = आग । अव्यक्त = न सुनाई देने वाला ।

प्रसंग- कवि निराला इस अवतरण में संध्या के समय के चारों ओर के वातावरण का चित्र प्रस्तुत करते हुए सुन्दरी नायिका के अभिसार के निमित्त जाते समय के वातावरण का बिम्ब प्रस्तुत कर रहे हैं । इस चित्रण में इतनी अधिक सजीवता है कि समूचा अवतरण एक आकर्षक वातावरण बिम्ब का उदाहरण बन गया है ।

व्याख्या- कवि निराला कह रहे हैं कि संध्या के समय वीणा के स्वर मन्द पड़ जाते हैं इसलिए संध्या-नायिका के हाथ में वीणा भी झंकृत नहीं हो रही है । सामान्यत: नायिका के हाथ से जब वीणा झंकृत होती है, तब उससे निःसृत होने वाले स्वरों में अनुराग और प्रेम की गंध होती है, किन्तु संध्या-नायिका के हाथ में वीणा भी नहीं झंकार कर रही है। उसके स्वरों से अनुरागमय आलाप भी नहीं निकल रहा है। चारों ओर सन्नाटा व्याप्त है और एक अव्यक्त शब्द "चुप-चुप-चुप" चतुर्दिक गूँज रहा है । यह गेज न केवल नायिका के आसपास है, अपितु समूचे वातावरण में व्याप्त है। यह सन्नाटा आकाश में, धरती में और समूचे वातावरण में गूँजता-सा लग रहा है। संध्या के समय यों भी सम्पूर्ण वातावरण शांत हो जाता है। सरोवर भी शांत है और उसके ऊपर विकसित कमलिनी भी शांत मुद्रा में सोयी हुई है। इतना ही नहीं, सौंदर्य के भार से उफनती नदी का विशाल जल से भरा सपाट वक्षस्थल भी इस समय शांत दिखलाई दे रहा है। बर्फ से आच्छादित रहने वाला हिमगिरि भी मौन योगी की भाँति तपस्यालीन है और उत्ताल तरंगों वाला प्रलय सदृश्य गर्जना करने वाला सागर भी इस समय सन्नाटे के इस वातावरण को और भी मुखरित कर रहा है। भाव यह है कि समूचे परिवेश में, सम्पूर्ण वातावरण में, प्रकृति के अंग-अंग में शांति व्याप्त है, सर्वत्र सन्नाटा है । जल, आकाश, वायु, अग्नि और धरित्री पर चारों ओर यही सन्नाटा पूरी तरह छा गया है और एक अव्यक्त ध्वनि चुप-चुप की चारों ओर भर्राती हुई गूँज रही है। यही एक ध्वनि है और इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लगता है जैसे सब कुछ शांति के अपार सागर में निमग्न हो गया है।

टिप्पणी- (1) इस अवतरण में निराला ने स्तब्ध वातावरण का बड़ा सशक्त और प्रभावी बिम्ब प्रस्तुत किया है। इसे हम वातावरण की शांति का विराट बिम्ब कह सकते हैं। संध्या के समय जब रात्रि घिरने लगती है, तब वातावरण का समूचा कोलाहल स्वयं ही शांत हो जाता है । उसी की ओर कवि ने अपनी कल्पना-प्रतिभा से यह बिम्ब प्रस्तुत किया है ।

(2) इस अवतरण में अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश जैसे अलंकारों का ही प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण अवतरण एक ऐसे भावमय संश्लिष्ट बिम्ब की प्रतीति कराता है जो निराला जैसे प्रतिभा-पुत्र के कौशल का ही परिणाम कहा जा सकता है ।

(3) सम्पूर्ण अवतरण में छायावादी सौंदर्यबोध, भाषा की विशिष्टता, शैली की प्रवाहशीलता और बिम्ब की संश्लिष्टता विधमान है।

अवतरण 3

मदिरा की वह नदी बहाती आती
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला वह एक पिलाती
सुलाती उन्हें अंक पर अपने
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने ।
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।

शब्दार्थ- मदिरा = शराब । अंक = गोद । अर्द्धरात्रि = आधी रात । निश्चलता= खामोशी । विरहाकुल कमनीय कण्ठ = विरह से भरा पर कोमल कण्ठ । विहाग = सवेरा ।

प्रसंग- संध्या सुन्दरी कविता के इस अवतरण से पूर्व तक कवि निराला संध्या का वर्णन कर रहे थे और संध्या के समय के वातावरण को बिम्बित कर रहे थे, किन्तु यहाँ आकर संध्या का वर्णन रात्रि की ओर बढ़ गया है। एक प्रकार से इन पंक्तियों में कवि का अगर भाव भी चित्रित हुआ है और संध्या-सुन्दरी की स्थिति का निरूपण भी किया गया है ।

व्याख्या- कवि निराला कह रहे हैं कि मौन मार्ग से चलकर आती हुई संध्या या सुन्दरी रूपी नायिका वासना से आवृत्त नहीं है, फिर भी उसकी मस्ती उसके अंगों से छलक रही है। ऐसा लगता है कि मस्ती शराब की एक सरिता के समान बहती हुई आ रही है जो थके हुए प्राणों को मदिरा का एक प्याला पिलाकर अपने अंक में सुला लेती है। कवि का संकेत यह है कि संध्या के समय थके-हारे मनुष्य जब अपने घर को लौटते हैं, तब वे एक ऐसी थकानभरी खुमारी से भी युक्त होते हैं कि शीघ्र ही वे रात्रि की गोद में सो जाना चाहते हैं । इसी भाव को व्यक्त करने के लिए निराला ने शराब की नदी जैसा प्रयोग किया है। यह भी संकेत यहाँ है कि लोग शराब की मस्ती में भर उठते हैं और अपनी प्रेयसी के अंक में खिलवाड़ करते हुए सोकर अपनी थकान मिटाते हैं, अपनी क्लान्ति को दूर करते हैं । निराला ने बड़ी शालीनता से यह संकेत भी यहाँ कर दिया है । लोग क्लान्ति मिटाते हैं और फिर उन्हें अनेक प्रकार के मधुर स्वप्न भी दिखाई देते हैं । सपने रात्रि की गहनता पर ही प्राय: अर्द्धरात्रि में आते हैं। इसके बाद

इन सपनों में सभी लीन हो जाते हैं तो कवि का अनुराग बढ़ जाता है। उसके कण्ठ से एक विरहाकुल राग फूट पड़ता है और यह राग सभी को जागरण का संदेश देता है। यह संदेश प्रात:वेला के आगमन का सूचक होता है।

टिप्पणी- (1) वर्णन श्रृंगारपरक हो गया है। कवि की कल्पनाक्षमता और सूक्ष्म भावों को उभारने की शैली प्रभावित करने वाली है।

(2) अन्तिम तीन पंक्तियों में निराला ने कविजनोचित व्यथा का चित्रण भी किया है और संसार को जागरण का संदेश भी दिया है।

(3) इस अवतरण में मदिरा, सस्नेह, विस्मृति, अर्द्धरात्रि, निश्चलता, विरहाकुल और कमनीय व विहाग जैसे शब्द भाषा की तत्समीकरण वृत्ती को व्यक्त कर रहे हैं।

5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'जुही की कली' कविता के काव्य-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'प्रिय यामिनी जागी' कविता में वर्णित नायिका के रूप-सौंदर्य पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. 'मैं अकेला' नामक कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित काव्यांशों की व्याख्या करते हुए उसके शिल्प-सौंदर्य पर प्रकाश डालिए-

   (अ) विजन-वन-वल्लरी.....कमनीय गात।

   (ब) खुले केश अशेष..... क्षमा माँगती।

   (स) दिवसावसान का समय..... अम्बर-पथ से चली।

5.5 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना
2. डॉ. हरिचरण शर्मा: निराला की प्रबन्ध-सृष्टि
3. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : कवि निराला
4. मधुकर गंगाधर: निराला: जीवन और साहित्य

♦♦♦

इकाई-6 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य का अनुभूति व अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कवि और काव्य-यात्रा

6.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

- 6.3.1 प्रकृति-सौंदर्य
- 6.3.2 प्रेम और श्रृंगार भावना
- 6.3.3 औत्सविकता
- 6.3.4 कल्पना-वैभव
- 6.3.5 आध्यात्मिकता
- 6.3.6 भक्ति भावना
- 6.3.7 राष्ट्रीयता
- 6.3.8 व्यंग्य और विनोद
- 6.3.9 सांस्कृतिक चेतना
- 6.3.10 घनीभूत विषाद

6.4. काव्य का अभिव्यंजना पक्ष

- 6.4.1. काव्य-रूप
- 6.4.2 काव्य-भाषा
- 6.4.3 अलंकार प्रयोग (अप्रस्तुत विधान)
- 6.4.4 प्रतीक प्रयोग
- 6.4.5 बिम्ब प्रयोग
- 6.4.6 छन्द प्रयोग (छन्द के बंधन से मुक्ति)

6.5 सारांश

6.6 संदर्भ ग्रंथ

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य

संकेतित इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

- छायावाद के आधार स्तम्भ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे ।
- छायावादी कवियों में निराला की स्थिति से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे।

- निराला की काव्य-यात्रा से पूर्णत: परिचित होकर उनके काव्य के अनुभूति पक्ष का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे।
- निराला-काव्य के अभिव्यंजना पक्ष से परिचित हो सकेंगे।
- छायावादी कवियों में निराला की स्थिति, उनकी प्रगतिशीलता और उनके योगदान से अवगत हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

निराला सार्वभौम प्रतिभा के शुभ्र पुरुष थे। हिन्दी कविता को उनसे एक दिशा मिली-एक ऐसी राह मिली जो द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता, उपदेरूपरकता और नीरसता के कंकड़-पत्थरों को कूट-पीसकर बनायी गयी थी। वे स्वयं इस राह पर चले और अपने काव्य-सृजन को अर्थ-माधुर्य, भव्यता, वेदना और अनुराग से भरते चले गये। यही कारण है कि उनका काव्य एक निर्जीव संकेत मात्र नहीं है। उसमें रंग और गंध है, आसक्ति और आनन्द के झरनों का संगीत भी है तो अनासक्ति और विषाद का स्वर भी है। उसे पढ़ते समय आनन्द के अमृत-बिन्दुओं का स्पर्श होता है और मन का प्रत्येक कोना अवसाद व वेदना की घनी परतों से घिरता भी जाता है। इतना ही क्यों, उनके कृतित्व में 'नयनों के लाल-गुलाबी डोर' हैं, जुही की कली की स्निग्ध भावोपम प्रेमिलता भी है तो विप्लव के बादलों का गर्जन-तर्जन भी है। 'जागो फिर एक बार' का उत्तेजक आसव भी है और जिन्दगी की जड़ों में समाते जाते खट्टे-मीठे, करुण-कोमल और वेदनासिक्त अनुभवों का निचोड़ भी है। वस्तुत: निराला ने अपने ताप से समाज और साहित्य में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध किया, चन्द्रोज्जवल व्यक्तित्व से राग-भावना की सरिता में निमज्जन किया और द्रवणशीलता से शोषितों, पीड़ितों और विवश मानव-जाति के प्रति करुणा, सहानुभूति और मानवीय भावों का प्रकाशन किया । उनकी तप्त, विद्रोही और स्नेहिल दृष्टि से विकीरित किरणों से भास्वर मंदिर और करुण संवेदनशील प्रकाश फूटा।

6.2 कवि और काव्य-यात्रा

निराला का व्यक्तित्व शब्दों के चौखटे में नहीं समा सकता है, वे बहुत सी विशेषताओं के बाद भी विशेष्य रह जाते हैं। वे अनामिका के चित्रकार, 'भारति जय विजय करे' के क्लासिक गायक और व्यंग्य के सफल प्रयोक्ता थे। लगता है कि उनका दर्द कहीं गहरे में था। अत: उसका ऊपरी मूल्यांकन समीचीन नहीं है। यदि हम उनके द्वारा रचित काव्य का सम्यक् मूल्यांकन करे तो लगता है कि वे झूठे, बनावटी और अनपेक्षित बंधनों को ठुकराकर स्वच्छंद गति से चलने वाले स्वतन्त्रचेता कलाकार थे। यही कारण है कि उन्होंने अतीत के उपयोगी तत्वों को ग्रहण करते हुए नवीन मार्ग का अनुसंधान किया । इस मार्गान्वेषण में निराला का व्यक्तित्व कहीं भी स्थलित नहीं हुआ है। आचार्य वाजपेयी ने कहा है कि 'जितना प्रसन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी

का है, उतना न प्रसाद का है, न पंत का है। यह निराला जी की समुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है।' निर्लेप और तटस्थ व्यक्तित्व के धनी निराला जी का साहित्य उनके इसी व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। उनका विविधात्मक और अद्भुत व्यक्तित्व उनकी सर्जना क्षमता का सहगामी रहा है। विद्रोह, शक्ति, सौंदर्य और मानवास्था के प्रति निराला का कृतित्व काव्य, कहानी और उपन्यासों आदि के रूप में सामने आया है।

निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व किसी एक वाद या वृत्त में घिरा नहीं रहा, वह स्वच्छंद नवीन और प्रगतिमय रहा है। आधुनिक युग की प्राय: सभी प्रवृत्तियाँ निराला के कृतित्व में स्पंदित दिखाई देती हैं। कारण, निराला की दिगन्तव्यापिनी प्रतिभा ने समूचे युग को अपने में समेट लिया था। अत: कोई भी समकालीन विचार-प्रवाह या वृत्ति उनसे कतराकर नहीं जा सकी। छायावाद और छायावादोत्तर काव्यधाराओं को निराला ने अर्थवत्ता, उदात्तता और व्यापकता के साथ साथ युग दृष्टि प्रदान की। इस प्रकार निराला का कृतित्व प्रारम्भ से लेकर निरन्तर गतिशील बना रहा है। उसमें सौंदर्य, कल्पना और श्रृंगार की त्रिवेणी लहराती है, भक्ति का अमंद प्रवाह भी युगीन विषमताओं को परिक्षालित ही करता है और प्रगतिशील चेतना वलयित मानवीय दृष्टि, व्यापक मानवतावादी भूमिका और मुक्त जीवन दृष्टि के प्रति आवश्यक ललक दिखाई देती है। अत: निराला के कृतित्व में कल्पना का वैभव, सौंदर्य-कुसुमों का संभार, भक्ति और अध्यात्म की शांत निश्छल भागीरथी का अजस्त्र प्रवाह और प्रगतिशील चेतना प्रेरित यथार्थ जीवन दृष्टि को देखा जा सकता है। 'परिमल', 'अनामिका, 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता, 'अणिमा', 'बेला', 'अपरा', 'नये पत्ले', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज', और 'साध्यकाकली' निराला के कृतित्व की महनीय उपलब्धियाँ हैं।

'**अनामिका**' निराला का प्रथम काव्य-संग्रह है जो सन् 1922-23 में प्रकाशित हुआ। इसे हिन्दी साहित्य की प्रथम विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी कृति स्वीकार किया जा सकता है। निराला के कृतित्व की दूसरी पहचान **'परिमल'** नामक कृति से सामने आयी। इसका प्रकाशन सन् 1930 में हुआ। '**गीतिका**' निराला की तीसरी काव्य-कृति है जो परिमल की ही भूमिका पर गहरे भावबोध को व्यक्त करने वाली है। सन् 1936 में प्रकाशित इस कृति में 101 गीत हैं । इन गीतों में विविध भावानुभूतिया को वाणी मिली है। सन् 1938 में **'अनामिका'** का पुर्नप्रकाशन हुआ जो पहली अनामिका से भिन्न प्रकार की रचना है। यह वह काव्य-संग्रह हैं जिसमें निराला-काव्य की अधिकांश प्रवृत्तियाँ किसी न किसी रूप में दिखाई दे ही जाती हैं । **'तुलसीदास'** निराला की पाँचवीं प्रबन्धात्मक कृति है । इसमें मात्र सौ छन्दों में तुलसीदास के जीवन में घटित पत्नी की फटकार, ग्रह-त्याग और तदनन्तर सत्यान्वेषण की प्रक्रिया को कविताबद्ध किया गया है। इसके प्रथम भाग में सांस्कृतिक हास व तुलसी के जन्म, दूसरे में प्रकृति द्वारा ज्ञान-प्रदायिनी प्रेरणा तथा पत्नी के प्रति आसक्ति और अन्तिम भाग में पत्नी की फटकार से भोग-विमुख

तुलसीदास का रामोन्मुख व सत्योन्मुख होना चित्रित है। वस्तुत: 'तुलसीदास' व्यक्ति में युगधर्म के प्रवेश की और आत्मा के उन्नयन की कहानी है।

'**कुकुरमुत्ता**' निराला की नये मोड़ और नये भावबोध की कृति है। इसमें निराला का प्रगतिशील दृष्टिकोण एवं व्यंग्यबोध आम भाषा में अभिव्यक्त हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' व्यंग्य-काव्य की श्रेणी में अपना सानी नहीं रखता है। शैल्पिक भूमिका पर यह एक सरल और सीधी रचना होकर भी पर्याप्त सशक्त कृति बन गयी है। निराला की सातवीं कृति **'**अणिमा' है जो सन् 1943 में प्रकाशित हुई। इसमें गीत हैं, जो भक्ति, विषाद, करुणा और प्रशस्ति या वृत्त-लेखन की प्रवृत्तियों से युक्त हैं। इसके अधिकांश गीतों में करुणा का प्रसार है, विषाद का स्वर है और तमाम पीड़ाओं को शमित करने वाली भक्ति की अजस्त्र धारा है। सन् 1943 में ही निराला की आठवीं कृति 'बेला' का प्रकाशन हुआ। इसकी कविताओं में विनय का स्वर है, प्रवृत्तिपरक दृष्टिकोण है, श्रृंगारिक व्यंजना है, व्यंग्य और विनोद के छींटे हैं, सामाजिक और राष्ट्रीय भावधारा को संकेतित करने वाली चिन्तनप्रधान कविताएँ भी हैं। इसके पश्चात् 1946 में 'अपरा' का प्रकाशन हुआ। इसमें 'जागो फिर एक बार' और 'बादल राग' जैसी श्रेष्ठ कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है। 'नये पत्ते' शीर्षक कृति का प्रकाशन भी सन् 1946 में ही हुआ। इसकी कविताओं का स्वर भी **'बेला'** के समान ही है, किन्तु यथार्थवादी स्वर पूर्वापेक्षा अधिक है। **'अर्चना'** शीर्षक कृति का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ । इसमें आध्यात्मिक, भक्तिपरक, प्रकृतिपरक, श्रृंगारिक और प्रयोगशील गीत भी हैं। भक्तिभाव भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में है। सन् 1953 में **'आराधना'** नामक कृति का प्रकाशन हुआ और इसी वर्ष **'गीतगुंज'** का भी प्रकाशन हुआ। **'गीतगुंज'** और **'आराधना'** का स्वर भी प्राय: वही है जिसे हम भक्ति का स्वर कह सकते हैं। विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से ये गीत गीतिका की परम्परा में आते हैं। **'सांध्यकाकली'** निराला की कविताओं का अन्तिम संग्रह है। 68 कविताओं के इस संग्रह में विषाद की घनी छाया भी है और प्रकृति का वैभव भी है। कवि संसार की विषमता से व्यथित और पीड़ित होकर भी आस्थावादी है । पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है, आशा का प्रदीप जलता है हृदय-कुंज में जैसी पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं। यह है निराला की काव्य-यात्रा का संक्षिप्त परिचय और वैशिष्ट्य।

6.3 काव्य का अनुभूति पक्ष

क्रांति के अग्रदूत, पौरुष के श्रृंगार, युगीन विषमताओं और निजी व्यथाओं से तप-तचकर बने निर्भीक, स्पष्टवादी और मानवता का जयघोष करने वाले निराला हिन्दी कविता के परम्परित मेघाच्छादित गगन में मध्याह् के सूर्य, निस्तब्ध रजनी के चन्द्र और सांध्यकालीन आकाश में नम्रमुखी दिनकर बनकर प्रकट हुए। उनका काव्य- सृजन एक ऐसा परिदृश्य प्रस्तुत करता है, जिसमें गहरे उतरकर ही कुछ पाया जा सकता है। उनके समग्र काव्य-सागर में अवगाहन करने पर जो आनुभूतिक प्रवृत्तियों के मोती हाथ लगते

हैं, उन्हें हम प्रकृति सौंदर्य, श्रृंगार, कल्पना-वैभव, औत्सविकता आध्यात्मिकता, भक्ति-भावना, प्रेम-भावना, व्यंग्यशीलता, विनोदप्रियता, राष्ट्रीयता. सांस्कृतिक चेतना, क्रांति भावना, घनीभूत विषाद भावना और मानवता जैसे शीर्षकों में रखकर समझ सकते हैं ।

6.3.1 प्रकृति सौंदर्य

कविता के अन्तर्गत प्रकृति के स्वतंत्र महत्व की स्वीकृति भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण में हो गयी थी। द्विवेदी युग में इसी स्वीकृति का पोषण हुआ और छायावाद में यही प्रवृत्ती काव्यात्मक रूप लेकर सामने आयी। प्रकृति के आकर्षक बिम्ब प्रस्तुत करने में निराला का स्थान किसी से कम नहीं है। उन्होंने अपनी प्रकृति यात्रा का प्रारम्भ 'जुही की कली' से किया। 'शेफालिका' भी इसी श्रेणी की रचना है जिसमें नश्वर यौवन-सौंदर्य की अर्थवत्ता और प्रणय माधुर्य चरम रूप में प्रस्तुत हुआ है। निराला की प्रकृति में भोर की उजली किरणें, निज की आभा से चमकती ओस की बूँद, धरती के विस्तृत वक्षस्थल पर फैलती जाती हरियाली, धूल-धक्कड़, हवा, आँधी, तूफान, इन्द्रधनुष का सौंदर्य, बादलों की श्यामता शिशिर का कम्पन, बसन्त का यौवन, वर्षा का वैभव, पतझड़ की उदासी और इन सबसे ऊपर प्रकृति के कमनीय कुंजों से छन छनकर आती मदहोश पुरवाई व क्षण-प्रतिक्षण बदलते प्रकृति के विविध रूपों का अंकन हुआ है। उनकी प्रकृति सौंदर्य, श्रृंगार और मस्ती की पैगों में झूलती है और विद्रोह की स्वर लहरी की कड़क से कम्पित भी होती है, विषाद में आँसू भी बहाती है, वह हमसफर भी है और हमशक्ल भी। इतना ही क्यों, वह व्यंग्य की सामग्री भी जुटाती है और मानव जीवन के लिए सांस्कृतिक संदेश भी जुटाती है। निराला का प्रारम्भिक काव्य प्रकृति की जिन छवियों से दीप्त है, वे कोमल, सरल और आबदार हैं। ये पंक्तियाँ देखिए-

किसलय वसना नव वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका
मधुप वृन्द बंदी-
पिक-स्वर नभ सरसाया
लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
बही पवन बन्द मन्दतर
जागी नयनों में बन यौवन की माया ।

प्रकृति की आकर्षक, सरल, मादक और मुग्ध श्रृंगारिका से युक्त रचनाओं में 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'यमुना के प्रति', 'नरगिस', 'वनवेला' और 'संध्या सुन्दरी' जैसी कविताओं को पढ़ा जा सकता है। प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी निराला में पूरे आकर्षण के साथ मिलती है। संध्या सुन्दरी और द्युति का मानवीकरण कमश: यौवना नारी और सद्य:स्नाता के रूप में किया गया है । संध्या सुन्दरी का यह रूप तो देखिए-

दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे..... ।

छायावादी कवियों में प्रकृति चित्रण की जो पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं, वे प्राय: सभी निराला काव्य में मिलती हैं । उनके संध्या, प्रभात, वर्षा, शरद, बसन्त और बादलों के सौंदर्य के चित्र अपने में अनूठे हैं । कहीं कहीं प्रकृति और मानव के व्यापार एक साथ मिलकर सामने आये हैं । गीतिका का 'रंग गयी पग पग धन्य धरा' गीत प्रकृति के वैभव से सिमटा हुआ लगता है । ध्यान देने की बात यह है कि प्रकृति के श्रृंगारिक, मधुर और कोमल रूप को जैसे ही समाज और भौतिक सभ्यता के आघात लगते हैं, वैसे ही प्रकृति की छवियों से विद्रोह और व्यंग्य का रंग बरसने लगता है । बादल कविता इसका प्रमाण है । इसमें बादल के द्वारा युग को अत्याचारों के लिए चुनौती दी गयी है । यह विप्लव नवनिर्माण कि भूमिका पर है । धीरे-धीरे कवि अपनी अन्तिम रचनाओं तक पहुँचकर प्रकृति व रमणीयता में ही संतोष लाभ करता दिखाई देता है । वस्तुत: प्रकृति की विधा ही ऐसी है जो उन्हें सदैव और सभी रचनाओं के सृजन के दौरान शक्ति और आह्लाद वितरित करती रही है । उन्हें सामाजिक और मानसिक संघर्षो की विभीषिका से यदि कोई शक्ति कुछ राहत दिला सकी है तो वह प्रकृति ही है। प्रकृति निराला के लिए संजीवनी बनकर आई है।

निराला के प्रकृति-चित्रण की अन्य विशेषताओं में दार्शनिक भावों का अभिव्यंजन भी महत्वपूर्ण है। उनकी अनेक कविताओं में दार्शनिक विचारणाएँ प्रकृति के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुरसरिता / तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कान्त कामिनी कविता' इसका उदाहरण है। 'परिमल' की भूमिका में निराला की स्वीकारोक्ति भी है। उनके शब्द हैं "पल्लवों के हिलने में किसी अज्ञात चिरन्तन, अनादि, सर्वज्ञ को हाथ के इशारे से अपने पास बुलाने का इंगित प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।" यों निराला की प्रकृति-छटा आलंकारिक, उपदेशात्मक, उद्दीपनात्मक और रहस्यात्मक आदि सभी रूपों में उपलब्ध है, किन्तु प्रकृति का शुद्ध अंकन और उसी में शांति पाने का भाव निराला काव्य की अप्रतिम विशेषता है। निराला ने प्राय: सभी ऋतुओं का वर्णन किया है, किन्तु प्रियता की दृष्टि से वर्षा का स्थान सर्वोपरि रहा है। वर्षा के बाद बसन्त को कवि का ममत्व प्राप्त हुआ है। निराला के ऋतु वर्णन में वर्षा को इतना महत्व और ममत्व मिला है कि कवि बसन्त से तो विदाई ले लेता है, किन्तु अन्तिम समय में भी वर्षा की जलधारा में भीगते रहना चाहता है । वास्तव में ऋतुपरक साहित्य में निराला का ऋतु वर्णन अत्यन्त प्रभावी और मार्मिक छवियों से युक्त है । 'सांध्यकाकली' के 'जिधर देखिए श्याम विराजे / प्राणों के घनश्याम विराजे' आदि में भी ऋतु का वैभव पूरी स्पष्टता से चित्रित हुआ है। ऐसा लगता है कि निराला वर्षा के विविध रूपों को पी गये हैं और अपनी काव्याभिव्यक्ति के द्वारा उस ऋतु वैभव के आसव को सभी को पिलाना चाहते हैं।

6.3.2 प्रेम और श्रृंगार गार भावना

निराला काव्य की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता प्रेम और श्रृंगार का अंकन है । 'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' और गीतगुज में प्रेम और श्रृंगार का स्वर धीमा है, पर 'गीतिका' और 'परिमल' में पर्याप्त तेज है । प्रेम को निराला ने एक शाश्वत भाव के रूप में स्वीकार किया है । उसमें उदात्तता है । निराला का प्रेम शरीर से ऊपर उठकर आत्मा तक की यात्रा करता है । लौकिक प्रणयानुभूतियो में प्रेयसी और पत्नी को लक्ष्य करके कविताएँ लिखी गयी हैं । 'अनामिका' की प्रेयसी इसका प्रमाण है । इसमें प्रेम की लौकिक अलौकिक छवियों के बीच कवि ने बराबर एक अनिवार्य संतुलन बनाये रखा है। प्रेम के प्रति कविता प्रेम विषयक दृष्टिकोण को प्रतीकित करती है । तन्वी नारी के शरीर के प्रति प्रेम को सीमित न रखते हुए निराला ने अपने प्रेम भावों को इस प्रकार स्पष्ट किया है - 'प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो, उर उर के हीरों का हार / गूँथे हुए प्राणियों को भी गूँथे न कभी सदा ही सार।'

'अनामिका' संग्रह की 'रेखा', प्रिया के प्रति और प्रिया से आदि कविताओं में भी कवि ने अपनी प्रणय और प्रेयसी भावना को स्पष्ट किया है । उनके ये शब्द देखिए-

तेरे सहज रूप से रंगकर
भरे गान के मेरे निर्झर
सिक्त हुआ संसार।

निराला की जिन कविताओं में 'प्रिया या प्रेयसी' सम्बोधन आया है, उसका सम्बन्ध और केन्द्र-बिन्दु उनकी पत्नी ही रही है । प्रणय भाव का सम्बन्ध जिस श्रृंगार भावना से है, उसके भी स्पष्ट चित्र निराला की कविताओं में मिलते हैं । विरह और मिलन के दोनों कगारों के बीच निराला के प्रणय का सागर है, जो कभी उद्वेलित होकर अपने आलम्बन का दरस, परस और चुम्बन कर लेता है तो कभी ऐसा न कर पाने के कारण अपने आन्तरिक उफान से छटपटाता दिखाई देता है । संयोग श्रृंगार के स्पष्ट चित्र 'शेफालिका', 'जुही की कली' और 'मौन रही हार' आदि कविताओं में देखे जा सकते हैं । 'जुही की कली' की ये पंक्तियाँ देखिए-

नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल ।
निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की
कि झौंकों की झाड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह सारी
झकझोर डाली. मसल दिये गोरे कपोल
चौक पड़ी युवती
चकित चितवन निज चारों ओर फेर ।

विरह के मार्मिक चित्र भी 'गीतिका और 'परिमल' की कविताओं में देखे जा सकते हैं । इस संदर्भ में 'प्राण धन को स्मरण करते, विफल वासना और वे गये असह दुख भर' आदि कविताओं को पढ़ा जा सकता है । प्रणयजनित वेदना की एकान्तिक अभिव्यंजना

पूरी मार्मिकता के साथ निराला की कविताओं में मिलती है । सामान्यत: अतीत के सुख पर आँसू बहाना उनका स्वभाव नहीं है, किन्तु कहीं कहीं वे 'अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा / श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा / बह रही है हृदय पर केवल अमा जैसी पंक्तियाँ ही लिख गये हैं । उनका प्रणय-साधना की शिला पर घिसकर पावन हो गया है और वियोग की चिर ज्वाला में जलकर उनका हृदय शांत, उज्ज्वल और निर्मल हो गया है । प्रेम और श्रृंगार की ऐसी भावाभिव्यक्ति निराला की कविताओं में नारी और नर दोनों की ओर से ही हुई है । निराला काव्य में नारी के जो चित्र मिलते हैं, वे कोमल, सुन्दर होने के साथ-साथ शिवत्व से भी युक्त हैं । 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली' के मिलन-प्रसंग, 'नुपूर के सुर बन्द रहे' जैसा श्रृंगारिक वृत्त, 'स्पर्श से लाज से लगी' की भावपरकता और 'यामिनी जागी' कविता का संदर्भ आदि सभी निराला की नारी ऐन्द्रियता से ऊपर उठी हुई पावन रूप में चित्रित हुई है । ऐन्द्रिय रंगत में रंगी नारियों के चित्र निराला के काव्य में विरल हैं, पर जहाँ हैं, वहाँ वे कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति की पूरी ईमानदारी का सबूत पेश करते 'हैं।

'जुही की कली' के अतिरिक्त 'प्रिय कर कठिन उरोज परस कस कसक मसक गयी चोली'/ एक बसन रह गयी मन्द बस अधर दसन अनबोली पंक्तियों में ऐन्द्रियता को पूरी सहजता के साथ चित्रित किया गया है । इसके साथ ही 'वासना की मुक्ति' जैसी कविताएँ भी पठनीय हैं । राम की शक्तिपूजा की वे पंक्तियाँ जिसमें राम सीता के प्रथम मिलन का स्मरण करते हैं, नारी के पावन रूप को व्यक्त करती हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि निराला के काव्य में प्रेम और श्रृंगार के चित्रों की कमी नहीं है, पर वे प्राय: एक उदात्त भूमिका पर निरूपित हुए हैं । प्रेम की पावनता, मार्मिकता, श्रृंगार की मधुरता और उदात्तता के योग से निर्मित नारी शरीर की यात्रा करने वाली कवि की लखेनी कहीं ऐसी फिसलन का शिकार नहीं हुई है कि उस पर आरोप प्रत्यारोपों की भाषा को लादा जा सके ।

6.3.3 औत्सविकता

निराला-काव्य में चित्रित प्रणय और श्रृंगार के भावों में औत्सविकता की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है । कारण यह है कि कवि की श्रृंगारिक भाव-भूमि अधिकतर पारिवारिक और सांस्कृतिक संदर्भो से युक्त होकर सामने आयी है। तुलसीदास काव्य की रत्नावली तो पूरी तरह एक सांस्कृतिक आदर्श लेकर अवतरित हुई है। रत्ना ने तुलसी से यह कहकर कि 'धिक् धाये तुम यों अनाहूत / धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत/ राम के नहीं काम के सूत कहलाये / ' अपने सांस्कारिक व्यक्तित्व को ही प्रस्तुत किया है। श्रृंगार रस में डूबी हुई पारिवारिक छवियों में होली का उत्सव निराला की औत्सविकता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है । इसमें कवि की सांस्कृतिक अभिरुचि का ही अभिव्यंजन हुआ है । यही औत्सविकता का स्वर पंचवटी-प्रसंग, राम की शक्ति-पूजा, तुलसीदास, यमुना के प्रति और शिवाजी का पत्र आदि कविताओं में भी सुना जा सकता

है । वस्तुत: औत्सविकता की यह प्रवृत्ति निराला के काव्य में अनेक स्थलों पर आकार लिए हुए है । इससे यह प्रमाणित होता है कि निराला अपनी सांस्कृतिक चेतना को कहीं भी विस्मृत नहीं कर पाये हैं । कथात्मक कविताओं में तो यह चेतना और भी मुखर रूप लेकर सामने आयी है ।

6.3.4 कल्पना वैभव

प्रतिभा के धनी निराला के काव्य में कल्पना का अमित वैभव देखने को मिलता है । उनकी कल्पना स्थिर कम, गतिशील अधिक रही है । यही कारण है कि उनके काव्य में निरूपित बिम्बों में न केवल ताजगी, सरसता और गतिशीलता है, अपितु संश्लिष्टता भी भरपूर है । पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, वन, पर्वत और प्रकृति के परिवर्तित रूप, ऋतुओं का अनन्त संभार कवि की कल्पना क्षमता को स्पष्ट करते हैं । 'शक्तिपूजा' में विराट कल्पना और सूक्ष्म कल्पना दोनों को देखा जा सकता है । उसमें एक ओर 'अमा-निशा गगन घन अंधकार' उगल रहा है तो दूसरी ओर राम की स्मृति में जगी सीता की अच्युत कुमारिका छवि मूर्तित हो उठी है । दोनों में कवि-कल्पना का वैभव देखा जा सकता है । 'तुलसीदास' की भी यही स्थिति है और मुक्तक रचनाएँ भी कल्पना-वैभव से शून्य नहीं हैं । 'यमुना के प्रति', 'विधवा', 'भिक्षुक' और 'नीचे उस पार श्यामा' जैसी कविताओं में भी कल्पना का यही वैभव देखा जा सकता है । 'यमुना के प्रति' कविता की ये पंक्तियाँ देखिए-

कहाँ छलकते अब वैसे ही, ब्रज नागरियों के गागर?
कहाँ भीगते अब वैसे ही बाहु उरोज, अधर अम्बर?
बँधा बाहुओं में घट-क्षण-क्षण कहाँ प्रकट करता अपवाद?
अलकों को किशोर पलकों को कहाँ वायु देती सँवार?

ये वे पंक्तियाँ हैं, जिन्हें पढ़ते ही पाठक कवि की कल्पना क्षमता के सागर में निमग्न हो जाता है । निराला की कविताओं में जो कल्पना का वैभव दिखाई देता है, वह धरती की गंध लेकर, सौंदर्य के उपकरणों से सजकर कविता की पंक्तियों में आकर सिमट गया है । वस्तुत: निराला की कल्पना एक ऐसी तरंग है जिसका एक छोर धरती से जुड़ा है और दूसरा आकाश से । बसन्त ऋतु में धरती का छोर-छोर कवि की प्रकृति सौंदर्य विषयक कल्पना से रंजित होकर इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है-

रँग गयी पग-पग धन्य धरा
हुई जगमग मनोहरा
वर्ण गंध धर. मधु मबन्द भर
तरू उर की अरुणिमा तरुणातर।

इतना ही नहीं, निराला की कल्पना 'वनवेला' जैसी कविताओं में मदिर गंध लेकर पाठकों की चेतना को अभिभूत करती है । राग-विराग की कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य की जो छवियाँ प्राप्त होती हैं, वे भी आनन्द का अमृत बाँटती हैं और पग-पग पर

उल्लास और आशा की गंध फैलाती चलती हैं । 'सखि बसन्त आया' जैसी कविता में इसी राग-चेतना अथवा आनन्द के अमृत को देखा जा सकता है । चाँदनी रात, मलयानिल उपवन, सरसरिता, गहनगिरि कानन आदि सबके केन्द्र में स्थित जुही की कली का सौंदर्य भी आनन्द के निर्झर में स्नात होने की प्रेरणा देता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि राग-विराग संग्रह में जो आनन्द का अमृतवर्षी निर्झर प्रवाहित है, वह न केवल कवि की कल्पना-क्षमता से युक्त है, अपितु उसमें प्रकृति की मनहरण छवियाँ भी अंकित हैं

6.3.5 आध्यात्मिकता

निराला के काव्य में आध्यात्मिक विचारों का अखण्ड स्त्रोत प्रवाहित है । इस आध्यात्मिक चेतना को कतिपय समीक्षकों ने अद्वैतवादी भूमिका पर रखकर देखा है और दूसरों ने इसे उपनिषदीय छाया स्वीकार किया है । निराला विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस से भी पर्याप्त प्रभावित थे । वास्तविकता यह है कि निराला किसी एक दर्शन के अनुसार अपने को व्यक्त नहीं कर सके हैं । उनका दर्शन समन्वयवादी है । वे न तो कोरे तर्कवादी थे, न भक्तिवादी और न कर्मवादी । वे तो इन तीनों को मिलाकर ही मानवीय व्यवहार की पूर्णता की कल्पना करते थे । 'पंचवटी प्रसंग में उन्होंने स्पष्टत: स्वीकार किया है-

भक्ति योग कर्म ज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं
एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ-
द्वैतभाव ही है भ्रम
शुद्ध चित्तात्मा में उगता है पेमाकुंर
चित्त यदि निर्मल नही तो वह प्रेम व्यर्थ है-
पशुता की ओर है वह खींचता मनुष्य को ।

निराला ने उपनिषदों का अध्ययन किया था। वे असीम सत्ता के प्रति अपना जिज्ञासा भाव प्रकट करते हुए बारम्बार यह प्रश्न करते हैं कि इस जगत का नियामक कौन है? 'कौन तम के पार' में यही भाव ध्वनित है । कभी तो वे समस्त विश्व को उसी जगत नियंता में देखते हैं और कभी जगत में विश्वपालक के दर्शन करते हैं । 'जिधर देखिए श्याम विराजे' में वे उसी एक सत्ता का आभास विश्व में पाते हैं । निराला ने मानव जीवन के सभी कर्मो का ब्रह्म से ही उत्पन्न होना और उसी में लीन होना स्वीकार किया है । जीवन की विजय, सब पराजय घिर अतीत, आशा सुख, सब भय, सब में तुम, तुम में सब तन्मय' जैसी पंक्तियों में यही भाव चित्रित हुआ है । ब्रह्म की चेतन सत्ता के साथ सम्पूर्ण जगत के उत्थान-पतन, आरोह-अवरोह को निराला ने सदैव एक ही तार में आबद्ध देखा है । यही वह भूमिका है जहाँ निर्गुण ब्रह्म उनके लिए सगुण और साकार हो जाता है । निराला ने ईश्वर के साथ अपने विविध सम्बन्धों को भी

व्यक्त किया है । कहीं-कहीं वे सूफी कवियों की चिन्तना से प्रभावित दिखाई देते है और कभी वे परमसत्ता को माँ कहकर सम्बोधित करते हैं । उन्होंने इस सत्ता को अन्यत्र खोजने की अपेक्षा अपने ही भीतर स्वीकार किया है-

पास ही रे, हीरे की खान. खोजता कहाँ और नादान

कहीं भी नहीं सत्य का रूप. अखिल जग एक अंध तुम कूप । ।

माया को निराला ने अन्य संतों की भाँति ही बाधक तत्व स्वीकार किया है । माया के कारण ही जीव बद्ध रहता है और उससे मुक्त होकर ही वह आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है । इसी स्थिति में जीव और ब्रह्म दोनों एक रूप हो जाते हैं । इस स्थिति की द्योतनकारिणी पंक्तियाँ तुम कविता में देखी जा सकती हैं- तुम तुंग हिमालय श्रृंग / और मैं चंचल गति सर सरिता / तुम विमल हृदय उच्छवास/ और मैं कांति कामिनी कविता।' डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की आध्यात्मिकता की विवेचना करते हुए उन्हें अद्वैतवादी माना है। हमारी धारणा है कि निराला को वैसा अद्वैतवादी नहीं माना जा सकता है जैसा कि शंकर अद्वैत हैं । उनकी कई कविताओं में जगत को आनन्दरूप मानने का भाव ध्वनित है । यह अद्वैत भूमि विवेकानन्द की है जिसका एक पहलू वैयक्तिक है और दूसरा सामाजिक । यह सामाजिक पहलू ही उन्हें मानवतावादी संदर्भ से भी जोड़ता है ।

निराला जिन-जिन से प्रभावित हुए, उनमें रामकृष्ण का स्थान प्रमुख है, किन्तु यह सही है कि उन्होंने इन सबसे प्रभावित होकर भी अपना एक ऐसा व्यावहारिक और संतुलित दर्शन तैयार किया जो यदि हठधर्मिता को छोड़कर समझा जाये तो सारी समस्या ही हल हो जाती है । निराला में जहाँ-जहाँ शक्ति-पूजा का भाव मिलता है, उसे रामकृष्ण से अलग नहीं समझना चाहिए । वे मानते थे कि सृष्टि शक्ति पर टिकी हुई है, उसकी करुणा दृष्टि से संसार मंगल-विधान की ओर प्रवृत्त होता है । वही सृष्टि के जन्म, विकास और अवसान के लिए उत्तरदायी है । 'तुलसीदास' में इसका भिन्न रूप भले ही हो, पर वह परिणाम में भिन्न नहीं है । शक्तिपूजा से स्पष्ट ही है । शक्तिपूजा में राम कष्टों पर पार पाने और राक्षसत्व पर विजय पाने के लिए शक्ति की उपासना करते हैं तो तुलसीदास' में रत्ना ही वह आद्याशक्ति बन गयी है । उसी की प्रेरणा से कथानायक तुलसी के प्रबल संस्कार जाग्रत होते हैं और वही उन्हें सृष्टि की वागीश्वरी प्रतीत होती है, तभी तो उसके मुख से निकले वचन 'अमृताक्षर निर्झर' बतलाये गये हैं । उन्हें सुनकर ही अविद्या की अंध रात्रि समाप्त हो जाती है । वस्तुत: रामकृष्ण की समन्वयात्मिका दृष्टि निराला में भी है जैसाकि पंचवटी प्रसंग की कविता के उदाहरण से स्पष्ट है । ये ज्ञान भक्ति और कर्म को मिलाकर ही यह समन्वयवादी दृष्टि तैयार कर सके हैं ।

6.3.6 भक्ति भावना

आध्यात्मिक विचारणा जिस प्रकार निराला काव्य की विशेषता है, वैसे ही भक्ति भावना भी है । निराला सगुणोपासक भक्त थे । उनके काव्य में भक्ति के विविध रूपों और

अंगों को अभिव्यक्त किया गया है । आराधना, बेला और अर्चना के गीतों में कवि निराला की भक्ति भावना को वाणी मिली है । उनकी भक्ति में विनम्रता, दीनता, आर्त पुकार, निर्बलता और भवसागर से उबार लेने की प्रार्थना अभिव्यक्त हुई है । वे अपने आराध्य, अशरण शरण राम से अपने उद्धार के लिए याचना करते हैं । कारण वे जानते हैं कि राम को समर्पित हुए बिना उद्धार सम्भव नहीं है । उन्होंने मानवों को यही संदेश दिया भी है कि 'हरि भजन से ही उद्धार पाओगे, निष्काम होकर निर्भयपूर्वक भगवान का भजन करो, मोह बंधन से वही भगवान छुटकारा दिला सकता है । ' उनकी भक्ति में बौद्धिकता नहीं है, भावात्मक समर्पण है, वाद-विवाद नहीं है, प्रभु की सत्ता का सहज स्वीकार है और भक्तिभावित हृदय का भावमय और निश्छल समर्पण । निराला की समस्त चिन्तना समाजोन्मुख है । उसमें जनसमाज को स्थान प्राप्त है क्योंकि उन्होंने 'स्व' की परिधि से निकलकर सदैव ही यह कहा : 'दलित जन पर करो करुणा दीनता पर उतर आये प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा ।' इस प्रकार निराला की भक्ति भावना में गहनता है, समाज-कल्याण की भावना है और साथ ही भक्ति के भाव-भीने स्वर हैं। उनकी भक्ति भावना को देखकर यह मानने की इच्छा होती है कि कबीर और तुलसी दोनों की भक्ति का गंगाजमुनी मेल निराला के काव्य में हुआ है।

6.3.7 राष्ट्रीयता

निराला एक ऐसे कवि थे जो राष्ट्रीयता और जनजागरण के भावों को भी कविता में उसी प्रकार महत्व देते थे जिस प्रकार कि अन्य यथार्थ और प्रगतिशील भावों को । उन्होंने विवेकानन्द से अध्यात्म, रामकृष्ण मिशन से अद्वैत, गांधी और तिलक से विद्रोह और सत्य का आधार पाकर अपनी राष्ट्रीयता का निर्माण किया था। समकालीन जीवन की मोहांध करने वाली विकृतियों, अतीत की महिमामय झाँकियों और भावी के निर्माण के स्वरों में अपनी राष्ट्रीयता की गति भरी । वस्तुत: उनकी राष्ट्रीय चेतना अत्यन्त व्यापक थी, अत: कई रूपों में प्रस्फुटित हुई है । (1) उन्होंने देश की तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ व्यक्त किया है । (2) नारी की महानता को रेखांकित किया है । (3) अतीत के वैभव को वाणी दी है। (4) भावी समाज के स्वस्थ एवं मधुर रूप की कल्पना की है । (5) हिन्दी भाषा के प्रति निष्ठा व्यक्त की है । (6) दलितों और शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है । (7) सोये हुए राष्ट्र को जागृति का मंत्र दिया है और (8) जीर्ण-शीर्ण एवं पुरातन के ध्वंस पर नव निर्माण का राग मुखरित किया है। डॉ. भागीरथ मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि निराला की अधिकांश कविताओं की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीयता का रंग मिलेगा । किसी दलगत राजनीति, बँधी-बँधाई विचारधारा या वाद राष्ट्र की संस्कृति और भौगोलिक सीमाओं तक ही उनकी राष्ट्रीयता सीमित थी, सो बात नहीं । वह तो देश-देशान्तर की समस्त सीमाओं को लाँघकर उसके व्यापक स्वरूप को स्पर्श करने वाली थी । वस्तुत: निराला की राष्ट्रीयता ऊपरी नहीं थी और न आयातित ही थी । वह तो भारत की मिट्टी

से ही पनपी और बढ़ी थी। अतीत के वैभव का गान करते हुए निराला ने जिस राष्ट्रीयता को विकसित किया, उसका स्वर दिल्ली, 'यमुना के प्रति', 'भारति जय विजय करे' आदि कविताओं में देखा जा सकता है। 'बता कहीं वह अब वंशीवट', कहीं गये नटनागर श्याम अथवा 'क्या यह वही देश है भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र' जैसी पंक्तियाँ इसी भाव की पोषिका हैं । जागरण का संदेश देकर भी निराला ने अपनी राष्ट्रीयता का अलख जगाया है । 'प्रिय मुद्रित दृग खोलो' अथवा 'जागो जागो आया प्रभात, बीती बीती वह अंध रात' आदि में यही जागरण का स्वर निनादित है । महाराज शिवाजी का पत्र और ज़ागो फिर एक बार जैसी रचनाएँ तो राष्ट्रीय भावना के विकास के इतिहास में अपना सानी नहीं रखती हैं ।

6.3.8 व्यंग्य और विनोद

निराला काव्य में छायावादी चेतना की शुभ्रता और सूक्ष्मता से हटकर प्रगतिशील चेतना का यथार्थवादी रंग भी उपलब्ध है । इसी रंग में वे कभी व्यंग्य से और कभी विनोद से काम लेते रहे हैं । उनके व्यंग्य भाव में सामाजिक विषमता के प्रति विद्रोह प्रतिध्वनित है तो मानव जाति के प्रति व्यापक सहानुभूति भी । कुकुरमुत्ता और 'नये पत्ते' जैसी रचनाएँ व्यंग्य और विनोद की प्रवृत्तियों को उजागर करती हैं । ऐसा नहीं है कि 'कुकुरमुत्ता' से पहले की कविताओं में व्यंग्य नहीं था, इसका आभास हमें 'अनामिका' और 'परिमल' में ही हो जाता है । अनामिका की 'उक्ति', 'दान' और 'वनवेला' आदि कविताएँ इसका प्रमाण हैं। निराला के परवर्ती काव्य में व्यंग्य की धार पैनी हो गयी है। उनके व्यंग्य का आधार सामाजिक वैषम्य, निर्धनों का शोषण एवं उत्पीड़न है तो साथ ही राजनीतिज्ञों और साहित्यकारों तक को उन्होंने अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है । मानव जहाँ बैल घोड़ा है / कैसा तन-मन का जोड़ा है /' जैसी पंक्तियों में न केवल वैषम्य पर व्यंग्य है, अपितु भौतिकता से उपजी विकृतियों की ओर भी स्पष्ट संकेत है। अनामिका की 'दान' शीर्षक कविता 'तेल फुलेल पर पानी सा पैसा बहाने वाले' ढोंगी और पाखण्डी मनुष्यों की हीनता और दम्भी प्रकृति पर तीखा व्यंग्य करती है । इसी प्रकार 'खण्डहर के प्रति', 'मित्र के प्रति' और 'वनवेला' आदि कविताओं में भी मानव का हृदय विदारक और घृणास्पद रूप उभरकर आया है। 'करुणा के कुन्दन से चमकती हुई 'सरोज-स्मृति' में भी कान्यकुब्जों और ढोंगियों पर तीखा व्यंग्य किया गया है । वनवेला में पैसों से राष्ट्रीय गीत बेचने वालों और गर्दभ स्वर में गायन करने वाले व्यक्तियों पर प्रहार किया गया है । इसी क्रम में 'रानी और कानी', 'गर्म पकौड़ी', 'मास्को डायलोक्त', 'खजुहरा', 'प्रेम संगीत', 'डिप्टी साहब आए' आदि कविताओं का व्यंग्य भी नश्तर चुभाने वाला है । हाँ, कुकुरमुत्ता का व्यंग्य इन सबसे तीखा है । धनीमानी लोगों के प्रतीक बने गुलाब के माध्यम से किया गया व्यंग्य सर्वोपरि है-

अबे सुन वे गुलाब
भूल-मत जो पाई खुशबू रंगोआब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट

सर्वहारा वर्ग की अत्यधिक प्रचारवादी प्रवृत्ति और पूँजीवादी संस्कृति दोनों पर बडे तीखे व्यंग्य 'कुकुरमुत्ता' में देखने को मिलते हैं। कविता में कवि निराला ने उन सभी को व्यंग्य का निशाना बनाया है जो तत्कालीन साहित्य और समाज में विकृतियों के रूप में दिखाई दे रहे थे । व्यंग्य का निशाना वे ही संदर्भ बने हैं जिनमें तथ्य कम और ढोंग अधिक था, असलियत कम और प्रचारात्मकता अधिक थी ।

6.3.9 सांस्कृतिक चेतना

राष्ट्रीयता का अलख जगाने वाले निराला के काव्य में सांस्कृतिक चेतना का अजस्त्र प्रवाह दिखाई देता है । भारतीय संस्कृति के पोषक, सांस्कृतिक उत्थान के समर्थक और समग्र देश में एक मानवीय और समताविधायिनी संस्कृति के पक्षधर निराला की बहुत सी कविताओं में सांस्कृतिक चेतना मुखरित हुई है । उनका तुलसीदास काव्य तो पूरी तरह इसी चेतना से वयलित है । सांस्कृतिक हास का चित्रण करते हुए निराला ने सांस्कृतिक उत्थान का भव्य चित्रण किया है । वस्तुत: भ्रमित और आत्म प्रवंचित होने के कारण पतन की ओर बढ़ते हुए समाज को सूर्याभा की ओर ले जाने का उपक्रम 'तुलसीदास' में मिलता है । काव्य के प्रथम छंद में ही भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों का संदर्भ देखने को मिलता है । निराला यह कहकर कि 'भारत के नम का प्रभापूर्य, शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य, अस्तमित आज रे' सांस्कृतिक ह्रास का निरूपण करते हैं और यह भी संकेतित कर देते हैं कि एक समय वह था जब सांस्कृतिक आभा की किरणें समूचे देश को शीतल छाया प्रदान करती थी, किन्तु अब वह स्थिति नहीं है । काव्यान्त में संस्कृति के सूर्योदय का संदर्भ देकर कवि ने यह भाव व्यक्त कर दिया है कि वे सांस्कृतिक चेतना में पूर्ण विश्वास करते हैं ।

6.3.10 घनीभूत विषाद

निराला समाज के सजग प्रहरी थे, किन्तु विषादों में पले थे । वेदना उनकी थाती थी । यही कारण है कि उनकी अधिकांश कविताओं में गहरा विषाद प्रतिध्वनित हुआ है । उनका विषाद भाव वैयक्तिक कम, सामाजिक अधिक है । वे समाज की विकृतियों, विसंगतियों और अन्धरूढ़ियों से क्षुब्ध थे । जीवनभर संघर्ष सहने वाले सामाजिक विषमताओं की अमा के अभिशाप से ग्रसित और निरन्तर उपेक्षित रहने के कारण वे घनीभूत पीड़ा के पर्याय बन गये थे । यह विषाद 'राम की शक्तिपूजा' में भी है और 'सरोज स्मृति' में भी । यही विषाद 'अणिमा' के गीतों में भी मुखरित हुआ है । निम्नांकित पंक्तियाँ इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं-

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है

इतना ही नहीं, जब वे कहते हैं कि मैं अकेला / आ रही मेरे दिवस की 'सांध्य वेला' तो उनका विषाद और भी घनीभूत हो जाता है । 'गहन है अंधकार' में निराला ने जगत की स्वार्थमय प्रवृति पर विषाद व्यक्त किया है । संक्षेप में कह सकते हैं कि निराला काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ये ही हैं । प्राय: सभी प्रवृत्तियों के मूल में निराला की मानवतावादी दृष्टि का प्रसार देखने को मिलता है । राष्ट्रीयता, व्यंग्य, विषाद, प्रेम, भक्ति आदि में निराला के मानवतावाद के दर्शन होते हैं । मानव की शक्ति के विश्वासी और उससे करीबी रिश्ता रखने वाले निराला का मानवतावाद न केवल अनुकरणीय है, अपितु जीवन के लिए बहुत बड़ी अनिवार्यता भी है । यही कारण है कि निराला ने मानवता की स्थापना और उसकी मंगलाशा से प्रेरित होकर लिखा है-

मानव मानव से कहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत कृष्ण
अथवा वह नहीं क्लिन्न
भेद कर पर निकलता कमल जो मानवता का
वह निष्कलंक / हो कोई सर ।

6.4 काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष

6.4.1 काव्य-रूप

काव्य-रूप की दृष्टि से निराला का काव्य उनकी प्रगतिशीलता और प्रयोगशीलता दोनों का रूप प्रस्तुत करता है । काव्य-रूप के क्षेत्र में निराला की प्रयोगशीलता की सक्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण उनके द्वारा रचित लम्बी कविताएँ हैं । ऐसी कविताओं में राम की 'शक्तिपूजा', 'कुकुरमुत्ता' और 'वनवेला' को लिया जा सकता है । 'तुलसीदास' प्रबन्धात्मक रचना है । 'राम की शक्तिपूजा' में भी कतिपय समीक्षकों ने प्रबन्धत्व को खोजते हुए उसे महाकाव्योचित गरिमा से युक्त बतलाया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कविता में ऐसी गरिमा विद्यमान है, किन्तु अन्तत: वह लम्बी कविता ही है । 'सरोज स्मृति' हिन्दी में अपने ढंग का शोक-काव्य है । अपनी पुत्री की मृत्यु पर लिखी गयी इस कविता में करुणा भाव की प्रधानता है । 'तुलसीदास' को नये ढंग का प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं । इसमें देश के सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के व्यापक उद्देश्य को सामने रखकर निराला सृजनरत हुए हैं । इसके अतिरिक्त उनके गीत और मुक्तक तो प्रभावशाली हैं ही । स्पष्ट ही काव्य-रूप की दृष्टि से निराला का काव्य पर्याप्त समर्थ और उनकी प्रयोगशील प्रतिभा का परिचायक है ।

6.4.2 काव्य-भाषा

अनुभूति पक्ष की दृष्टि से निराला का काव्य जितना विविधता लिए हुए है, उतना ही प्रौढ़, परिष्कृत और वैविध्यपूर्ण उसका अभिव्यक्ति पक्ष भी है । मन में कसमसाती हुई अनुभूतियाँ जब बाहर आने के लिए उद्वेलित हो उठती हैं तो उन्हें सबसे पहले भाषा

की आवश्यकता होती है । भाषा की दृष्टि से विचार करें तो निराला ने भावना के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है । वे ऐसे रचनाकार के रूप में सामने आये हैं जो भाव को भाषा से कभी अलग करके नहीं देखते हैं । उनके काव्य में भाव-वैविध्य है तो उनकी भाषा भी एक जैसी नहीं रही है । प्रमुख रूप से उनकी भाषा के चार रूप हमारे सामने आते हैं । पहला रूप वह है जिसमें निराला परिष्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं, दूसरा वह है जहाँ उनकी भाषा मधुरता की प्रतिमूर्ति बनी लरजती हुई हमारे सामने आती है, तीसरा रूप सरल और व्यावहारिक भाषा का है और चौथा रूप वह है जहाँ भाषा पूरी तरह चलताऊ है । परिष्कृत और सशक्त भाषा का रूप हमें 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसे काव्यों में देखने को मिलता है । इन काव्यों में संस्कृतनिष्ठ भाषा का जो रूप मिलता है, वह न केवल सामासिक शब्दावली से युक्त है, अपितु समासान्त पदावली और ओजस्वी शब्द-विधान से भी संसिक्त है । माधुर्यपूर्ण और सौष्ठवपूर्ण भाषा को 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'यमुना के प्रति' और 'संध्या सुन्दरी' जैसी कविताओं में देखा जा सकता है । निराला ने जहाँ इस भाषा का प्रयोग किया है, वहाँ उनकी पदावली कोमल, कमनीय और सच्चिकण है । शक्तिपूजा में ओजपूर्ण भाषा भी है तो माधुर्यपूर्ण भाषा भी देखने को मिलती है । संगीत के स्वरों में गुनगुनाती गीतिका की भाषा भी ऐसी ही है । सरल, सुबोध और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग उन कविताओं में मिलता है, जहाँ निराला ने जीवन और जगत के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं । अभिधाप्रधान यह भाषा विधवा, भिक्षुक और 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं में देखने को मिलती है । इसी क्रम में निम्नांकित पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं जिनमें भाषा की परिष्कृति भी है और सुबोधता व सरलता भी-

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है- 'अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते. पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ-
जीवन ढह गया है ।

भाषा का चौथा रूप जिसे बोलचाल की चलताऊ भाषा कहा जा सकता है, निराला की परवर्ती रचनाओं में देखने को मिलता है । इस भाषा में उर्दू और अंग्रेजी की मिश्रित शब्दावली प्रयुक्त हुई है । 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' व 'बेला' की भाषा इसी प्रकार की है । भाषा के इस रूप को अपनाये जाने का कारण यह प्रतीत होता है कि इन रचनाओं में निराला ने खुली आँखों से समाज की समस्त गतिविधियों, स्थितियों और विकृतियों को देखा है । देखकर और महसूस करके उन्होंने जो अनुभव किया है, उसे ऐसी ही भाषा में कह दिया है । उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए-

अबे सुन बे गुलाब

भूल मत, गर पाई खुशबू रंगोआब
खून चूसा खाद का, तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा, कैपिटलिस्ट

इस बोलचाल की चलती भाषा में कहीं-कहीं तो कवि का आक्रोश इतना अधिक बढ़ जाता है कि उसमें 'भदेस' शब्दों की भी भरमार हो गयी है । कवि ने खुलकर इन गालियों का भी प्रयोग किया है, जो रोजमर्रा आवेश में आने पर जन-साधारण में सुनी जाती हैं, जैसे-

1. रोज पड़ा रहा पानी,
   तू हरामी खानदानी ।
2. ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का ।
3. तीन प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर ।
4. लेंडी जमींदारों को आँखों तले रखे हुए ।

भाषा का यह रूप मन में खीझ पैदा करता है । कहाँ तो वह तत्सम भाषा, जो 'भारत के नभ का प्रभापूर्य, शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य' और 'विच्छुरित-वह्नि-राजीव नयन-हत-लक्ष्य-बाण' अथवा 'रावण प्रहार-दुर्वार-विकल वानर कल बलं' और कहाँ उपरिसंकेतित भाषा की चालू प्रकृति के नमूने । ऐसी भाषा को देखकर लगता है कि निराला भाषा के उदात्त शिखरों से उतरकर जमीन के गन्दे खाई-खन्दकों में आ गये हैं । इतने पर भी यह ध्यान रहे कि जीवन की भाषा खाई-खन्दकों में ही रहती है, हिम-शिखरों पर नहीं । फिर निराला तो यह मानते थे कि जैसा भाव वैसी ही काव्य-भाषा हो सकती है । आक्रोश और व्यंग्य के तीव्रतम क्षणों में यदि भाषा ने ऐसा रूप धारण कर लिया है तो इसके लिए निराला कम जिम्मेदार हैं, सामाजिक स्थितियाँ अधिक ।

6.4.3 अलंकार प्रयोग (अप्रस्तुत विधान)

निराला की अलंकार योजना विशिष्ट है । उसमें भावों, विचारों और अनुभूतियों के सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के साथ साथ मानवीकरण, ध्वन्यर्थव्यंजक और विशेषण विपर्यय आदि अलंकारों के विधान में निराला ने औचित्य, सद्यता और मौलिकता पर विशेष जोर दिया है । उनकी मान्यता भी यही रही है - 'प्राय: सभी कलाओं के लिए मूर्ति आवश्यक है । अप्रतिहत मूर्ति-प्रेम ही कल्पना और कला का जन्मदाता है जो भावनाएँ सर्वांग सुन्दर मूर्ति खींचने में जितना विज्ञ है, उतना ही बड़ा कलाकार है ।' अलंकारों में निराला को उपमा विशेष प्रिय रहा है । इस अलंकार का सौंदर्य उनकी अधिकांश कविताओं में देखा जा सकता है । 'विधवा', 'संध्या सुन्दरी', 'शिवाजी का पत्र' और 'जुही की कली' आदि कविताएँ इसका प्रमाण हैं । उनकी उपमाओं में नवीनता भी है, जैसे 'लोग बैठे जैसे चुसे आम हों' और 'गाड़ी आई जैसे खैयाम की रूबाई हो' । उपमा अलंकार की दृष्टि से स्पष्टीकरण हेतु निम्नांकित दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी.

वह दीप-शिखा सी शांत. भाव में लीन.

वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा-सी.

वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन-

दलित भारत की ही विधवा है । (विधवा)

उपर्युक्त पंक्तियों में विधवा की पवित्रता, शुचिता, शांति, दुर्भाग्यशीलता, दीनता और दलितावस्था का प्रभावी चित्रण हुआ है । इसी प्रकार कवि ने संध्या का वर्णन करते हुए उसे परी के समान कहकर संध्या जैसी अरूप एवं निराकार बेला का एक रूपवती एवं साकार सुन्दरी की भाँति चित्रण किया है जिसमें उपमा अलंकार ने अद्भुत मार्मिकता, गतिशीलता और प्रभावोत्पादकता उत्पन्न कर दी है-

दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

संध्या-सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे ।

उपमा के अतिरिक्त रूपक और सांगरूपक भी निराला के काव्य में सर्वत्र बिखरे मिलते हैं- 'स्नेह निर्झर वह गया है, 'पृथ्वी के उठे उरोज मंजु निरुपम, 'मोगल दल बल के जलद यान', 'बिखरी छूटी शफरी अलकें', 'निष्पात नयन नीरज पलकें' आदि । सांगरूपक अलंकार की छटा 'तुलसीदास' काव्य में देखते ही बनती है । निराला का तीसरा प्रिय अलंकार मानवीकरण है । अनेक मानवीकरणों की श्रृंखला में संध्या सुन्दरी का मानवीकरण सर्वप्रिय और सर्वप्रसिद्ध है । मानवीकरण के साथ ही समासोक्ति अलंकार का विधान भी निराला की कविताओं में हुआ है ।

6.4.4 प्रतीक प्रयोग

निराला के काव्य में प्रयुक्त शिल्प को प्रतीकों का भी सहयोग प्राप्त हुआ है । अदृश्य के लिए किए गए दृश्य संकेतों के रूप में प्रतीकों की काव्योपयोगिता असंदिग्ध है । निराला के अधिकांश प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से लिए गए हैं । उनके काव्य में पारम्परिक और नवीन दोनों प्रकार के प्रतीक मिलते हैं, किन्तु वे भावपरक अधिक हैं । जुही की कली नवपरिणीता का प्रतीक है । 'नवबेला', 'संध्यासुन्दरी', 'शेफालिका' आदि रचनाओं में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । बनबेला त्याग व तपस्या की प्रतिमूर्ति संन्यासिनी नारी का प्रतीक है । कवि ने बादल को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है । कहीं तो बादल विद्रोह का प्रतीक है, कहीं क्रांति का और कहीं निर्बन्ध, स्वच्छंद और वीर पुरुष का । एक अन्य 'बादल राग' में बादल चंचल सुकुमार शिशु का और पाँचवें में उस लघु शिशु का जो किरण का हाथ थामकर मुक्त आकाश पर चढ़ता है । छठे 'बादल राग' में बादल पुन: विप्लवकारी और क्रांतिकारी व्यक्ति का प्रतीकत्व लिए हुए है । बादल के इस विविधात्मक प्रतीकों के द्वारा कवि ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का

परिचय दिया है । 'कण' दीन और दलित व्यक्ति का प्रतीक है और रास्ते का फूल असहाय व्यक्ति का व शेफालिका यौवनागम को प्राप्त तरुणी युवती का प्रतीकार्थ रखती है । प्राकृतिक प्रतीकों में ही प्रभात को अबोध बालक का, बसन्त को तरुण नवजागरण का, ज्येष्ठ मास को क्रूर और आतंकवादी शासक का और एक अन्य स्थान पर निष्काम कर्मयोगी का प्रतीकत्व प्रदान किया गया है । परवर्ती व्यंग्य प्रधान रचनाओं में गुलाब और कुकुरमुत्ता दोनों को नया प्रतीकार्थ प्रदान किया गया है । गुलाब शोषक एवं पूँजीपति वर्ग का तथा कुकुरमुत्ता श्रमिक, कृषक और सर्वहारा वर्ग का प्रतीक माना गया है । स्पष्ट ही निराला ने प्राकृतिक उपकरणों को ही प्रतीकत्व प्रदान किया है, किन्तु ये प्रतीक नव्यार्थ से मण्डित और कवि के मनोगत भावों को सरलता व सटीकता से प्रस्तुत करने में सक्षम हैं ।

6.4.5 बिम्ब प्रयोग

बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया में भाव, आवेग और ऐन्द्रियता आदि कुछ ऐसे तत्व हैं, जिन्हें सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है । इनकी उपस्थिति बिम्ब को जीवन्त या प्राणवान बनाती है । बिम्ब कई प्रकार के हो सकते हैं । निराला के काव्य में पाये जाने वाले बिम्ब प्रमुख रूप से तीन प्रकार के हैं - विराट बिम्ब, अलंकृत बिम्ब और संवेद्य बिम्ब। इनके अतिरिक्त निराला ने भाव-बिम्बों का प्रयोग भी अनेक स्थानों पर किया है। भाव-बिम्ब अपनी मधुरता, मसृणता और भावाकुलता के कारण पाठक के मन को मोह लेते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं है कि निराला द्वारा प्रयुक्त बिम्बों में दृश्यात्मकता या चाक्षुष गुण सर्वत्र विद्यमान है । निराला को बिम्ब-प्रयोग में जो सफलता प्राप्त हुई है, उसका कारण औचित्य, संगठन, परिचितता ताजगी और प्रभविष्णुता है । निराला ने अधिकांशत: विराट बिम्बों का प्रयोग किया है । कवि विराट बिम्बों के माध्यम से पृथ्वी की समस्त विस्तृति उपस्थित कर सका है । गति और महाकाश का यह विराट किन्तु गतिशील बिम्ब पाठक की चेतना में समा जाता है-

धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि ताराहर
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर, क्षर रेखा ।

यों विराट बिम्ब राम की शक्तिपूजा में कहीं अधिक हैं । कारण यह है कि वहाँ कवि को विराट वर्णन के कई अवसर हाथ लग गये हैं । सामग्री लेकर तुलसी बाजार से लौटते हैं तो देखते हैं कि संध्या की सुषमा आकाश नीलम से बनी सीढ़ियों पर धीरे-धीरे चरण रखती हुई ऊपर चढ़ रही है । शनै: शनै: आकाश में नीलिमा की तहों पर साँझ की रंग-बिरंगी शोभा छाती जा रही है । यह बिम्ब विराट तो है ही, सुकुमार भी कम नहीं है और पहले वाले की अपेक्षा कहीं अधिक मनहरण है । इन बिम्बों में कुछ तो प्रकृत्या विराट हैं, किन्तु ऐसे बिम्ब भी कम नहीं हैं जो सूक्ष्म से विराट की ओर बढ़ते गये हैं और आखिर में अपने विस्तार से सहज ही आकर्षक बन गये हैं । रत्नावली के

सौंदर्य-वर्णन में भी अलंकृति और औदात्य से मिलकर बड़े प्रभावशाली संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत किए गए हैं । विशेषकर जाते हो कहीं तुले तिर्यक और 'यह श्री पावन, गृहिणी उदार से प्रारम्भ होने वाले छंदों में बिम्बगत संश्लिष्टता मिलती है । ये वे बिम्ब हैं, जिनमें गतिशीलता और प्रभविष्णुता दोनों का समावेश है । इस बिम्ब से मादकता छलकी पड़ती है । वह कहती है- 'कहाँ जाते हो?' यानि तुम्हारे बिना हम कैसे रहेंगे? 'फिर लिए मूँद वे पल पक्ष्मल इंदीवर के-से कोश विमल' में तो दृश्य गुण इतना स्पष्ट है कि लगता है कि जैसे रला नील कमल कोश के समान बड़ी-बड़ी बरौनियों वाली आँखों को बंद किए सामने खड़ी हो । उसके रूप की समस्त छवि का, एक-एक भाव मुद्रा का सम्पूर्ण सौंदर्य बिम्ब में बँध गया है । इस बिम्ब में आकुलता, मधुर फटकार, शिकवा-शिकायत की मुद्रा, प्रेमावेशजनित नशीली आँखों और प्रेमविह्वला नारी का रसपूर्ण बिम्ब देखा जा सकता है ।

'प्रिय यामिनी जागी' शीर्षक कविता में प्रयुक्त बिम्ब भी सहज ही हमारा ध्यान आकर्षित करता है । इस कविता में प्रयुक्त बिम्ब सहज अलंकृति से प्रारम्भ होकर स्पष्टत: चाक्षुष गतिशील बिम्ब का उदाहरण प्रस्तुत करता है । प्रत्येक पंक्ति में बिम्ब क्रमश: आगे बढ़ता जाता है और पाठक की चेतना उसके साथ स्वत: ही बँधती चली जाती है । उदाहरणार्थ यह अंश देखिए-

(प्रिय) यामिनी जागी ।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख तरुण-अनुरागी ।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी. तड़ित-
द्युति ने क्षमा माँगी ।
हेर उर-पट फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल
गेह में प्रिय-नेह की जय-माल
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग में तागी ।

'संध्या सुन्दरी' शीर्षक कविता भी बिम्ब-प्रयोग की दृष्टि से बड़ी आकर्षक बन पड़ी है । इसमें मानवीकरण का सहारा लेकर निराला ने जीवन्त बिम्ब प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार 'स्नेह निर्झर बह गया है, रेत ज्यों तन रह गया है' कविता में भी सहज अलंकृति के साथ बिम्ब को प्रस्तुत किया गया है । इस कविता के अन्तिम भाग में स्मृति बिम्ब बड़ा आकर्षक बन पड़ा है । कहने का अभिप्राय यह है कि निराला बिम्ब-प्रयोग में अत्यन्त सफल कवि के रूप में सामने आये हैं । निराला के काव्य में संवेद्य

बिम्बों की भी कमी नहीं है । वर्ण, नाद, दृश्य, घ्राण के आधार पर मूर्तित होने के कारण ये बिम्ब कहीं अधिक सूक्ष्म और अनुभवगम्य होते हैं । केवल दृश्य और नाद बिम्ब ही ऐसे हैं जो थोड़े बहुत स्पष्ट कहे जा सकते हैं । कई बार तो ये सभी ऐसे मिल जाते हैं कि उनकी अलग-अलग पहचान ही कठिन हो जाती है । तुलसीदास में ध्वनि, वर्ण और दृश्य बिम्बों की बहुतायत है । शब्द नाद के माध्यम से बिम्ब योजना करने में निराला को विशेष सफलता मिली है । कई बार प्रसाद भी इस क्षेत्र में पीछे छूटते दिखाई देते हैं । कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो सकती है । मुगलों की सेना के दल ने भारत को रौंद डाला और आसुरी शक्तियों के जल-प्लावन में सारा देश डूबता जा रहा है । कवि ने भयंकरता की प्रस्तुति के लिए 'ल' की आवृत्ति और जल के अजस्त्र प्रवाह के लिए 'र' की आवृत्ति से जिस नाद बिम्ब का विधान किया है, वह प्रभावशाली है । इतना ही नहीं, आकाश में गरजते हुए घन पुंज, टूटते हुए दाहक वज और नीचे अपार जल संघात का धाराप्रवाह प्लावन अप्रस्तुत विधान के साथ ध्वनि-बिम्ब को भी सजीव कर देता है-

मोगल-दल-बल के जलद-यान
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान ।
है बहा रहे दिग्देश ज्ञान शर-खरतर
छाया ऊपर घन-अंधकार-
टूटता वज्रदह दुर्निवार ।

इसी प्रकार ध्वनि बिम्ब का यह उदाहरण देखिए-

'नीचे प्लावन की प्रलय-धार ध्वनि हर-हर'
'उन्मुक्त गुच्छ, चक्रांक पुच्छ
लख नर्तित कवि-शिखि. मन समुच्च' ।

और निम्नांकित पंक्तियों में 'र' की आवृत्ति में रला का स्वर ही बरसता जान पड़ता है-

कुछ समय अनन्तर, स्थित रहकर
स्वर्गीयाभा वह स्वरित प्रखर
रबर में झरकर जीवन भरकर ज्यों बोली ।

निराला के काव्य में नाद-बिम्बों का प्रयोग भी बड़ी कुशलता के साथ किया गया है । ऐसे बिम्बों की दृष्टि से निराला कृत तुलसीदास काव्य विशेष महत्व रखता है । निराला ने भारत के तमसपूर्य. दिग्मण्डल, मोगल-दल-बल-जलधि, घन-नीलालका छाया-श्लथ, प्राणों के चुम्बन, धूल-धूसरित छवि, रंग पर रंग छोड़ना आदि अनेक नादात्मक शब्दों का प्रयोग करके ध्वनि-बिम्बों की सार्थक योजना की है।

6.4.6 छन्द प्रयोग

निराला ने अपनी कविता में 'छन्द बंध' ही नहीं खोले, अपितु 'नवगीत नवलय ताल छन्द नव के कलात्मक प्रयोग से संगीत की विविध स्वरलहरियों और मूर्च्छनाओं के अन्तरतम के भावबोध को झंकृत कर देने वाले नाद-तत्व को सफल कर दिखाया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि निराला का छन्द-शिल्प उनका अपना रहा है । उन्होंने अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । इसी कारण उनका काव्य छन्द-प्रयोग की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है । उन्होंने छन्द विषयक प्राचीन मान्यताओं में परिवर्तन किया और मुक्त छन्द की ऐसी पद्धति का शुभारम्भ किया जिससे आगे के कवि स्वच्छन्द छन्द की ओर बढ़ सकें । निराला ने जिन छंदों को अपनाया, उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो सममात्रिक सान्त्यानुप्रास से परिपूर्ण हैं, कुछ विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास से सम्बन्धित हैं और कुछ स्वच्छन्द छन्द के सौंदर्य से युक्त हैं । 'परिमल' जैसे काव्य-संग्रह में अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं जिनमें सममात्रिक सान्त्यानुप्रास की योजना हुई है। अन्त्यानुप्रास के साथ-साथ मात्राओं में पर्याप्त समानता भी है । 'तुम तुंग हिमालय मृग और मैं चंचल गति सुर-सरिता' ऐसी ही कविता है । निराला ने तुलसीदास में भी ऐसे छंदों को काम में लिया है । तुलसीदास में कवि ने छः पंक्तियों का एक ऐसा मौलिक छन्द रचा है जिसमें प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ व पंचम चरणों में मात्राएँ तो समान हैं, किन्तु तुकें केवल प्रथम एवं द्वितीय की तथा चतुर्थ और पंचम की मिलती हैं । इसी सममात्रिक अन्त्यानुप्रास वाले छंदों में कवि के वे सुमधुर गीत भी आते हैं जो गीतिका में स्थान पाए हुए हैं । 'बेला' काव्य-संग्रह में कुछ गजलें ऐसी है जो मन को प्रभावित करती हैं । विषममात्रिक सन्त्यानुप्रास वाली कविताएँ वे हैं, जिनमें अन्तिम तुके तो मिलती हैं, किन्तु जिनके चरणों में मात्राओं की समानता कहीं भी नहीं दिखाई देती है। यदि कहीं समानता है भी तो उसे कवि की अनायास उपलब्धि कहा जा सकता है । इन कविताओं में कवि पहले की तुलना में अधिक स्वतंत्र और स्वच्छन्द गति से आगे बढ़ता गया है । हाँ, अन्त्यानुप्रास की ओर कवि की दृष्टि अवश्य रही है । परिमल काव्य-संग्रह के द्वितीय खण्ड में ऐसी कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ है । इसी वर्ग में वे कविताएँ आती हैं जिनके पदों में प्रथम और द्वितीय चरणों की तुके तो नहीं मिलतीं, किन्तु केवल द्वितीय और चतुर्थ चरणों की तुकें मिल जाती हैं, बाकी चरण अतुकान्त ही रहे हैं । उन कविताओं को भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है, जिनके पदों में से प्रथम, तृतीय और पंचम चरण की तुर्क मिल जाती हैं और अन्य चरण अतुकान्त ही बने रहते हैं । निराला के छन्द-विधान में तीसरे स्थान पर वे कविताएँ आती हैं जो स्वच्छन्द छन्द में लिखी गयी हैं । इस वर्ग में जो कविताएँ स्थान पाए हुए हैं, उनमें किसी प्रकार के छंद का न तो कोई बंधन है और न मात्राओं का ही कोई क्रम है । परिमल के तृतीय भाग में ऐसी स्वच्छन्द छंद वाली कविताएँ संकलित हैं । उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए-

विजन-बन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-परी-स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल-कोमल-तनु-तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, पत्रांक में,
अथवा-
घेर अंग अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की,
ज्योतिर्मय-लता सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु-तन ।

निराला ने 'बेला' संग्रह के माध्यम से उर्दू की गजल शैली को लेकर भी प्रयोग प्रस्तुत किए हैं । लोकगीतात्मक छंद भी निराला की अर्चना, आराधना में मिल जाते हैं । गजल के प्रयोग सार्थक हैं, किन्तु कहीं कहीं वे अटपटे और बोझिल हो गये हैं । 'यों यह टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी मगर/खिलकर सुगंध से किसी का दिल बहला गया में हिन्दी-उर्दू छंद का सौंदर्य आकर्षक रूप ले
कर आया है ।

6.5 सारांश

समग्रत: कहा जा सकता है कि निराला का काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिन्दी कविता की उपलब्धि है। छायावाद, प्रगतिशील और प्रयोगशील तत्वों का समीकरण और जीवनोपयोगी चिन्तना के रंगों से रंगा निराला का काव्य भावी कविता के विकास को भी सूचित करता है और समसामयिक साहित्यिक शिल्प को भी । उसमें गम्भीरता और मधुरता के साथ-साथ औदात्य की गरिमा और भावांकन की स्निग्धता, चिन्तना का भव्य आलोक तो बरस ही रहा है जन-सामान्य की भाषा का सीधापन भी अनेक स्थलों पर झाँक जाता है ।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निराला के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. "निराला की काव्य-यात्रा एक जैसी नहीं रही है, वह निरन्तर गतिशील बनी रही है।" इस कथन की सोदाहरण और सटीक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए ।
3. "निराला के भावलोक में प्रेम, श्रृंगार और रागतत्व की प्रधानता तो है ही, उसमें घनीभूत विषाद की छाया भी देखने को मिलती है ।" इस कथन की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत कीजिए।
4. "निराला का प्रकृति-सौंदर्य छायावादी कविता के मेल में होते हुए भी नवचेतना का स्वर लिए हुए है ।" इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

5. ''निराला के काव्य में कल्पना-वैभव, आध्यात्मिकता और भक्ति-भावना तो देखने को मिलती ही है, उसमें व्यंग्य और विनोद का स्वर भी पूरी तरह विद्यमान है ।'' सोदाहरण समीक्षा प्रस्तुत कीजिए ।
6. ''सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीयता का मिला-जुला स्वर निराला-काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है ।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।
7. निराला की काव्य-भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
8. निराला-काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों, बिम्बों और अलंकार-सौंदर्य को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
9. ''निराला का काव्य छन्द-प्रयोग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।'' इस कथन को दृष्टिपथ में रखते हुए निराला के छन्द-प्रयोग का वैशिष्ट्य निरूपित कीजिए ।

6.7 संदर्भ ग्रंथ

1. मधुकर गंगाधर : निराला : जीवन और साहित्य,
2. डॉ. रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य-साधना
3. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला
4. डॉ. धनंजय वर्मा : निराला का काव्य और व्यक्तित्व
5. डॉ. बच्चनसिंह : क्रांतिकारी कवि निराला
6. डॉ. हरिचरण शर्मा : निराला की प्रबन्ध-सृष्टि
7. डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना

♦♦♦

इकाई- 7 महादेवी वर्मा का काव्य

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कवि परिचय

7.2.1 जीवन-परिचय

7.2.2 रचनाकार व्यक्तित्व

7.2.2.1 कवयित्री महादेवी

7.2.2.1.1 काव्य प्रेरणा और शैशव प्रयास

7.2.2.1.2 वयस्क काव्य रचना संसार

7.2.2.2 गद्यकार महादेवी

7.2.2.2.1 संस्मरणकार

7.2.2.2.2 निबन्धकार

7.2.2.3 अन्य साहित्यिक गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ

7.2.3 कृतियाँ

7.3 काव्य वाचन तथा सन्दर्भ सहित व्याख्या

7.3.1 इस एक बूँद आँसू में....

7.8.2 जो तुम आ जाते एक बार...

7.3.3 धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी...

7.3.4 बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ...

7.3.5 शलभ मै शापमय वर हूँ...

7.3.6 मैं नीर भरी दुःख की बदली....

7.3.7 टूट गया वह दर्पण निर्मम....

7.3.8 चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना....

7.3.9 पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला....

7.3.10 सब आँखों के आँसू उजले

7.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के पहले आप छायावाद के आधार स्तंभ कवियों-प्रसाद, पन्त, निराला के जीवन और काव्य से बखूबी परिचित हो चुके होंगे । यह इकाई छायावाद की प्रमुख

कवयित्री महादेवी वर्मा के जीवन और काव्य से सम्बन्धित है । इस इकाई के अध्ययन से आप :

- महादेवी वर्मा के जीवन से परिचित हो सकेंगे,
- रचनाकार-व्यक्तित्व के निर्माण के प्रेरक कारणों, स्थितियों, विकासक्रम और उसकी दिशाओं को समझ सकेंगे,
- रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- चुनी हुई कविताओं का वाचन और उनकी व्याख्याओं का आस्वादन कर सकेंगे,
- ऐसे सन्दर्भ ग्रंथों की सूचना प्राप्त कर सकेंगे, जो महादेवी के जीवन और कृतित्व के बारे में आपके ज्ञान की वृद्धि करने में सहायक होंगे ।

7.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग के बाद काव्य और भाषा दोनों दृष्टि से उनसे समृद्ध युग छायावाद है । प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा का सीधा ताल्लुक इसी युग से है । चारों छायावाद के आधार-स्तंभ कवि हैं । विशेष रुप से उल्लेखनीय बात यह है कि छायावाद के पुरुष कवियों के बीच महादेवी वर्मा छायावाद की सबसे प्रसिद्ध अन्तिम कवयित्री हैं । छायावाद की वैयक्तिक अनुभूति, आध्यात्मिकता, रहस्यात्मकता, वेदना आदि-विशेषताओं की दृष्टि से जहाँ वे अपने अग्रज छायावादी कवियों के साथ खड़ी दिखाई पड़ती हैं, वहीं नारी की निजी-सामाजिक अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका अपना विशिष्ट रचनात्मक व्यक्तित्व है, अपनी पहचान है । इसका कारण यह है कि वे स्वयं नारी है । ब्रजभाषा से काव्य रचना की शुरुआत करके वे खड़ी बोली की काव्य रचना में आयी थीं और अन्त तक उसी में कविता और गद्य लिखती रही । उनकी रचनाओं की संख्या प्रसाद, पंत, निराला से शायद ही कम हो । उनकी काव्य रचना में प्रसाद, पंत, निराला की तरह न तो चढ़ाव-उतार है और न ही वैसी विविधता और व्यापकता, लेकिन यदि स्त्री संवेदना और अभिव्यक्ति की बात की जाए तो उनकी कविताएँ छायावादी काव्य का सर्वाधिक जगह घेरती है और उसे गहराई भी देती हैं । उनकी कुछेक कविताएँ ऐसी हैं जो प्रकृति प्रेम और स्वाधीनता आन्दोलन को स्वर देती है । कुल मिलाकर यही उनकी कविता का दायरा है ।

काव्य रचना के साथ महादेवी ने आधुनिक हिन्दी गद्यलेखन को अपना नया तेवर देकर समृद्ध बनाया है । उनके गद्य आलेखन में वैविध्य है । संस्मरण के आलेखन में वे छायावाद की सबसे बड़ी लेखिका है । अछूते विषयों को निबन्ध का विषय बनाकर उन्होंने निबन्ध विधा को समृद्ध किया । उन्होंने भारतीय स्त्रियों से संबद्ध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक समस्याओं को आधार बनाकर ऐसे विचारात्मक निबन्धों की रचना की, जिसकी ओर उस युग के निबंधकारों का विशेष ध्यान नहीं गया था । इसके अलावा उन्होंने अनेक ललित निबंधों की रचना की । इस

प्रकार महादेवी ने छायावादी कविता और गद्य दोनों को समृद्ध करके हिन्दी साहित्य के भंडार को बढ़ाने में मदद की । यदि उनके काव्य के साथ गद्य को मिलाकर देखा जाय, तो छायावाद के रचनाकारों से वे अपना रुचि वैभिन्नय प्रकट करती है और उसमें अपना विशिष्ट योगदान देती हैं । कवयित्री, रेखाचित्रकार, निबंधकार, चित्रकार, साहित्य-संरक्षिका, समाज सेविका आदि उनके व्यक्तित्व के विविध परिपार्श्व हैं ।

7.2 कवि परिचय

महादेवी वर्मा का जन्म संपन्न मध्यवर्गीय कायस्थ परिवार में सन् 1907, होली के दिन उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद में हुआ था । वे गोविन्द प्रसाद वर्मा और हेमरानी देवी की पहली संतान थी । कुलदेवी दुर्गा से बड़ी मान-मनौती के बाद उनका जन्म हुआ था। इसी से प्रेरित होकर दादा ने उनका नाम 'महादेवी' रखा था । पिताजी संस्कारों से आर्यसमाजी, पेशे से अंग्रेजी के अध्यापक थे और माताजी परम धार्मिक वैष्णव स्वभाव की गृहिणी थीं । घर में किसी प्रकार का अभाव न था । इसलिए महादेवी का बचपन बड़े लाड़-प्यार और ठाट-बाट से बीता ।

महादेवी को शिक्षा और साहित्य के संस्कार विरासत में मिले थे । शिक्षा का संस्कार उन्हें अपने पितृपक्ष से मिला था । दादा उर्दू-फारसी के, पिताजी अंग्रेजी के विशेष जानकार थे । वे शिक्षा के अनन्य प्रेमी थे और आर्यसमाजी होने के कारण लड़कियों की शिक्षा- दीक्षा के प्रबल समर्थक भी । महादेवी की प्राथमिक शिक्षा इन्दौर के मिशन स्कूल में हुई, इसके अलावा घर पर पिता ने हिन्दी, संगीत, चित्रकला की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी । दादा के विशेष आग्रह के चलते नौ वर्ष की अवस्था में उनका बालविवाह कर दिया गया था । वे कुछ दिनों के लिए ससुराल गयीं और ससुर की शिक्षा विरोधी मानसिकता के कारण उनकी पढ़ाई में बाधा उपस्थित हुई । शादी के एक साल के अंदर संयोगवश ससुर की मृत्यु हो जाने और महादेवी के ससुराल न जाने और पढ़ने की जिद के कारण दुबारा उनके आगे की विधिवत शिक्षा की व्यवस्था इन्दौर से दूर प्रयाग के क्रास्टवेट कॉलेज में की गई । वहीं से उन्होंने मिडिल, एण्ट्रेंस, इन्टरमीडियेट तक की परीक्षाएँ पास कीं । बचपन से महात्मा बुद्ध के प्रति विशेष अनुराग के चलते बौद्ध भिक्षुणी बनने के विचार ने जन्म लिया । महोदवी के जीवन का सबसे संघर्ष और संकट का दौर यही था, जिसे उन्होंने "मेरी साहित्य यात्रा कविता के संदर्भ में' इस प्रकार याद किया है-

"फिर बड़े संघर्ष का युग भी पार किया मैंने । हमारे यहाँ बालिकाएँ हिन्दी बस इतनी जानती थी कि रामचरितमानस पढ़ लें, चिट्ठी-पत्री लिख ले, इससे अधिक कोई पढ़ाना नहीं चाहता था । मैंने कहा 'नहीं, मैं पढूँगी । बिना जाने कि यह सत्याग्रह है । मैंने कहा, भोजन नहीं करूँगी, मैं उठूँगी ही नहीं, नहीं तो मुझे पढ़ने के लिए भेजा जाए' । वहाँ पढ़ने की व्यवस्था नहीं थी इसीलिए मैं यहाँ (प्रयाग में) आ गई । आप कल्पना कीजिए कि समाज से संघर्ष, परिवार से संघर्ष और एक प्रकार से सारी व्यवस्था से

संघर्ष, उसके बीच में पढ़ना है, उसके बीच में लिखना है, लेकिन प्रयाग में आकर मुझको कुछ मुक्त वातावरण मिला । फिर भी मैं समझती हूँ मेरी अवस्था में दूसरी कोई बालिका या महिला किशोरी संभवत: हार मान लेती । मैंने नहीं मानी और लिखती रही । ब्रजभाषा में लिखा, फिर खड़ी बोली में लिखा, किन्तु पढ़ना चाहती थी वेद । उसमें क्या लिखा हैं, जानना चाहती थी । यह भी एक नयी बात थी । स्त्रियों को वेदाध्ययन तो व्यर्थ था । हमारे यहाँ कोई पंडित सुनते ही अप्रसन्न हो जाता था । आज की स्थिति नहीं थी । आप आज से साठ वर्ष पहले की कल्पना कीजिए कि जब एक पंद्रह-सोलह वर्ष की लड़की कहती है कि वह गृहस्थ नहीं होगी, वह भिक्षु होगी । कल्पना कीजिए उसने कितना कष्ट, कितना संघर्ष झेला होगा, किन्तु संघर्ष ने मुझे कभी पराजित नहीं किया । हार नहीं मानी मैंने, दूसरी एक जो सबसे बड़ी बात है कि मन में कोई कटुता नहीं रही मेरे । कोई ऐसा घाव नहीं रिस रहा है कहीं कि जिसकी मुझको बड़ी याद हो कि यह चोट है । यह भी ईश्वर की कृपा ही मानती हूँ नहीं तो जीवन बहुत कटु हो सकता था । और यूं भी है कि परिवार ने मुझको बहुत सा सहयोग भी दिया, जब उन्होंने समझा कि संभवत: यह कुछ विशेष है । इन्हें बाध्य किया जायेगा तो यह मर जायेगी । यह समझकर सबने मुझको क्षमा ही किया ।"

बी. ए. की परीक्षा पास करने के बाद वे नैनीताल के महास्थविर बौद्ध से मिली, लेकिन अपने प्रति उनके भेदभावपूर्ण व्यवहार से खिन्न होकर उन्होंने बौद्ध भिक्षुणी बनने का विचार हमेशा के लिए छोड़ दिया । इसी दौरान वे महात्मा गांधी के सीधे संपर्क में आयीं और उनकी प्रेरणा से सामाजिक कार्यो से जुड़ गई । प्रयाग के आस-पास के गाँवों में जाकर गरीब बच्चों को पढ़ाना उनके दैनिक कार्यक्रम का हिस्सा बन गया था । इसी दौरान अस्वस्थता के कारण शिक्षा में एक साल का व्यवधान फिर आ गया । स्वस्थ होने के पश्चात उन्होंने 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. पास किया । बाद में वे आर्य महिला विद्यापीठ से जुड़ी, आगे प्रधानाचार्य के रूप में कार्यभार संभाला । अन्ततः वे उसके कुलपति पद के कार्यभार से मुक्त हुई । महादेवी दुबारा न तो अपने पति के घर गयीं और न दूसरी शादी ही की । एक स्वतंत्र, सुशिक्षित मध्यवर्गीय स्त्री का जीन जिया-दाम्पत्य और कोखवाली माँ से मुक्त । सन् 1987 में वे हमेशा के लिए हमारे बीच से चली गई ।

7.2.2 रचनाकार-व्यक्तित्व

7.2.2.1 कवयित्री महादेवी

2.2.1.1 काव्य की प्रेरणा और शैशव प्रयास

काव्य रचना के संस्कार महादेवी को अपने बचपन में मातृपक्ष से विरासत में सहज रूप से प्राप्त हुए थे । उनके नाना स्वयं ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । माता कवयित्री तो नहीं थी, लेकिन महादेवी के बालमन में कविता का बीज बोने वाली वही थीं । महादेवी ने स्वयं 'यामा' की भूमिका 'अपनी बात' में स्वीकारा है कि 'बाबा के उर्दू-फारसी के

अबूझ घटाटोप में, पिता के अंग्रेजी ज्ञान के अनबूझ कोहरे में मैंने माँ की प्रभाती और लोरी को ही समझा और उसी में काव्य की प्रेरणा को पाया' । उनके मन में सबसे पहले अपने घर के ठाकुर जी के ही संबंध में सहानुभूति जागी और तुकबंदी शुरू कर दी।

तुकबंदियों के दौर में ही एक दूसरे प्रकार की काव्य प्रवृति का आरंभ हुआ, वह है- ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति काव्यालेखन। महादेवी ने अपने समस्यापूर्ति वाली कविताओं के प्रेरक पुरुष के रूप में एक पंडितजी को याद किया है जो घर पर उनको पढ़ाने आते थे और ब्रजभाषा काव्य और समस्यापूर्ति के बड़े प्रेमी थे। इन्हीं पंडितजी की प्रेरणा और कृपा से महादेवी ने पहली समस्यापूर्ति "हँसी फूलिहौ' लिखी, जिसकी चौथी पंक्ति है- "फूल तुम्हें कहि हैं हम तो जब काँटन में धँसि के हँसि फूलिहौं' । कुछ समस्यापूर्तियाँ महादेवी ने अपने आप रची हैं। ये समस्यापूर्तियाँ महादेवी की किशोरावस्था के हिसाब से अद्भूत तो है ही, बहुत मार्मिक भी हैं । 'बोलिहैं नाहीं' की उत्तरार्द्धवाली और 'खुदी न गई' समस्यापूर्तियाँ देखिए-

आँसुन सो अभिषेक कियो पुतरी में निराजन ज्योति जराई,
साँसन मैं गुहिकें सपने इक फूलन माल गरे पहिराई,
तीनहुँ लोक के ठाकुर तौ अपनी रचना में गये हैं हिराई,
पीर की मूरत ही हमने अब तो मन मंदिर में ठहराई।

बिन बोये हुए बिन सींचे हुए न उगा अंकुर नहिं फूल खिला,
नहिं याती संजई न तेल भरा, न उजाला हुआ नहिं दीप जला,
तुमने न वियोग की पीर सही, नहिं खोजने आकुल प्राण चला,
तुम आपको भूल सके न कभी, जो खुदी न गई तो खुदा न मिला ।

इनकी भाषा और छंद-ब्रजभाषा और छंद सवैया-पुराने हैं, लेकिन इसमें तो बात सबसे ज्यादा ध्यान आकर्षित करती है, वह है इनमें महादेवी का अपना निराला रंग, अंदाज और अपनी आवाज और यही उनकी समस्यापूर्तियों को प्रचलित परिपाटी की रूढ़ समस्यापूर्तियों से अलग कर देती हैं। महादेवी की ब्रजभाषा की कविताओं में 'पीर की मूरत' या 'वियोग की पीर' वाला संस्कार तो बचपन में ही पड़ गया था और वह उनकी आगे की खड़ी बोली की कविताओं में भी जीवन भर छाया रहा।

'महादेवी की बाल्या और किशोरावस्था द्विवेदी युग में बीती। कहते हैं कि हर एक नये युग की एक अपनी माँग होती है, उसका अपना एक आकर्षण होता है । खड़ी बोली उस युग के हिन्दी क्षेत्र के स्वाधीनता आंदोलन की माँग थी और अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिन्दी की अन्य सभी बोलियों से सर्वाधिक संभावनाशील काव्य भाषा भी । स्वयं द्विवेदी जी गद्य-पद्य की एक भाषा के रूप में खड़ी बोली के प्रबल समर्थक और प्रचारक थे । उनकी पत्रिका 'सरस्वती' खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार का 'मुख पत्र' थी । उन्होंने अपने युग के दो सबसे बड़े कवियों-मैथलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह

उपाध्याय को खड़ी बोली में काव्य रचना के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया था । उन्हीं की प्रेरणास्वरूप गुप्तजी की भारतभारती (1912), उपाध्यायजी की प्रियप्रवास (1914) जैसी रचनाएँ खड़ी बोली में सामने आयीं और खूब लोकप्रिय हुईं। महादेवी वर्मा के पिता अंग्रेजी के अध्यापक थे, लेकिन खड़ी खड़ी बोली के विरोधी नहीं थे। वे स्वयं अपने घर में 'सरस्वती' पत्रिका मँगवाते थे। पंडित जी की तरफ से खड़ी बोली में लिखने का प्रोत्साहन न होने पर वे अपने और महादेवी के युग और वातावरण के अनिवार माँग और आकर्षण का क्या करते, जिसमें वे स्वयं पैदा हुए थे। महादेवी ने लिखा है कि 'समस्यापूर्ति' में तो मैं बचपन में ही ठोंक पीटकर वैद्यराज बना दी गयी थी। खड़ी बोली की तुकबंदी मुझे वातावरण से अनायास प्राप्त हो गयी थी।' खड़ी बोली के कवियों के प्रति अपने दुर्निवार आकर्षण के अत्यन्त रोचक प्रसंग का जिक्र महादेवी ने अपने गुप्तजी वाले संस्मरण में किया है।" उन्हीं दिनों सरस्वती पत्रिका और उसमें प्रकाशित गुप्तजी की रचनाओं से मेरा नया परिचय हुआ। बोलने की भाषा में कविता लिखने की सुविधा मुझे बार-बार खड़ी बोली की कविता की ओर आकर्षित करती थी। इसके अतिरिक्त रचनाओं से ऐसा आभास नहीं मिलता था कि उनके निर्माताओं ने मेरी तरह समस्यापूर्ति का कष्ट झेला है। उन कविताओं के छंद-बंद भी सवैया छंदों से सहज जान पड़ते थे और अहो, कहो आदि तुक तो मानो मेरे मन के अनुरूप ही गढ़े गये थे। अन्त में मैंने "मेघ बिना जल वृष्टि भई' का निम्न पंक्तियों में कायाकल्प किया- '

"**हाथी न अपनी सूँड में यदि नीर भर लाता अहो**,

तो किस तरह बादल बिना जल वृष्टि हो सकती कहो।"

फिर तो कुछ दिनों तक खड़ी बोली की तुकबंदियाँ और उनमें अहो, कहो चलता रहा। इसी दौरान एक और सुखद संयोग घटित हो गया कि महादेवी किशोरी कवयित्री सुभद्राद्यारी चौहान के परिचय में आ गयी। हुआ यूँ कि वे प्रयाग के जिस क्रास्थवेट कॉलेज में पाँचवी में पढ़ रही थीं, वहीं सातवीं कक्षा में सुभद्राकुमारी चौहान भी पढ़ रही थीं। उन्हें जब महादेवी के कविता लिखने का पता चला तो उन्होंने पूरे कालेज में जाहिर कर दिया और 'अच्छा लिखती हो', चलो 'अच्छा हुआ अब दो साथी हो गये' कहते हुए महादेवी को लिखने के लिए प्रोत्साहित भी किया। महादेवी का समस्यापूर्ति जैसी श्रमसाध्य कविताओं से पूरी तरह पीछा सुभद्राकुमारी ने संसर्ग में आने, समस्यापूर्तियों पर उनके हँसने से छूटा । समस्यापूर्ति के साथ ब्रजभाषा भी छूट गयी। अबाध रूप से खड़ी बोली में लिखने-लिखाने की प्रेरक-प्रोत्साहक सुभद्राजी ही थी।

महादेवी के खड़ी बोली में लिखने के ये व्यक्तिगत कारण थे। इसके साथ कुछ कारण राष्ट्रीय और सामूहिक थे, जो बहुत ताकतवर थे और उनके चतुर्दिक वातावरण के अभिन्न अंग थे। उनमें एक-राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन और दूसरा था-कवि सम्मेलन। दोनों खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार का कार्य महत्वपूर्ण समझा जाता था। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं और अनेक कवि सम्मेलन होते, जिनमें बड़े कवि, लेखक अध्यक्षता करते थे और विद्यार्थी कविता पाठ करने आते थे।' महादेवी ने अपने एक

दूसरे आत्मवक्तव्य 'मेरी साहित्य यात्रा : कविता के संदर्भ में' में कहा है कि 'देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में मेरे बहुत से गीत हैं, जो बिना मेरे नाम के पाये गये हैं। मैंने उनके लिए कहा भी नहीं कि वह मेरे है। मैंने अपने आप उनको बहुत महत्व नहीं दिया। उन गीतों को संग्रहीत भी नहीं किया'। "भारत जननी भारतमाता', 'बेड़ी की झनझन में वीणा की लय हो', 'हे श्रृंगारमयी अनुरागमयी' आदि गीत उस समय के जुलूसों में बहुत गाये जाते थे। इन्हीं कविताओं के साथ महादेवी की कविताओं का शैशव प्रयास, 'तुतला उपक्रम' समाप्त हो गया । इसी दौरान उन्होंने राष्ट्रीय कविताओं के साथ 'अबला', 'विधवा' आदि रचनाएँ की थी, जो उस समय की 'चाँद', 'आर्यमहिला', 'महिलाजगत' आदि पत्रिकाओं में छपी। महादेवी ने बहुत बाद में सन् 1982 में अपनी इन प्रारंभिक कविताओं को संकलित करके 'प्रथम आयाम' के नाम से पुस्तकाकार रुप में प्रकाशित करवाया।

7.2.2.1.2 वयस्क काव्य रचना संसार

छायावाद के भीतर एक विशिष्ट कवयित्री के रुप में महादेवी वर्मा की पहचान 1921-22 के बाद की रचनाओं से बनी। 'नीहार' के प्रकाशन के साथ थे छायावादी कवियों के बीच पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गयीं । महादेवी के वयस्क काव्य रचना का संसार अन्य छायावादी कवियों की तरह लगभग बीस वर्षो का है। उन्होंने छायावादी कवियों में अपनी काव्ययात्रा सबसे पीछे शुरु की थी ओर सबसे बाद में पूरी की ।

'नीहार' पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित महादेवी की पहली काव्य रचना है। उसमें 1924-1928 के बीच की लिखी कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ नीहार के पहले स्त्री दर्पण, मर्यादा और चाँद में छपती रही है । महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में 'नीहार' काल की रचनाओं के बारे में कहा है कि 'नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसे बालक के मन में दूर दिखाई पड़ने वाली अप्राप्य सुनहरी उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से हो जाती है।' इन कविताओं की रचना के दौरान यद्यपि महादेवी किशोरी से पूर्ण युवती हो गयी थीं, लेकिन कविता के भीतर उनका मनोलोक किशोर बच्चों जैसा था, वही कुतूहल, विस्मय और भयातुरता। प्यार के अनोखे नये संसार और पीड़ा की शुरुआत 'नीहार' में दिखाई पड़ती है।

महादेवी की दूसरी काव्यकृति 'रश्मि' है। उनका इसके बारे में कहना है कि 'रश्मि को उस समय आकर मिला, जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिंतन प्रिय था। इसमें कुछ नई, कुछ पुरानी रचनाएँ संग्रहीत है ।' जिज्ञासा, कौतूहल इसमें नीहार की ही भाँति हैं, लेकिन यहाँ वे 'नीहार' के धुँधलेपन से अपने को कुछ मुक्त कर सकी हैं। दूसरी बात इसमें उन्होंने आत्मगोपन के लिए एक ठोस वैचारिक आधार ढूंढ लिया है। इसके कारण भावुकता और वैयक्तिकता दार्शनिकता की शक्ल लेने लगी है। मुग्ध मानस को अधीर करने वाली सुधि, विरह, पीर, 'दृगों में अश्रु अधर में हास', 'सुधा का मधु हाला

का राग। व्यथा के घन अतृप्ति की आग।' इसे नीहार से जोड़ती है । 'नीहार' की कुछ (स्वर्ग का था नीरव उच्श्वास) और 'रश्मि' की कई ('तुहिन के पुलिनों पर छविमान, रजत रश्मियों के छाया में, न थे जब परिवर्तन दिनरात, किसी नक्षत्र लोक से टूट आदि) कविताओं पर पंत की परिवर्तन कविता का प्रभाव है। यह प्रभाव विषय और छंद दोनों दृष्टियों से है। पंत और महादेवी की अस्वस्थता, आसन्न मृत्यु के भय के कारण संसार की क्षणभंगुरता का एहसास ही दोनों को एक जैसा सोचने के लिए बाध्य करता है। महादेवी पंत की तरह यहाँ सोचती है कि ' अलक्षित परिवर्तन की डोर, खींचती हमें इष्ट की ओर' ।

'नीरजा' महादेवी की तीसरी काव्य-रचना है। इसमें एक तो पुराने रंग-ढंग यानी नीहार और रश्मि के रंग-ढंग के विरह और आँसू वाले गीत है तो इसकी ओर प्रिय की मुस्कान से जीवन के लीलाकमल खिलाने की कामना है। नीरजा में कुछ कविताएँ निहायत दार्शनिक आधार पर रची गयी हैं । जैसे-'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ, तो कुछ कविताएँ जायसी और कबीर की रहस्यात्मक भूमि पर। 'तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या', 'क्या पूजन क्या अर्चन रे' इसी प्रकार के गीत हैं। नीरजा में एक स्वर और है जो इन दोनो से भिन्न है-'टूट गया वह दर्पण निर्मम' इसी प्रकार की रचना है। नीहार और रश्मि की तुलना में नीरजा में केवल विचार ही नहीं, गीत भी अधिक सधे हैं। उनकी अन्विति सुघड़ बन गयी है।

महादेवी की चौथी काव्यकृति 'सांध्यगीत' है। नीरजा और 'सांध्यगीत' के बारे में महादेवी का कहना है कि 'नीरजा और सांध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे, जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख और दुःख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा।' सांध्यगीत में विरल-सुहाग, साध-विषाद, 'सुरभित है जीवन मृत्यु तीर' की बात तो पुरानी रचनाओं जैसी है। इस कृति में दो बातें खास हैं-एक तो सजगता की, दूसरी साधना-आराधना की बड़ी बातें है। 'मैं सजग चिर साधना लें', 'मैं नीर भरी दुःख की बदली', 'चिर सजग आँखें उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना', 'करि का प्रिय आज पिंजर खोल दो' जैसे सुंदर और लोकप्रिय सधे गीत इसी मे हैं। प्रिय का विरह यहाँ भी है, लेकिन सह्य होकर मधुर बन गया है-

विरह का युग आज दीखा मिलन के लघु पल सरीखा,
सुख दुख में कौन तीखा मैं न जानी औ, न सीखा,
मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना ले।

महादेवी की पाँचवी, रचना के विकास क्रम की दृष्टि से अभिन्न काव्य कृति 'दीपशिखा' है। यह विचार और भाव के सामंजस्य की दृष्टि से नीरजा और सांध्यगीत का ही बढ़ाव है। प्रिय के बहाने लोक के लिए मिट जाने और एक मानसिक संताप और आश्वस्ति का भाव इसमें आ गया है। इसके अलावा भी दीपशिखा में 'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो', 'जो न प्रिय पहचान पाती', 'सब आँखों के आँसू उजले', 'पथ मेरा

निर्वाण बन गया', 'पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला' जैसे सधे हुए सुंदर गीत है। सांध्यगीत और इसमें एक बात समान है। ये दोनों रचनाएँ चित्रगीत है यानी दोनों में गीतों के साथ चित्र हैं। चित्र-सृजन के संस्कार तो महादेवी वर्मा में बचपन से थे, लेकिन उनका भावाभिव्यक्ति के लिए उपयोग उन्होंने यहाँ पहली बार किया है। ये चित्र भाव प्रधान हैं, वस्तु प्रधान नहीं। महादेवी वर्मा ने अपनी संपूर्ण काव्ययात्रा का आकलन करते हुए कहा है कि 'मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है। केवल इतना ही नहीं, वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये हैं।' लेकिन यह विचार गीतों की साधना की दृष्टि से ही ठीक है, अनुभूति की तीव्रता की दृष्टि से नहीं। डा. निर्मला जैन ने महादेवी की काव्ययात्रा के बारे में सही टिप्पणी की है कि 'आवेग की स्वाभाविक ऊष्मा क्षीण होने के परिणामस्वरुप 'नीहार' से 'दीपशिखा' तक पहुँचते-पहुँचते विषयी प्रधान आवेगशील, सर्वधा मानवीय भावों से प्रेरित पुष्कल गीत-सृष्टि क्रमश: विषयी निरपेक्ष, चिंतनप्रधान और आध्यात्मिक संस्पर्शो से युक्त हो जाती है। इन आरंभिक गीतों की भावना का सहज उच्छलन, हार्दिकता तथा मार्मिकता परवर्ती गीतसंग्रहों में उत्तरोत्तर क्षीण होती जाती है।' दीपशिखा के बाद उनके छिटपुट गीतों की अंतिम काव्यकृति 'अग्निरेखा' है, जो उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई। मौलिक काव्यकृतियों के अलावा महादेवी ने अपनी कविताओं के दो संकलन तैयार किये। 'यामा' उनकी 1936 तक प्रकाशित चार काव्यकृतियों-नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत का संकलन है, जबकि 'संधिनी' प्रकाशित कृतियों के पसंदीदा चुने हुए गीतों का संकलन। अपनी कविताओं के संकलनों के अलावा महादेवी ने विशेष लक्ष्य से प्रेरित होकर दो काव्य पुस्तकें संपादित की। बंगाल के अकाल से व्यथित होकर उस पर अनेक कवियों द्वारा रचित कविताओं का संकलन और संपादन 'बंगदर्शन' के नाम से किया। इसी प्रकार जब चीन ने सन् 1962 में भारत पर आक्रमण किया, तो राष्ट्रीय भावना, देशप्रेम का और दृढ़ करने की मंशा से उन्होंने 'हिमालय' नाम से कविताओं का संकलन और संपादन किया। इसके अलावा महादेवी ने काव्यानुवाद की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। अपनी प्राचीन साहित्यिक विरासत को हिन्दी में लाने में उनका प्रयास सराहनीय है। 'सप्तपर्णा' महादेवी की अनूदित काव्यकृति है जिसका स्वरुप मौलिक और संकलित-संपादित काव्यकृतियों से बिल्कुल अलग है। इसमें उन्होंने वेदों की आर्षवाणी से लेकर लौकिक संस्कृत के वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, जयदेव के साहित्य और पालि भाषा की प्रसिद्ध कवयित्रियों की थेरीगाथाओं से चुने हुए अंशों का हिन्दी में सरस अनुवाद किया है। अनुवाद के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी इसकी भूमिका में है, अनुभूति सरस रचना के आस्वाद का मजा तो अलग से है।

7.2.2.2 गद्यकार महादेवी

महादेवी वर्मा ने जितनी सफलता काव्य-रचना के क्षेत्र में अर्जित की, उतनी ही सफलता उन्होंने गद्य-लेखन के क्षेत्र में प्राप्त की। गद्य-लेखन में उनकी मुख्यत: दो दिशाएँ है।

संस्मरण निबंध। यद्यपि इनके लेखन के बीज कविताओं की तरह बचपन में ही पड़ गये थे, लेकिन इन्हें व्यवस्थित रुप में विकसित करने की बात बहुत याद की है। अतीत के चलचित्र (1941), स्मृति की रेखाएँ (1944), पथ के साथी (1956), मेरा परिवार आदि उनके प्रसिद्ध संस्मरणों के संकलन है और श्रृंखला की कड़ियाँ (1943), क्षणदा (1956), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962) आदि प्रसिद्ध निबंध संग्रह है। इनके अलावा स्मृति चित्र और संचयन उनके संस्मरणों और निबंधों के तैयार किये हुए संकलन हैं।

7.2.2.2.1 संस्मरणकार

महादेवी ने जहाँ एक ओर संस्मरणों, संस्मरण प्रधान रेखाचित्रों का आलेखन किया है, वहीं उन्होंने उनके साहित्यिक स्वरूप पर विचार भी किया है। विषय की दृष्टि से महादेवी के संस्मरणों में बड़ी विविधता और व्यापकता है। इस दृष्टि से उनके संस्मरणों के कई प्रकार है। उनके सबसे ज्यादा संस्मरण समाज के अत्यंत साधारण, नगण्य, उपेक्षित मनुष्यो (पुरुष, महिलाओं और बच्चों) पर हैं ।'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' के संस्मरण इसी प्रकार के है। साधारण और अकिंचन लोगों पर लिखे संस्मरणों में महादेवी ने उनकी मनुष्यता, मानवीय गरिमा, उनके संघर्षशील अपराजेय व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है। महादेवी ने अपने संस्मरणों में अकुंठभाव से आत्मीयता, अक्षय ममता प्रदान करते हुए उनके साधारण व्यक्तित्व के भीतर असाधारण मानवीय गुणों को उजागर किया है। इन संस्मरणों में वे अत्यंत भावुक हैं और उनके रेखांकन में कल्पनाशील भी। अत्यंत निकट के परिचय के कारण ही उन्होंने इनका आलेखन 'पूरी संवेदना' के साथ किया है। इनमें उनके स्नेह का सूत्र शुरु से आखिर तक मौजूद हैं। वे संस्मरण विशुद्ध रूप से निर्वैयक्तिक नहीं हैं। इनमें वे स्वयं अपने आप आ गयी हैं। उनकी कथा के साथ सहज रुप से महादेवी की कथा आयी है । उन्होंने 'अतीत के चलचित्र' की भूमिका में इस बारे में लिखा है कि 'इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। परंतु मेरा निकटता-जनित आत्मविज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए अंगारों को घेरे रहती है। जो उसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता। इस प्रकार का जीवन इन व्यक्तियों को सामने लाने का एक साधन मात्र है, साध्य तो स्वयं इनके व्यक्तित्व की आग है।'

महादेवी ने साधारण, उपेक्षित लोगों पर लिखे हुए संस्मरणों के स्वरूप, विशेषताओं की भी कई स्थानों पर चर्चा की है। उन्होंने अपने एक 'आत्मकथ्य' में कहा है कि "मेरे संस्मरणों के आधार बाहय दृष्टि से अत्यंत सामान्य और अकिंचन जान पड़ते हैं, किंतु अन्तर्दृष्टि से वे विराट और अखण्ड सत्य के प्रतीक हैं। उनके संपर्क में आना मेरी ही कृतार्थता है।" अतीत के चलचित्र' के रामा, सबिया, अलोपी, घीसा और 'स्मृति' की

रेखाएँ, के भक्तिजन, चीनी फेरीवाला, ठकुरी बाबा आदि संस्मरण इस प्रकार के साधारण और अकिंचन लोगों पर है।

महादेवी के कुछ संस्मरण अपने साहित्यकार साथियों, अग्रजों और अनुजों पर हैं। 'पथ के साथी' के सभी संस्मरण इसी कोटि में आते हैं। इसमें उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का आलेखन तो है, साथ ही उनके रचनाकर्म की विशेषताएँ भी आ गयी है। उन्होंने 'पथ के साथी' की भूमिका 'दो शब्द' में कहा है कि "अपने अग्रजों, सहयोगियों के संबंध में, अपने आप को दूर रखकर कुछ कहना सहज नहीं होता। मैंने साहस तो किया है, पर ऐसे स्मरण के लिए आवश्यक निर्लिप्तता या असंगतता मेरे लिए संभव नहीं है। मेरे दृष्टि के सीमित शीशे में वे जैसे दिखाई देते हैं, उससे वे बहुत उज्ज्वल और विशाल हैं, इसे मानकर पढ़नेवाले ही उनकी कुछ झलक पा सकेंगे।' महादेवी ने 'पथ के साथी' में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत आदि पर लिख संस्मरणों को अपने अंग्रजों और सहयोगियों का 'स्मरण' कहकर हिन्दी पाठक समाज में प्रचलित उस भ्रम का निवारण कर डाला जिसके तहत इन्हें रेखाचित्र समझा जाता है। रेखाचित्र के लिए जिस संक्षिप्तता और निर्लिप्तता की आवश्यकता होती है, वह इनमें नहीं है। रेखाकन इसमें है, लेकिन ये भी संस्मरण प्रधान हैं। महादेवी के कुछ संस्मरण राजनीतिक व्यक्तियों पर है । महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरु, राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टंडन पर लिखे गये संस्मरण इसी प्रकार के है। इन संस्मरणों का आलेखन महादेवी ने उन्हें राजनीतिक व्यक्ति जानकर नहीं, बल्कि उनसे अपने आत्मीय संबंध और निकटता के आधार पर किया है। दरअसल उन्हें महादेवी बहुत नजदीक से जानती और मानती थी। इन संस्मरणों में उनके चारित्रिक गुण भी आ गये है।

महादेवी के संस्मरणों की एक दिशा और है। उनके कई मार्मिक संस्मरण पशु-पक्षियों पर आधारित है । 'मेरा परिवार' के संस्मरण इसी प्रकार के हैं। इनमें गिल्लू गौरा और नीलकंठ बहुत चर्चित हैं । पशु-पक्षियों के प्रति विशेष लगाव के बीज बचपन में पड़ गये थे। उन्होंने अपने एक 'आत्मकथ्य' में लिखा है कि "उस समय ज्ञान नहीं था कि भविष्य में ऐसे स्मृत्यांकन की परंपरा अटूट हो जायेगी, परंतु बालपन की इस गद्यात्मक अभिव्यक्ति के बीज पर मेरे सारे संस्मरण अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुए है।' एक प्रश्न सहज जिज्ञासा का विषय है आखिरकार महादेवी ने इतने सारे संस्मरणों की रचना की, उन्होंने कथा साहित्य लेखन में कोई रुचि क्यों नहीं दिखाई? कोई उपन्यास या कहानी क्यों नहीं लिखा, जबकि छायावाद के अन्य बड़े रचनाकार, प्रसाद और निराला का तो यहाँ प्रश्न ही नहीं है, यहाँ तक कि पंत ने भी कुछ कहानियाँ लिखी हैं। इस संदर्भ में महादेवी ने अपना बचाव करते हुए अपने आत्मवक्तव्य मेरी साहित्यिक यात्रा गद्य के संदर्भ में कहा है "कथा लिखने की इच्छा संस्मरण से पूरी हो जाती है।' उन्होंने लोगों के भ्रम का निवारण करते हुए आगे लिखा

है कि 'ये रेखाचित्र नहीं है कि जैसा प्राय: लोगों को भ्रम हो जाता है । रेखाचित्र में तो हम कुछ रेखाओं में तटस्थ भाव से किसी व्यक्ति को दे सकते हैं लेकिन संस्मरण में ऐसा नहीं होता । संस्मरण वही रह जाता है जो हमें अच्छा लगता है, जिसे हम बार-बार याद करते हैं, वही तो संस्मरण में आयेगा।

7.2.2.2.2 निबंधकार

महादेवी वर्मा के गद्य लेखन की दूसरी दिशा है-निबंध लेखन। इसके बीज भी बचपन की पढ़ाई के दौरान पड़ गये थे। यह कला संस्मरणों की तुलना में अधिक सायास और बौद्धिक है और उन्हें हिन्दी सिखाने वाले पंडित जी ने सिखाई है। इन्दौर में जो पंडित जी उन्हें हिन्दी पढ़ाते थे, आगे उन्हीं की कृपा का फल यह मिला कि उत्तर प्रदेश की एक प्रान्तीय निबंध प्रतियोगिता, जिसमें इण्टरमीडिएट तक के छात्र प्रतिभागी थे, उसमें कथा आठवी की छात्रा महादेवी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ । महादेवी के निबंधों के स्वरुप के बारे में कुछ और स्पष्टीकरण किया है । अपने निबंधों की विषयबद्धता और तार्किकता के बारे में वे कहती है कि "मैं अगर कुछ लिखूँ तो विषय छोड़कर इधर-उधर बहुत नहीं बहकती हूँ और उस समय मेरी बात आपको ठीक लेगेगी, जो तर्क मैं उपस्थित करती हूँ । निबंध में मेरी अपनी एक दिशा है और में जो कहना चाहूँगी उसे प्रभाव के साथ कहूँगी।'

महादेवी वर्मा के निबंध लेखन में भी संस्मरणों की तरफ काफी विविधता है। उन्होंने विचारात्मक, गवेषणात्मक (शोधपरक), ललित कई प्रकार के निबंधों का सर्जन किया है। उनकी सर्वाधिक रुचि विचार या तर्कप्रधान यानी विचारात्मक निबंधों के आलेखन में रही है। भारतीय स्त्रियों की समस्याओं से संबंधित ' श्रृंखला की कड़ियाँ' के सभी निबंध विचारात्मक हैं। इसी प्रकार का निबंध संग्रह 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध है।' 'क्षणदा' उनके ललित निबंधो का संग्रह है। विचारात्मक निबंधों के लेखन में पंडित जी की प्रेरणा तो है ही, उनका विशद अध्ययन और अध्यापन भी विशेष रूप से मददगार साबित हुआ । उन्होंने अपने एक आत्मवक्तव्य में बताया है कि ऐसे निबंधों में वे लिखने के पहले विषयों का चुनाव कर लेती है और उन पर तटस्थ प्रभाव से सोच लेती हैं। यही कारण है वे कविता में अपने व्यक्तित्व को एकाकार तो पाती है, तटस्थता और निर्वेयक्तिकता की वजह से विचारात्मक निबंधों से अपने व्यक्तित्व को दूर रखती हैं।

महादेवी ने अपने समग्र लेखन, गद्य और पद्य दोनों पर तुलनात्मक ढंग से भी विचार किया है। उनकी कविता और संस्मरण संवेदना प्रधान है, जबकि निबंध विचार और तर्क प्रधान है। उन्होंने लिखा है कि "मैं मूलत: कवि हूँ। मुझे फूल का खिलना अच्छा लगता है। आकाश के रंग अच्छे लगते है। बादल अच्छा लगता है। वस्तुत: ऐसा नहीं है कि वैज्ञानिक युग या तर्क के युग में मैं तर्क नहीं कर सकती या मेरी बुद्धि-प्रक्रिया शिथिल है। आधुनिक बुद्विवाद के मद्देनजर महादेवी ने निबंधलेखन की राह पकड़ी है । उनके

ज्यादातर निबंध विचार या चिंतन प्रधान हैं। उनका सृजनात्मक तत्व वैयक्तिक न होकर सामाजिक अनुभव रहा है । अध्ययन- अध्यापन से प्रत्यक्ष संबंध के चलते महादेवी वर्मा को भाषण देना बहुत प्रिय रहा है । उनके प्रसिद्ध भाषण 'मेरे प्रिय संभाषण' में संकलित हैं । उसमें विषय का निर्धारण तो निबंधों की तरह है, लेकिन उनमें निबंधों जैसी तार्किकता नहीं है । भाषणों में उनका प्रयोजन लक्ष्यीभूत श्रोता तक अपनी बात पहुँचाना है । इसलिए इनमें विशेष ध्यान सम्प्रेषणीयता पर है।

7.2.2.3 अन्य साहित्यिक गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ

महादेवी वर्मा साहित्य-सृजन के साथ अनेक साहित्यिक और गैरसाहित्यिक गतिविधियों से जुड़ी रही हैं । उन्होंने सन् 1930 में, प्रयाग में 'प्रथम अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन' का आयोजन किया था । महादेवी वर्मा की छोटी-मोटी रचनाएँ उस समय की पत्रिकाओं में बचपन से ही छपने लगी थीं, लेकिन 'चाँद' के प्रथम अंक, सन 1922 से वे उसकी नियमित लेखिका बन गयी। उनके अनेक गीत और निबंध इसी पत्रिका में छपे। सन् 1932 से उन्होंने इस पत्रिका के संपादन का नि: शुल्क कार्यभार संभाला। सन् 1942 में उन्होंने 'विश्ववाणी' के बुद्ध अंक का भी संपादन किया। सन् 1933 में प्रयाग में उन्होंने 'मीरा मंदिर' नामक कुटीर का निर्माण भी करवाया।

प्रयाग, सन् 1945 में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना का श्रेय भी महादेवी वर्मा को है। सन् 1949 में उसके तत्वावधान में 'अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन' और 'साहित्यिक-कार्यक्रमों और समारोहों का आयोजन भी किया । इलाचन्द्र जोशी के साथ उन्होंने सन् 1955 में 'साहित्यकार संसद' के मुखपत्र 'साहित्यकार' मासिक के संपादन और प्रकाशन का कार्य शुरु किया । आगे इसी के परिप्रेक्ष्य में ताकुला (नैनीताल) में अन्तःप्रादेशिक साहित्यकार शिविर का एक माह के लिए आयोजन भी किया । इसी प्रकार प्रयाग में नाट्य संस्था 'रंगवाणी' की उन्होंने ही स्थापना की। सन् 1952 में महादेवी वर्मा उत्तरप्रदेश विधान परिषद में विशिष्ट साहित्यकार की हैसियत से सम्मानित सदस्या के रुप में मनोनीत की गयीं और सन् 1954 में साहित्य अकादमी, दिल्ली की संस्थापक सदस्या के रुप में भी चुनी गयीं ।

साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में महादेवी वर्मा को साहित्य-गैरसाहित्य, निजी-सामूहिक, सरकारी, गैरसरकारी संस्थानों-संगठनों से जितने पुरस्कार और सम्मान मिले, वे किसी साहित्यकार के लिए सहज ईर्ष्या के विषय हो सकते है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से उन्हें 'नीरजा' पर सेकसरिया पुरस्कार मिला । बाद में वहीं से मंगला प्रसाद पारितोषिक, प्रथम भारतेन्दु पुरस्कार भी प्राप्त हुए। 'स्मृति की रेखाएँ' पर उन्हें नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से 'द्विवेदी स्वर्णपदक' मिला । सन् 1982 में वे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के प्रथम 'भारत भारती' पुरस्कार और सन् 1983 में 'यामा' और 'दीपशिखा' पर साहित्य के सर्वोच पुरुस्कार 'ज्ञानपीठ' से सम्मानित की गयीं।

जहाँ तक सरकारी अलंकरणों और पुरस्कारों का प्रश्न है, तो सन् 1956 में महादेवी वर्मा भारत सरकार के 'पद्मभूषण' अलंकरण से, यद्यपि सन् 1968 में भारत सरकार की हिन्दी नीति के विरोध में उसको लौटा दिया, सन् 1976 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विशिष्ट 'साहित्यकार पुरस्कार', 1960 में विहार सरकार द्वारा साहित्यकार के रुप में विशेष रुप से सम्मानित की गयीं। सन् 1988 में मरणोपरांत वे भारत सरकार की ओर से 'पदमविभूषण' से अलंकृत की गयीं।

गैरसरकारी संगठनों में दिल्ली लेखिका संघ ने सन् 1963 में सम्मानित किया और भारतीय साहित्य परिषद, प्रयाग ने सन् 1964 में वृहद अभिनंदन ग्रंथ भेंट करके उनका सम्मान किया। इसके अलावा समय-समय पर कई उच्च शिक्षा संस्थानों-विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, कुमायूँ विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-ने डी लिट् की मानद उपाधि प्रदान करके उन्हें सम्मानित किया।

7.2.3 कृतियाँ

7.2.3.1 काव्य कृतियाँ

नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1934), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), प्रथम आयाम (1982), अग्निरेखा-(मरणोपरांत) (1990)

निजी संकलित काव्य कृतियाँ - यामा (1936), संधिनी (1964)

संकलित संपादित काव्यकृतियाँ - बंगदर्शन (1943), हिमालय (1983)

अनुदित - सप्तपर्णा (1966)

7.2.8.2 गद्यकृतियाँ

संस्मरण - अतीत के चलचित्र (1941), स्मृति की रेखाएँ (1943), पथ के साथी (1956), मेरा परिवार (1971)

निबंध- श्रृंखला की कड़ियाँ (1942), क्षणदा-ललित निबंधों का संकलन (1956), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1960), संकल्पिता, (1969) चिन्तन के क्षण (1936)

गद्यसंकलन - स्मृतिचित्र (1966), संचयन (1982), मेरे प्रिय निबंध -

निबंध संग्रह (1981)

भाषणों का संकलन - मेरे प्रिय संभाषण (1984)

7.3 काव्ययाचन तथा ससंदर्भ व्याख्याएँ

7.3.1 इस एक बूँद आँसू में....

इस एक बूँद आँसू मो/चाहे साम्राज्य बहा दो,
वरदानों की वर्षा सो/यह सूनापन बिखरा दो,

इच्छाओं की कंपन से/सोता एकान्त जगा दो,
आशा की मुस्कराहट पर/मेरा नैराश्य लुटा दो,
चाहे जर्जर तारों में/अपना मानस उलझा दो,
इन पलकों के प्यालों में/सुख का आसव छलका दो,
मेरे बिखरे प्राणो में/सारी करुणा दुलका दो,
मेरी छोटी सीमा में/अपना अस्तित्व मिटा दो,
पर शेष नहीं होगी यह/मेरे प्राणों की क्रीडा,
तुम को पीड़ा में ढूँढा/तुम में ढूँढ़ूँगी पीड़ा ।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यावतरण महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'नीहार' में संकलित 'तुम' कविता से लिया गया है। महादेवी का विवाह बाल्यावस्था में हो गया था और इसी अवस्था में दाम्पत्य का दुःखद अनुभव लेकर वे अपने पिता के घर में वापस आ गयी थी। पिता के घर में पढ़ते-लिखते वे जवान हुई । इस दौरान उन्होंने अपने भीतर खालीपन पाया । अपने यथार्थ अनुभव की इसी पार्थिव जमीन पर उन्होंने नारी-पुरुष संबंध के अनुभव का नया संसार खड़ा किया है । महादेवी इस कविता के माध्यम से उस नारी को हमारे सामने खड़ी करती हैं, जिसे हम पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी कहते हैं । यह वह नारी है जो अपनी शर्तो पर पुरुष को परखना चाहती है । पुराने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में पुरुष प्रधान व्यवस्था के चलते नारी के रुप-गुण, नारीत्व को जाँचने-परखने और मूल्य निर्धारित करने का अधिकार पुरुष को था। महादेवी पुरुष को परखने की शर्त रखती हैं।

व्याख्या : महादेवी वर्मा का कहना है कि हे प्रिय, चाहे तुम मेरे एक बूँद आँसू के बदले अपने वैभव का साम्राज्य निछावर कर दो या फिर वरदानों की झड़ी लगाकर मेरे भीतर का सूनापन नष्ट-भ्रष्ट कर दो, चाहे तुम अपनी आकांक्षाओं, आश्वसनों से मेरी सोई हुई एकान्त प्रिय इच्छाओं को उम्मीदों को जगा दो या फिर अपनी आशा भरी मुस्कान से मेरे भीतर की निराशा को मिटा दो, चाहे तुम मेरी विश्रृंखलित साँसों को अपने मन का आश्रय स्थल समझ लो, चाहे तुम अपने सुंदर रुप-रंग की मदिरा मेरी आँखों के प्यालों में ढाल दो, चाहे तुम मेरे बिखरे प्राणों पर अपनी सारी करुणा उंड़ेल दो या फिर चाहे मेरे छोटे से अस्तित्व के सामने अपने अधिकार भाव वाले व्यक्तित्व को पूर्ण समर्पित कर दो, तुम्हारे यह सब करने के बावजूद मेरे प्राणों का खिलवाड़ तब तक अनवरत चलता रहेगा जब तक मैं तुम्हें ठोक-बजाकर देख नहीं लेती । मैंने तुम्हें खुशी-खुशी नहीं, हृदय की गहरी पीड़ा में खोजा है । मेरा लक्ष्य तुम्हें खोज लेने से ही पूरा नहीं हो जाता, यह लक्ष्य तो तब पूरा होगा जब मैं जाँच-पड़ताल करके यह जान सकूँगी कि तुम्हें ढूँढ़ने में जो दर्द मैंने उठाया है, मेरे लिए वह दर्द तुम्हारे हृदय में है या नहीं है । यहीं महादेवी पुराने स्त्री-पुरुष संबंध के बोध से अलग हो जाती है ।

विशेष : प्रस्तुत कविता 'तुम' के आवरण में पुरुष रुप प्रिय को संबोधित है । कवयित्री स्त्री-पुरुष के सनातन सबंध में विश्वास रखती हैं । उसे मान्य रखते हुए अपने पक्ष से उसे परखने की नई शर्त रखती हैं । यह वह पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी है, जो पुरुष की सभी पुरानी चालों से बेखबर नहीं है, पूरी तरह परिचित है। वह अपने प्रेम और पीड़ा के प्रति इतनी आत्म सजग है कि अपने हृदय की कसौटी पर प्रिय के हृदय को, अपनी पीड़ा के वजन पर प्रिय की पीड़ा को, उसकी सचाई को परखना चाहती हैं । इस पद्यांश की भाषा लाक्षणिक है । भाषा में तराश कम है, पर नये शब्दविधान- वरदानों की वर्षा, सोता एकान्त, आशा की मुस्कान, पलकों के प्याले, सुख का आसव, बिखरे प्राण आदि काफी अर्थव्यंजक है ।

7.3.2 जो तुम आ जाते एक बार.....

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराण,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पद पखार
हँस उठते पल में आर्द नयन
धूल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसंत
छुट जाता चिर संचित विराग,
आँखें देती सर्वस्व वार ।

प्रसंग : प्रस्तुत गीत महादेवी वर्मा के 'नीहार' संकलन से लिया गया है । भाव और पद रचना दोनों स्तर पर गीत मध्ययुगीन संतों के सुर में गाया गया है । गीत का 'तुम' महादेवी का आकाक्षित प्रिय है । यह उसी मनोवाक्षित प्रिय के प्रति संबोधित प्रार्थनागीत है । एक प्रकार से यह महादेवी के अपने प्रिय का आह्वान प्रार्थना गीत है।

व्याख्या : महादेवी कहती है कि हे प्रिय, यदि तुम एक बार सशरीर मेरे पास आ जाते, स्मृति में नहीं, कारण कि मेरी स्मृति में तो तुम हमेशा हो, तो मेरी अब तक की पीड़ा, मेरे द्वारा मन ही मन तुम्हारे पास भेजे गये न जाने कितने संदेश तुम्हारे आने के मार्ग में फूलों के पराग की तरह बिछ जाते । परंपरा में प्रेमिकाएँ अपने प्रिय के मार्ग पर पलक-पाँवड़े बिछाती थी, लेकिन महादेवी अपने प्रिय के पथ में अपने हृदय की करुणा और मानसिक संदेश को बिछाना चाहती है यहाँ पलकों और आँखों का वह महत्व नहीं है जो दिल की करुणा, वेदना का है। और तुम्हारे आने की खुशी का गीत अनुराग से पागल होकर मेरी आती-जाती हर साँस गाती तथा मेरी आँखों के आँसू तुम्हारे पैर धोने के लिए पर्याप्त होते, अलग से पानी की जरुरत नहीं पड़ती ।

तुम्हारे आने की खुशी में मेरे गीले नयन तत्काल हँसने लगते, मुझसे तुम्हारे दूर होने और भेजे गये संदेश का तुम्हारी ओर से प्रत्युतर न मिलने के कारण मेरे हृदय की जो वेदना ओठों पर चुप्पी बनकर विषाद के रूप में छा गयी है, वह हमेशा के लिए बह जाती । तुम्हारे न होने के कारण आज तक का मेरा जीवन पतझड़ की तरह सूखा और नीरस रहा है, लेकिन तुम्हारे आने पर जीवन में फिर से बसंत की हरियाली छा जता । अब तक तुमसे अलग-थलग पड़ी होने के कारण जीवन में स्थायी रुप से विरक्ति ने अपनी जगह बना ली है, लेकिन कोई बात नहीं, वह भी तुम्हारी सशरीर उपस्थिति से अपने आप खत्म हो जाती और ये आँखे तुम्हें देखकर अपना सब कुछ-तन, मन, हृदय, प्राण तुम पर निछावर कर देती । आखिर में स्वीकृति और निछावर करने की मुँह और हाथों से अलग आँखों की अपनी भाषा है ।

विशेष : महादेवी ने अपना यह भावभीना प्रार्थना गीत अपने पूरे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से बुना है । वह मांसल उपकरणों के बदले विशेष रुप से आन्तरिक भावों से रचा गया है। आँखों और ओठों के जिक्र के बावजूद यह महादेवी की आन्तरिक जगत को प्रकट करना है । इसमें दो लाक्षणिक प्रयोग है । एक करुणा और संदेश का पथ में पराग बन कर बिछ जाना । दो-जीवन में बसंत छा जाना । यहाँ महादेवी के निजी आतंरिक व्यक्तित्व की निखालिस आकांक्षा ही अत्यंत सधे सुर और लय में प्रगीत का रूप ले बैठी है ।

7.3.3 धीरे धीरे उतर क्षितिज से ...

धीरे कर उतर क्षितिज से
आ बसंत-रजनी
तारकमय नव वेणी बंधन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ वंसत-रजनी

मर्मर की सुमधुर नूपूर- ध्वनि,
अलि-गुंजित पदमों की किंकिणि
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी
विहँसती आ वसंत-रजनी

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि
कर में हो स्मृतियों की अंजलि
मलयानिल का चल दुकूल अलि
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी
सकुचती आ वसंत-रजनी

सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई
पुलकित यह अवनी
सिहरती आ वंसत-रजनी

प्रसंग : प्रस्तुत गीत महादेवी वर्मा कृत 'नीरजा' से लिया गया है । छायावादी कवियों में पंत और निराला की तुलना में स्वतंत्र रुप में प्रकृति पर गिनी-चुनी कविताएँ महादेवी ने लिखी हैं, लेकिन उन्होंने जो प्रकृति कविताएँ लिखी हैं, वे बड़ी चर्चित है । प्रस्तुत कविता उन्हीं में से एक है। अन्य छायावादी कवियों की तरह महादेवी प्रकृति को अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति का खास तौर पर साधन बनाती हैं और इस संदर्भ में वे किसी छायावादी कवि से पीछे भी नहीं है । छायावादी कवियों को वसंत और रात दोनों बहुत प्रिय हैं । महादेवी बसंत-रजनी को अपने ढंग से कविता का आवरण पहनाती हैं । दरअसल यह कविता 'वसंत-रजनी' के आह्वान का गीत है।

व्याख्या : महादेवी वसंत-रजनी का आह्वान करते हुए कहती हैं कि हे वसंत रजनी, उस आकाश से धीरे-धीरे उतर कर धरती पर आ जाओ। प्रकृति को नारी रूप में देखना प्रत्येक छायावादी कवि की सामान्य विशेषता है । महादेवी तो स्वयं नारी है । उन्होंने प्रकृत्या उसका नारी रुप में मानवीकरण कर डाला है । वैसे भी संध्या, रजनी, श्यामा, अमा अपने आप स्त्रीलिंग है । प्रकृति का मानवीकरण भी छायावादी काव्य की बड़ी भारी विशेषता है । इसके अलावा वैदिककाल से लेकर आधुनिककाल तक पूरी भारतीय काव्य परंपरा में प्रकृति में मनुष्य की चेतना को आरोपित करना और मनुष्य को प्रकृति के माध्यम से समझना आम बात नहीं है । महादेवी वर्मा ने वसंत रजनी का पूरा चित्रण एक सजी-धजी सजीव युवा स्त्री के रूप में किया है ।

बँधी वेणी में अभी- अभी आकाश में निकले तारों के गजरे सजाकर, अभी- अभी आकाश में निकले चाँद की अपने माँग में बेदी सजाकर, प्रकाश से घिरे सफेद बादलों का घूँघट डालकर अपनी नजर से मोती सुंदरता बिखेरते हुए वसंत रजनी प्रसत्रमना धरती पर आओ ।

सूखी पत्तियों की मधुर मर्मर ध्वनि की पायल छमकाती हुई, भ्रमरों से गुंजरित कमलों का कंगन बजाती हुई, अलसाई नंदी की मंथर चाल चलती हुई सजनी, अपनी मीठी मुस्कान से चारों ओर पिछली हुई चाँदी की धारा बहा दो। हे वसंत रजनी, हँसती हुई धरती पर आओ ।

सुखद सपनों से रोमांचित होकर, स्मृतियों को अपने हाथों की अंजलि बनाकर, सखी मलयानिल से अपने आँचल को फहराती हुई, काली छाया सी घिर आओ और पूरे विश्व को अपने अभिसार की स्थली बना लो । हे वसंत रजनी, शरमाते हुए धरती पर उतरो।

नदी का हृदय तरंग के रूप में बार-बार सिहर उठता है और मकरन्द भरे फूल बार-बार खिल पड़ते हैं, मिलन की आशा के क्षण फिर-फिर मचल आते हैं, वसंत राज प्रिय के पैरों की आहट सुनकर यह धरती-प्रिया अति प्रसन्न हो उठी है। इस मिलन के क्षण पर हे वसंत-रजनी, सिहरती हुई आओ।

विशेष : महादेवी ने वसंत-रजनी का एक सजी-सँवरी, प्रिय से अभिसार के लिए उत्सुक, उद्यत युवती का सांगरूपक खड़ा करना चाहा है, लेकिन सांगरूपक में कविता उनसे ठीक से सध नहीं सकी है । दृश्यों में अन्विति का अभाव है, अन्त तक पहुँचते-पहुँचते छंदबंध भी बिखर गये हैं । टेक अच्छा होने से कोई गीत समूचा अच्छा नहीं हो जाता। प्रकृति गीत होने के बावजूद उसमें जो वस्तु और अभिव्यक्ति के बीच अन्विति और एकरूपता होनी चाहिए, वह इसमें नहीं है।

7.3.4 बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ....

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।
नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पंदन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिह जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ ।
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।
आग हूँ जिससे ढुलकते बिंदु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के
पुलक हूँ जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ ।

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ ।

प्रसंग : प्रस्तुत गीत महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'नीरजा' काव्यकृति से लिया गया है । महादेवी शुरू से लेकर आखिर तक अपनी कविताओं में स्वयं सी होने के नाते एक सनातन पुरुषतत्व में विश्वास करती है और उससे अपना सीधा संबंध भी मानती हैं, लेकिन वे अपने संबंध को मध्ययुगीन भक्तों की तरह पुराने रूप-संबंध- शिव-पार्वती, राम-सीता या राधा-कृष्ण आदि में नहीं देखती । महादेवी का सनातन पुरुष उनका प्रिय है और परमेश्वर भी । महादेवी उसे एक पढ़ी-लिखी आधुनिक स्त्री की मनोभूमि पर देखती है । वे अपनी और उसकी अस्मिता तथा सत्ता दो मानती हैं, लेकिन दोनों की आंतरिक एकता की विश्वासी है । सनातनता के भीतर वे जिस पुरुष-स्त्री संबंध की पक्षधर है वह आधुनिक लोकतंत्र के आलोक में है और इस दृष्टि से नवीन भी । स्त्री होने के नाते महादेवी इस गीत की रचना अपने पक्ष से करती है और उनके मनोभाव आरोपित नहीं है ।

व्याख्या : महादेवी का कहना है कि सनातन पुरुष की सृष्टि-बीन और उसके हर तार पर बजने वाली रागिनी दोनों में ही हूँ । पहले यह सृष्टि की बीन और उसकी रागिनी दोनों सोयी हुई थी, जड़ थी, मौन थी,लेकिन जब पहले-पहल इस जगत की रचना हुई, उसी के साथ मैं भी जागी, मेरी भी रागिनी का जागरण हुआ । सृष्टि के नाश और निर्माण दोनों में मेरे पैरों के निशान है । एक तरफ जन्म-मृत्यु के बंधन से मैं शापित हूँ दूसरी तरफ अमरता की आकांक्षा का वरदान भी मुझे प्राप्य है । जन्म मृत्यु,नाम-रूप के बंधन में बँधकर ही मैंने अपने अस्तित्व को जाना है और उस सनातन पुरूष की सत्ता को भी पहचाना है । इसलिए मैं शापग्रस्त वरदान हूँ । मैं सृष्टि और जीवन का नाश-निर्माण, जन्म-मृत्यु के रूप में दो किनारे हूँ लेकिन सृष्टि के सतत विकास, जीवन के सतत प्रवाह के रूप में उनसे मुक्त भी हूँ । मै वह प्यासा चातक हूँ जिसकी आँखों में हमेशा जलद रहता है । जलद आकाश में आये चाहे न आये, लेकिन मेरी आँखों में तो हमेशा उसी की छवि बसी रहती है । यद्यपि मैं निष्ठुर दीपक हूँ जो अपने प्रिय शलभ को जला डालता है, बावजूद इसके, वह मेरे पास आये चाहे न आये, लेकिन मेरे प्राणों में सदा वही रहता है । मैं वह बेचैन बुलबुल हूँ, फूल मेरी आँखों के सामने हो चाहे न हो, लेकिन मेरे हृदय में सदा उसी की चाह छिपी रहती है । मैं वह गतिशील छाया हूँ जो अपने आधार के रूप में शरीर से एक है, लेकिन स्वरूप में उससे अलग दूर बनी रहती है । मैं अपनी शारीरिक सत्ता और अस्मिता में अपने सनातन पुरुष यानी तुमसे अलग हूँ लेकिन मेरा अखण्ड सुहाग तो तुम्हीं से जुड़ा है । सनातन संबंधों के नाते ही तुमसे अलग सत्ता रखकर मैं तुम्हारी ही अखण्ड सुहागिनी हूँ ।

मैं ऐसी आग हूँ जो ठंडी पड़ गयी है, जिसमें ज्वलनशीलता के बदले बर्फ के जल की बूँदें टपकती है, मैं ऐसा शून्य, निरावलंब,रिक्त हूँ कि जहाँ सिर्फ आते-जाते पल हैं, मैं ऐसी प्रसन्नता हूँ जो पाषाण जैसी कठोर सामाजिक पाबंदियों में जकड़ी हुई है, मैं वह प्रतिबिंब हूँ जो अपने आधार बिम्ब के उर में समाया रहता है । तुम्हारे आकाश का नीला बादल और उसकी सुंदर बिजली दोनों मैं ही हूँ ।

मैं नाम-रूप की व्यक्ति-सत्ता के रूप में सृष्टि-जीवन का नाश हूँ, लेकिन शरीर की निरंतरता के रूप में उसका अनन्त विकास भी हूँ । मैं मृत्यु के रूप में जीवन का अन्त हूँ, लेकिन जीवन के सतत क्रम के रूप में उसका अखण्ड विकास भी । मैं वीणा का तार हूँ, उस पर आघात और उससे उठने वाली झंकार की गति भी मैं हूँ । छत्ता, उसके भीतर का शहद, उसका पान करने वाला भ्रमर और इन सभी को भुला देने वाली विस्मृति मैं ही हूँ । मैं ही ओठ हूँ और ओठ पर की चाँदनी जैसी उजली हंसी भी ।

विशेष : महादेवी की इस भाव वाली कविताओं को आध्यात्मिकता और रहस्यात्मकता के आवरण में समझने का विशेष आग्रह किया जाता रहा है, लेकिन इसका आधार सनातन पुरुष-स्त्री संबंध की पार्थिवता है । अत्यंत सधे सुर का यह गीत है, भाषा, शब्द-चयन लाक्षणिक और व्यंजना प्रधान है । चातक-जलद, शलभ-दीपक और फूल-बुलबुल आदि प्रतीक परंपरागत अर्थ में ही आये है ।

7.3.5 शलभ मै शापमय वर हूँ...

शलभ मैं शापमय वर हूँ? / किसी का दीप निठुर हूँ
ताल है जलती शिखा / चिनगारियाँ श्रृंगार माला,
ज्वाल अक्षय कोष-सी / अंगार मेरी रंगशाला,
नाश में जीवित किसी की साध सुंदर हूँ ।
नयन में रह किन्तु जलती / पुतलियाँ अंगार होंगी,
प्राण में कैसे बसाऊँ / कठिन अग्नि समाधि होगी,
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु मंदिर हूँ ।
हो रहे झरकर दृगों से / अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल / निश्वास बनते धूम श्यामल,
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ ।
कौन आया था न जाना / स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अगुँलिया के / है मुझे पर युग बिताने,
रात में उर के दिवस की चाह का शर हूँ ।
शून्य मेरा जन्म था / अवसान है मुझको सवेरा,
प्राण आकुल के लिए / संगी मिला केवल अंधेरा,
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ ।

प्रसंग : यह गीत महादेवी वर्मा की काव्य-रचना 'सांध्यगीत' से लिया गया है । महादेवी वर्मा छायावादी रचनाकारों के बीच अपनी विशिष्ट स्त्री मनोभूमि और सधे सुर के गीतों के लिए जानी जाती हैं । शलभ-दीपक भारतीय दर्शन- भक्ति परंपरा में कामासक्ति के रुढ़ प्रतीक रहे हैं । महादेवी ने इस प्रतीक को परंपरा से लेते हुए उनके संबंधों की व्याख्या आधुनिक मध्यवर्गीय नारी की आत्मसजग दृष्टि से की है । परंपरा इस प्रतीक संबंध पर शलभ के पक्ष में विचार करती रही है । महादेवी ने पहली बार दीपक के पक्ष से विचार किया । उनके इस गीत का शलभ संस्कार-ग्रस्त आधुनिक मध्यवर्गीय पुरुष है, जबकि दीपक अतिबौद्धिक, विद्रोही आधुनिक मध्यवर्गीय नारी । महादेवी मध्यवर्गीय नारी की निजी मानसिक हकीकत को वैचारिक जामा पहनाते हुए इस गीत में ढालती हैं।

व्याख्या : महादेवी कहती हैं कि हे शलभ-पुरुष, मैं 'शाममय वर' हूँ मैं किसी और प्रकाशमान पुरुष का निर्मम दीपक हूँ । 'शापमय वर' इसलिए कि मैं एक ओर पुरुष प्रधान समाज के अभिशापों से ग्रस्त हूँ और दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा का वरदान मुझे प्राप्त है । इसी वरदान के कारण मेरे भीतर तुम्हारे पुरुष प्रधान समाज की दासता से मुक्ति की चाह, नये-नये सपने देखने की आकांक्षा और अपनी अस्मिता की आग जल उठी है । अब मैं तुम्हारा दीप बनने के बदले अपने मनोवांछित प्रकाशमान पुरुष की होने के लिए निर्मम भाव से कृत संकल्प हूँ ।

अपने मनोवांछित प्रकाशमान श्राप की आग मेरे मस्तिष्क में जल उठी है, उसी के अग्नि स्फुलिंग मेरे विचारों की श्रृंगार-माला है, क्रिया कलापों, अनुभावों का रंगस्थल मेरा यह शरीर उसी के अंगार का बना है । आज तो इसका अंग-प्रत्यंग ज्वाला का अक्षय कोष-सा बन गया है । मैं मरणधर्मा शरीर के भीतर उसी अपने आकांक्षित प्रकाशमान पुरुष की सुंदर चाह के रूप में जीवित हूँ ।

हे शलभ-पुरुष, यदि तू अपने पुराने संस्कारों और रंग-ढंग को लिए-दिये मेरी आँखों में रहना चाहता है तो रह, मैं तुम्हें रोकने वाली कौन हूँ? लेकिन इतना समझ ले कि तू जिन आँखों में रहना चाहता है उसकी जलती हुई पुतलियाँ तेरे लिए अंगार हो जायेंगी । तू अगर आँखों से भाग कर मेरे प्राणें में अपना बसेरा ढूढ़ेंगा तो वहाँ अग्नि की दुस्सह समाधि लगी होगी । अब तो तुम्हें मेरे स्त्रीत्व की अग्नि-परीक्षा से गुजरना होगा और उसमें तुम्हारा जलकर खाक होना निश्चित है । इस आग के बिना मैं मृत्यु का घर हूँ। मेरी मुश्किल यह है कि तुम्हें आश्रय दूँ तो कहाँ दूँ तुम्हारी रक्षा करूँ तो कैसे करूँ?

जो चिनगारियाँ पलकों के उठने-गिरने के साथ आँखों की आग से झरकर अलग हो गई वे अपने ताप खोकर ठंडी राख में बदल रही है और जो नि:श्वास हृदय के पिघले लावा से निकल बाहर आ गये वे काले धुएँ में बदल गये । मैं अपने मनोवांछित, मूल स्रोत, सनातन अग्निपुरुष की चेतना की ज्वाला के बिना महज राख का घर हूँ । जब तक मुझे उस आदि अग्निपुरुष से जुड़े रहने का बोध है तभी तक मेरे भीतर स्त्रीत्व की आग और स्वत्व की ज्वाला है ।

मुझे ठीक से, पूरा होशोहवास में ज्ञान नहीं है कि अंधेरी रात में सपने देखने के दौरान कौन जगाने आया था । नींद में थी, सपने में थी इसीलिए उसकी शक्ल देख न सकी, लेकिन उसने अपनी जिन अंगुलियों से छूकर मुझे जगाया था अभी भी उनकी स्मृति तरोताजा है । उन्हीं की स्मृति को पाथेय बनाकर मुझे युग जैसी लंबी रात काटनी है । हे शलभ पुरुष, अंधेरी रात के हृदय में मैं दिन की चाह का तीर हूँ । मैं अंधेरी रात, नींद और सपने के दौर से गुजर रही हूँ, लेकिन मेरा लक्ष्य गन्तव्य दिन है । इसीलिए मैं अंधेरी रात में होते हुए दिन को चाहती हूँ । रात को भेद कर दिन को हासिल करना मेरा अन्तिम लक्ष्य है ।

पुरुष प्रधान समाज के निपट अंधकारपूर्ण परिवेश में शून्य-नगण्य व्यक्तित्व के रूप में मेरा जन्म हुआ था । इतिहास इस बात का गवाह है । मैंने अपनी यात्रा अंधकारपूर्ण परिवेश के भीतर अपने शून्य व्यक्तित्व से शुरु, की है, लेकिन मेरी यात्रा की समाप्ति है-सुबह के द्वार पर । लंबी यात्रा के दौरान मेरे प्राण बहुत बेचैन थे और इस हालत में भी सिर्फ एक ही साथी था- अंधेरा ।पुरुषतंत्र का निपट अंधेरा मेरे बाहर था और निपट अज्ञान का अंधेरा मेरे भीतर था । साथी भी वही था, शत्रु भी वही था, उसी के साथ चलना था और उसी से लड़ना भी था । हे शलभ पुरुष, तुम मुझसे अपने मिलन की बात अभी मत कर । अभी तो मैं अंधेरे, नींद, सपने में हूँ अपने अग्नि- पुरुष, सूर्य-पुरुष को चाहते हुए परिस्थितिवश उससे दूर हूँ । मैं उसी के विरह में बनी रहना चाहती हूँ फिलहाल मैं उसी के इंतजार में यह बुरा वक्त काट देना चाहती हूँ । हे शलभ पुरुष, तुम मेरी पसंद नहीं हो, इसलिए तुम्हारे मिलने की बात मुझे स्वीकार नहीं है । मेरी पसंद वह अग्नि और सूर्यपुरुष है जो अभी दूर है, पर मै उसी को पाना चाहती हूँ । तुम्हारे मिलन से बेहतर मेरे लिए उसका विरह है, लम्बा इंतजार भी ।

विशेष :

1. इस गीत में महादेवी ने परंपरागत रुढ़ियों से ग्रस्त मध्यमवर्गीय शलभ-पुरुषों को अपनी नापसंद घोषित करते हुए अपने लिए अयोग्य ठहराया है । निजी नारीत्व का श्रेष्ठताबोध इसके पीछे है ।
2. इस गीत में वे ऐसे अग्नि-पुरुष, सूर्यपुरुष की आकांक्षा करती हैं जो अभी से सशरीर उन्हें प्राप्त नहीं है । यह अग्नि, सूर्यपुरुष उनके हृदय का सत्य है । उसके सशरीर अवतरण के इंतजार में युग-युगांतर का विरह स्वीकार है, लेकिन अपने लिए अयोग्य शलभ पुरुष से मिलन नहीं ।
3. चिंतन की प्रधानता के कारण भाषा व्यंजनाधर्मी होकर भी अर्थ को ठीक से उजागर नहीं कर पाती ।

7.3.6 मैं नीर भरी दुःख की बदली....

मैं नीर भरी दुःख की बदली

स्पंदन में चिर निस्पंद बसा, / क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते, / पलकों में निर्झरिणी मचली
मेरा पग पग संगीत भरा, / श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल, / छाया में मलय बयार पली

मै क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल, / चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी, / नवजीवन-अंकुर बन निकली
पथ को न मलिन करता आना, / पद चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में / सुख की सिहरन हो अंत खिली

विस्तृत नभ का कोई कोना, / मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही / उमड़ी कल थी मिट आज चली

प्रसंग : यह गीत भी 'सांध्यगीत' का है । इसकी रचनाकार महादेवी वर्मा हैं । इसमें वे नारी के समूचे परिचय और इतिहास को बदली के माध्यम से सामने लाती हैं । छायावाद में व्यक्तिगत ओर सामाजिक दोनों प्रकार की अनुभूतियों को प्रकट करने का चलन आत्मपरक-मैं की मुद्रा में था । यह गीत महादेवी की ओर से भारतीय नारी की समूची सामाजिक-ऐतिहासिक स्थिति का आत्मसाक्षात्कार है और आत्मकथ्य भी । यह गीत पुरुष की करुणा, सहानुभूति और की आत्मदया के निषेध ओर अपने दुःख के मूल कारणों के ज्ञान के सिरे से रचा गया है ।

व्याख्या : नारी जाति की सामाजिक-ऐतिहासिक वास्तविकता को 'बदली' की शक्ल में ढालती हुई महादेवी कहती है कि मैं आँसू (पानी) से भरी हुई दुःख की बदली हूँ । न जाने कितने वर्षो से पुरुष समाज की दासता के चलते मेरी साँसों में जड़ता समा गयी हैं और जब मैं दासता के असह्य दुःख से रोती बिलखती हूँ तो इस पुरुष समाज (विश्व) को नागवार लगता है और मेरी हँसी उड़ाने से बाज नहीं आता । मेरी आँखों में अभी भी उम्मीद के दीपक जल रहे हैं, लेकिन दुःख इतना असह्य है कि बरबस पलकों में आँसू उमड़कर उन्हें बुझा देते हैं । एक जमाना वह भी था, जब मैं पुरुष के कदम से कदम, से ताल मिलाकर चलती थी और मेरा जीवन संगीत जैसा मधुर हो गया था। तब मेरी साँसों से धरती के सुकुमार सुवासित सपने झरते थे और आकाश के इन्द्रधनुषी सपने भी । तब मेरा हृदय बहुत बड़ा और उन्मुक्त था, जो मेरे आश्रय में प्राणी थे वे भी मलय समीर की तरह आजाद थे । बाद में मेरी स्थिति उलट गयी । बुरे दिनों का दौर शुरु हुआ । पुरुष प्रधान व्यवस्था कायम हो गयी । वह मेरा मालिक बन बैठा और मैं उसकी अधिकृत दासी बन गयी । जब मैं पिता (क्षितिज) के घर में अपना नगण्य (धूमिल) व्यक्तित्व लेकर पैदा हुई तो उनकी भौहें कुंचित हो गयीं और शादी होने के पहले तक मैं निरन्तर उनकी गहन चिंता का कारण बनी रही ।

शादी होने पर मैं (जल-कण) अपने पति (रज-कण) से मिली और मेरी कोख से नया जीवन क्रम आगे बढ़ा । ससुराल जाते समय मुझे यह सीख दी गयी कि स्त्रीधर्म के

पथ पर चलना, उसे कलंकित करके यहाँ मत आना और ससुराल में पति के पद-चिह्नों पर चलना, अपने पदचिह्न अलग से बनाने की कोशिश मत करना । मेरे आने की स्मृति मात्र से पूरे ससुराल में खुशी की लहर दौड़ गयी थी । मेरे जीवन की विडम्बना यह रही कि मेरा जन्म हुआ पिता के घर और फूली-फली पति के घर में । मेरा ससुराल (नभ) बहुत बड़ा था, घर भी काफी बड़ा था, किन्तु उसका कोई भी हिस्सा मेरा नहीं था और आगे भी नहीं होने वाला था । पिता के घर से मैं निर्वासित थी और ससुराल में अधिकार और व्यक्तित्व शून्य । दोनों स्थानों के वाशिंदे अधिकारी पुरुष थे। मायके में पिता-भाई-भतीजे और ससुराल में ससुर-पति-बेटे के अधिकार पहले से सुरक्षित थे । परवशता, निर्वासन, आत्मनिषेध और आत्मबलिदान मेरा परिचय और इतिहास बन गया है । बहुत मंसूबे लेकर उमड़ती हुई ससुराल में आयी थी, लेकिन वे खाक होकर मेरे बीते कल के हिस्से बन गये । मेरा आज तो सिर्फ अपने को मिटाते रहना है, और फिर एक दिन पूरी तरह मिट जाना है ।

विशेष :

1. भारतीय स्त्री की प्रतिनिधि के रूप में महादेवी आम भारतीय स्त्री की सामाजिक वास्तविकता को अपने दुःख और आँसू के पोज में प्रस्तुत करती है ।
2. भारतीय संस्कृति का एक कालखंड ऐसा था, जब मैत्रेयी, शकुन्तला, सीता, यशोधरा जैसी व्यक्तित्व संपन्न, पत्नीत्व के स्वाभिमान और मातृत्व के गौरव से समृद्ध स्त्रियाँ थीं । महादेवी कविता के दूसरे चरण में अपने इसी गौरवपूर्ण समय को याद करती हैं ।
3. इस गीत में महादेवी 'मैं' (स्त्री) अर्थ और उसका तदरूप काव्योपकरण 'बदली' अर्थ का निर्वाह एक साथ करती हैं । 'बदलीं' 'मैं' के यथार्थानुभव को प्रकट करने का साधन है । इसलिए साध्य बदली नहीं, मैं है ।

7.3.7 टूट गया वह दर्पण निर्मम....

टूट गया वह दर्पण निर्मम
उसमें हँस दी मेरी छाया, / मुझमें रो दी मेरी माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया, / रहे खेलते आँख मिचौनी
प्रिय जिसके परदे में 'मैं' 'तुम'
टूट गया वह दर्पण निर्मम

अपने दो आकार बनाने, / दोनों को अभिसार दिखाने,
भूलों का संसार बसाने, / जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हॉस हँस दे डाला था निरुपम
टूट गया वह दर्पण निर्मम

कैसा पतझड़ कैसा सावन, / कैसी मिलन विरह की उलझन
कैसा पल घड़ियोंमय जीवन, / कैसे निशि-दिन कैसे सुख-दुःख
आज विश्व में तुम हो या तम
टूट गया वह दर्पण निर्मम

किसमें देख सवारूँ कुन्तल, / अंगराग पुलकों का मलमल,
स्वप्नों से आँसू पलकें चल, किस पर रीझूँ किससे रूँठूँ,
भर लूँ किस छवि से अन्तर तम
टूट गया वह दर्पण निर्मम
आज कहीं मेरा अपनापन, / तेरे छिपने का अवगुंठन,
मेरा बंधन तेरा साधन, / तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना दुःख प्रियतम
टूट गया वह दर्पण निर्मम

प्रसंग : यह गीत महादेवी वर्मा की प्रसिद्ध काव्यकृति 'नीरजा' का उपहार है । वे इस गीत में टूटे हुए दर्पण के माध्यम से आधुनिक नारी की विशिष्ट छवि को उजागर करती हैं । प्रस्तुत गीत का स्वर 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' से भिन्न और अति विद्रोही है । परंपरा में युवतियों का मोह दर्पण से कुछ ज्यादा रहा है । अपनी शक्ल देखने के लिए और उसके सामने सज-सँवर कर अपने प्रतिबिंब पर मुग्ध होने के लिए भी । महादेवी टूटे हुए दर्पण को माध्यम बनाकर नारी की पुरानी आत्ममुग्ध छवि के बरक्स आधुनिक सुशिक्षित मध्यमवर्गीय स्त्री की मोहभंग वाली मुद्रा सामने लाती है । इस आधुनिक नारी ने पुरुष प्रदत्त माया दर्पण को अपनी पुरुषग्रस्त विकृत तस्वीर दिखाने के कारण पूरी निर्ममता से तोड़ डाला था । महादेवी उसकी इसी कारगुजारी को भारी मन से, लेकिन बड़े कलात्मक ढंग से इस गीत में बयान करती है ।

व्याख्या : महादेवी कहती हैं कि वह समाज दर्पण आज टूट गया है जिसका निर्माण पुरुष समाज ने हृदय को मारकर अपने शातिर दिमाग से किया था और अपने स्वार्थ से यही समाज दर्पण औरत को अपनी छवि आँकने और निहारने के लिए दिया था । पुरुष निर्मित इस निर्मम समाज-दर्पण ने जीती-जागती हाड़ माँस की समूची औरत को अपने झिलमिल परदे और मनमोहक चौखटे में कैद कर लिया था और वह भी इतनी भोली और अंधविश्वासी थी कि पुरुष की दी हुई इसी सौगात पर पूरी तरह से मुग्ध थी। यह औरत को उसका निजी प्रतिबिम्ब न दिखाता था, औरत की जन्म से लेकर मौत तक जो भी छवि दिखाता वे पुरुष सापेक्ष थी । बेटी पर पिता, ब्याहता पर पति, विधवा और सती पर मृत पति का कब्जा था । पुराना समाज-दर्पण स्त्री को पुरुष की छाया के रूप में ही प्रतिबिम्बित करता था । इस दर्पण ने एक ही औरत के दो टुकड़े कर डाले थे । समाज-दर्पण के सामने वह हँसती हुई दिखती थी और घर के कोने में

या मन ही मन अपनी ममता पर रोती-बिलखती थी । बाह्य हास्य और अंतर-रुदन से उसकी दुनिया सजी थी । बाहर समाज के दर्पण में हँसती हुई औरत ने अंदर की असली औरत को इतना लुंज-पुंज बना दिया था कि वह पुरुष की पराधीन, जड़ और व्यक्तित्व-शून्य बनकर रह गयी थी । पुरुष समाज अपने और औरत के बीच भेदभाव परक आँख-मिचौनी का खेल हजारों साल से खेल रहा था । उसका शातिर आयोजक, खिलाड़ी और निर्णायक भी वही था और औरत थी कि अपने भोले विश्वास में बाजी हारती रही और पुरुष हमेशा जीतता रहा । पुरुष समाज संसार चलाने के लिए, प्यार-वार का एक ठोस दार्शनिक सिद्धान्त भी गढ़ लिया था । और इसी प्यार-वार, प्रेयसी, पत्नी, माँ की भुलभुलैया में नारी के दुःखों का बीज पड़ा ।

इस आधुनिक नारी ने अपनी और पुरुष समाज की समीक्षा करते हुए कहा कि मेरे लिए क्या सावन, क्या पतझड़, क्या मिलन, क्या विरह, क्या सुख, क्या दुःख, सब एक जैसा है । आज विश्व में या तो तुम्हारी सत्ता है या फिर तुम्हारा फैलाया हुआ अंधकार है । आगे यह नारी अपनी आत्म समीक्षा और अपने मन के असमंजस के बारे में कहती हैं कि मैंने पुरुष के दिये दर्पण को तोड़ डाला है और अपने सजने-सँवरने और अपनी छवि देखने के लिए स्वयं नया दर्पण गढ़ा भी नहीं है । आज मेरे पास वह अपनाव भी नहीं है जिसकी ओट में तुम अपने को छिपा सको । हे प्रिय, तुमने मेरी दासता को हमेशा अपने सुख का साधन समझा है । हे प्रियतम, वह जमाना लद गया जब, तुम मुझमें अपना सुख ढूँढ़ते थे और मैं तुम्हारे दुःख में अपना दुःख देखती थी । आज वह निर्मम दर्पण टूट गया है ।

विशेष :

1. इस गीत की भाषा छायावादी है । वह सीधे-सीधे नहीं कहती हैं कि दर्पण मैंने तोड़ डाला है, बल्कि यह कहती है कि 'वह टूट गया है ।'
2. सामान्यत: छायावादी कवि किसी माध्यम के जरिए अपनी बात कहते हैं । इस गीत में महादेवी टूटे दर्पण के जरिए अपनी मनोदशा प्रकट करती हैं ।

7.3.8 चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना....

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ।
जाग तुझको दूर जाना ।
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाह कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
आज या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले ।
पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना
जाग तुझको दूर जाना ।

बाँध लेगें क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना
जाग तुझको दूर जाना ।
वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया?
सो गई आँधी मलय की बात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
जाग तुझको दूर जाना ।

कह न ठंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी,
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी
है तुझे अंगार- शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना
आज तुझको दूर जाना ।

प्रसंग : यह गीत महादेवी वर्मा द्वारा रचित काव्य संग्रह 'सांध्यगीत' से लिया गया है। उन्होंने सीधे भारतीयजन को संबोधित करके राष्ट्रीय धारा के कवियों से बहुत कम कविताएँ लिखी हैं । महादेवी का यह गीत भारतीय जन-जागरण का गीत है । वे इसके माध्यम से भारतीय पुरुष और स्त्रियों दोनों का आह्वान करती हैं । आधुनिक काल में स्वाधीनता आंदोलन ने युगों-युगों से सोये भारत वासियों, पुरुष-स्त्री दोनों को जगाकर सजग बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । उसका असर सबसे पहले भारत के पढ़े-लिखे मध्यमवर्गीय परिवारों के युवक-युवतियों पर पड़ा । हमारे ज्यादातर कवि-कवयित्रियाँ इसी वर्ग से आये थे । द्विवेदी युग के मैथिलीशरण गुप्त हों, चाहे राष्ट्रीय धारा के माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान या छायावादी धारा के प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा आदि सभी ने राष्ट्रीय आंदोलन के सूर में अपना सुर मिलाते हुए भारतीयों को जगाने और आत्मसजग बनाने की पुरजोर कोशिश की । महादेवी के इस आह्वान गीत का सुर सीधे स्वाधीनता आंदोलन के जागरण से जुड़ा हुआ है ।

व्याख्या : महादेवी आह्वान करते हुए कहती है कि हे भारतवासी युवा-युवतियों! जागो शीघ्र से शीघ्र तुम आत्मसजग बनो, क्योंकि तुम्हें बहुत दूर आजादी के दरवाजे तक जाना है । आज आँखों में नींद कैसी और अस्तव्यस्तता कैसी? अपनी आँखों से आलस्य भगाओ ओर लंबी यात्रा के लिए कमर कसो ।

चाहे आज तुम्हारे उदघोष से स्थिर हिमालय का हृदय काँप उठे, चाहे तुम्हारी क्रांतिकारी क्रिया-कलापों को देखकर यह आकाश चुपचाप अलयकारी आँसू गारकर रोता रहे, आज चाहे तुम्हारे मार्ग के प्रकाश को घोर अंधकार की छाया निगलकर उस पर व्याप्त हो जाये या लपलपाती बिजलियों में निर्मम चक्रवाती आँधी जागकर गर्जने लगे, यात्रा के दौरान परिस्थिति चाहे जितनी विपरीत हो, ये शक्तिशाली भौतिक तत्व तुम्हारे रास्ते में चाहे जितनी अड़चनें खड़ी करे, तुम्हारे अस्तित्व को मिटाने की चाहे परिस्थिति खड़ी कर चाहे दे लेकिन तुम्हें इनसे डरना नहीं है, इनके आगे झुकना नहीं है, हार मानकर पीछे लौटना नहीं है, रुकना भी नहीं है । अपने प्राणों की परवाह किये वगैर तुम्हें आजादी के मरण-पथ पर अपनी अमरता के निशान छोड़ते हुए आगे बढ़ना है । आज जागो, तुम्हें यहाँ से बहुत दूर आजादी के द्वार तक जाना है ।

आज क्या मोम जैसे मुलायम और जीवन्त रिश्ते तुम्हें बाँध लेंगे, तुम्हारा पथ रोक लेंगे? क्या रंगीन परों वाली तितलियाँ, शोख और रंगीन युवतियाँ तुम्हारे पथ की बाधा बनेंगी, क्या भौरें की मधुर गुंजार के आगे विश्व का क्रंदन भुला दोगे? क्या फूल की ओस से गीली पंखुडियाँ तुम्हारा मन लुभाकर बीच रास्तें में ही डुबा देंगी? तुम अपने मन के भीतर इनकी छाँह के, भाव-संबंध, रुप और प्रकृति सौंदर्य की स्मृति के गुलाम मत बन जाना, उनके मोह में कैद मत हो जाना । आज तुम इनका मोह छोड़ दो, जागो क्योंकि तुम्हें बहुत दूर आजादी के द्वार तक जाना है ।

क्या आँसू की कुछ बूँदों में तुम्हारा बज्र कैसा कठोर हृदय धुलकर घुल गया है? क्या छोटे-मोट कष्टों-दुःखों को ताकतवर समझकर तुम भीरु बन गये हो? क्या तुम अपने जीवन का अमृत किसी और के हाथों में सौंप कर उससे दो घूँट मदिरा लाये हो और उसे पीकर बेसुध हो गये हो? क्या तुम्हारे हृदय में उत्साह, साहस, जोश की जो आँधी थी, आज वह मलयानिल का आवरण ओढ़ कर सो गई है? तुम्हारे भीतर मंद-मंद ठंडी सिर्फ साँस भर चल रही है? विश्व का अभिशाप-अज्ञान, मोह का अंधकार क्या हमेशा के लिए तुम्हारे पास आँखों की नींद बनकर आ गया है? अमृत-पुत्र, क्या आज तू अपने हृदय में मौत को बसाना चाहता है, सोते सोते मरना चाहता है? अरे जाग, तुम्हें बहुत दूर आजादी के द्वार तक जाना है ।

गीत का अंतिम छंद-बंध राष्ट्र के लिए समर्पित स्वाभिमानी औरतों के लिए है । हे मानिनी, ठँडी साँसे भरकर पुरुषप्रधान समाज के हृदय को जलाने वाली कथा कहने, शिकवा-शिकायत करने का यह वक्त नहीं है। यह देश की आजादी के लिए संघर्ष का वक्त है, इसलिए अपने दग्ध हदयवाली कहानी भूलकर भी मत कह । पुरुषों के साथ तुम्हारे जागने और उनके कंधे से कंधा, कदम से कदम मिलाकर स्वाधीनता के संघर्ष पथ पर आगे बढ़ने का यह वक्त है । जब हृदय में आग, उत्साह, जोश, साहस, ओज होगा, तभी आँखों में पानी, करुणा, ममता आदि सुंदर लगेगा । हे मानिनी यदि इस पथ पर तुम्हारी हार हो जाये तो वह भी तुम्हारे जय की पताका बन जायेगी ।

आत्मबलिदानी शलभ का शरीर तो एक क्षण के अंदर जलकर खाक हो जाता है, लेकिन वह जिस अमर दीपक के लिए अपना आत्म बलिदान करता है, वह अकारथ नहीं जाता, वह दीपक की ज्योति को समर्पित होकर उसी के साथ अमर हो जाता है । हे मानिनी आज तुम्हें स्वतंत्रता संघर्ष की अंगार वाली शय्या पर अपने हाथों से कोमल कलियाँ बिछाना है, लड़ने वाले पुरुषो के प्रति कोमल बने रहना है । अरे, तू जाग बहुत दूर आजादी के द्वार तक जाना है।

7.3.9 पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला....

पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा धन,
और होंगे नयन सूखे तिल बुझे औ' पलक रुखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ शत विद्युतों में दीप खेला
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला

अन्य होंगे चरन हारे,
और जो हैं लौटते, दे शूल को संकल्प सारे,
दुःखव्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे-संसृति से तिमिर में स्वर्ण-बेला
दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोयी निशानी,
आज जिस पर प्रलय विस्मित, मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हट औ' चिंगारियों का एक मेला
हास, का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रू- भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो
ले मिलेगा उर अचंचल, वेदना-जल, स्वप्न, शतदल
जान लो वह मिलन एकाकी विरह में है दुकेला
पंथ होने दो अपरिचित प्राण होने दो अकेला

प्रसंग : यह गीत महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'दीपशिखा' काव्यकृति से लिया गया है । वे छायावादी की विशिष्ट कवयित्री के रुप में मान्य है । 'दीपशिखा' की रचना तक पहुँचते-पहुँचते महादेवी अपनी सहज वैयक्तिक अनुभूति को चिन्तन से ढँक लेती है । महादेवी के गीतों में जो बातें अपने पाठकों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींचती हैं, उनमें से एक है-आंकाक्षित प्रणयवेदना की अनुभूति । शादी-शुदा होने और निजी दाम्पत्य जीवन के असफल होने के बावजूद एक स्त्री होने के नाते विरह की ऐसी पीड़ा की अनुभूति स्वाभाविक है ।

व्याख्या : महादेवी अपने मनोवांछित सनातन प्रणय-पुरुष से कहती है कि मेरे प्रणय का जो पथ है उसे आज विस्मृत हो जाने दो और प्राण को भी अब अपने से अलग-थलग पड़ा रहने दो । आज चाहे मेरे रास्ते में बादल की छाया अमावस का अंधेरा बनकर घिर जाए और चाहे यह घिरा बादल उस पर काले-काले आँसुओ की रिमझिम बरसात कर दे। वे स्नेह-शून्य आँखे कोई और होंगी जिनकी पुतलियों की चमक नाउम्मीद से बुझ जाती हैं और पलकें भावहीन हो जाती है, लेकिन मेरी चितवन स्नेह से गीली और उसमें सैकड़ों बिजलियों के दीपक जलते है, उम्मीदों का प्रकाश हैं । यदि आज इस हालत में पथ भूलता है तो भूल जाने दो और प्राण अकेला पड़ गया है तो अकेला रहने दो ।

वे पैर दूसरे होंगे जो चलकर हार मान लेते हैं, जो अपने संकल्पों को कष्ट के सामने निछावर कर देते है और बीच से लौट पड़ते हैं, लेकिन मेरे पैर तो दूसरी माटी के बने हैं । इन्होंने दुःख उठाने का व्रत ले रखा है और इनमें निर्माण का पूरा जोश भी है । ये अमरता के पथ के यात्री हैं । ये रात के अंधेरे से चलते-चलते संसार के आँचल में प्रात: काल की रोशनी ला धरेंगे ।

वह जीवनकथा किसी और की होगी, जिसकी अनुगूँज आकाश में खो जाती है, जिसे आकाश निगल लेता है, जो मिट्टी में दफन हो जाती है और जिसे धरती मिटा देती है । मेरी जीवन-कथा इससे बिल्कुल अलग है । आज तो मेरे कहानी पर अस्तित्व का नाश करने वाला प्रलय यानी महाकाल भी आश्चर्यचकित है, क्योंकि महाकाल का मुझे डर नहीं है और मैं निरर्थक मर मिटने वालों में से नहीं हूँ । मैं सतत क्रियाशील और आत्मसजग हूँ पानी और आग दोनों मेरे पास हैं । मैं तो रोज आँसू की मोतियों का बाजार और आग की चिनगारियों का मेला लगाती हूँ ।

हे सनातन प्रणयी, चाहे तुम मेरे पास अपने उपहास का दूत भेजो, मेरा उपहास करो या फिर गुस्से से मेरी टेढ़ी भौंहों और उजड़े जीवन को संभाल कर रखो, रोष से मेरी कुंचित भौहों और उजाड़ जीवन का आदर करो, अनुकूल-प्रतिकूल दोनों स्थितियों में मेरा हृदय पूरे संयम के साथ वेदना के आँसू और आशाओं-आकांक्षाओं के स्वप्नों के कमल अर्थात पानी और फूल का अहर्श लेकर तुम्हारा स्वागत करेगा, तुम्हारी पूजा करेगा । मेरा तन न सही, लेकिन सैकड़ों आकांक्षाओं का आगार करुणाप्लवित मेरा हृदय तुमसे अवश्य मिलेगा । तुम यह ठीक से जान लो कि मिलन हम दोनों को मिलाकर एक कर देगा, हम दोनों के अपने-अपने व्यक्तित्व का बोध मिटाकर रख देगा । हम दोनों एक दूसरे से अलग रहकर ही एक दूसरे के व्यक्तित्व को ठीक से जान और समझ सकते हैं । यदि विरह वेदना की बाढ़ के कारण आज मार्ग विस्मृत हो गया है तो जाने दो और तुमसे अलग-थलग होकर यदि प्राण अकेला पड़ गया तो पड़ा रहने दो । इस विरह जन्य अकेलेपन का अपना मजा है । तुमसे दूर होने का दुख तो है, लेकिन यह क्यों भूलते हो कि इसी दूरी ओर अलगाव के कारण तुम्हारे और अपने व्यक्तित्व की अस्मिता का बोध भी तो है ।

विशेष :

1. महादेवी का सुशिक्षित स्वतंत्र आधुनिक नारी की मनोभूमि से इस गीत की रचना करती हैं।
2. यह गीत महादेवी के मर्म को उजागर करता है । सनातन प्रिय की हृदय से पूजा का भाव ही इसमें प्रधान है । आँख, पैर, जीवन-कथा के उपकरणों से गीत को बुनते हुए वे हृदय तक ले जाकर उसे पूरा कर देती हैं ।
3. विरहजन्य चरमविस्मृति ओर अकेलेपन, व्यक्तित्व के अलगाव के क्षण में वे प्राणपण और हृदय से अपने प्रिय को समर्पित है और एक हैं, लेकिन दोनों के व्यक्तित्व का पृथक-पृथक बोध बना रहे, इसलिए वे अपने अलगाव को निरर्थक नहीं मानती हैं।

7.3.10 सब आँखों के आँसू उजले...

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला
जिसने उसको ज्वाला सौंपी/उसने इसमें मरकंद भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल / देता झर यह सौरभ बिखरा
वह अचल धरा को भेंट रहा / शत-शत निर्झर में हो चंचल,
चिर परिधि बना भू को घेरे / इसका नित उर्म्मिल करुणा जल
कब सागर उर पाषाण हुआ, / कब गिरि ने निर्मम तन बदला?
नभतारक सा खंडित पुलकित / यह सुर- धारा को चूम रहा,
वह अंगारों का मधु-रस / पी केशर-किरणों -सा झूम रहा ।
अनमोल बना रहने को कब टूटा कंचन हीरक पिघला?
नीलम मरकत के सम्पुट दो / जिसमें बनता जीवन-मोती
इसमें ढलते सब रंग-रुप / उसकी आभा स्पंदन होती?
जो नभ में विद्युत मेघ बना / वह रज में अंकुर हो निकला
संसृति के प्रति पग में मेरी / साँसो का नवअंकन चुन लो,
मेरे बनने-मिटने में नित / अपनी साधों के क्षण गिन लो
जलते खिलते बढ़ते जग में घुलमिल एकाकी प्राण चला
सपने सपने मे सत्य ढला ।

प्रसंग : यह गीत महादेवी वर्मा की प्रसिद्ध काव्य-कृति 'दीपशिखा' से लिया गया है । छायावाद की प्रतिनिधि कवयित्री के रुप में उनकी प्रतिष्ठा है । महादेवी वर्मा की काव्यकृतियों में उत्तरोत्तर अनुभूति की तुलना में चिंतन का रंग गाढ़ा होता गया है । उनकी इसी मनोभूमि पर यह गीत प्रातिष्ठित है । महादेवी वर्मा के चिंतन प्रधान गीतों को ध्यान देने पर आसानी से पहचाना जा सकता है । वे गीत की पहली पंक्ति-टेक में अपना कोई विचार स्थापित कर देती है, बाद में अनेक दृष्टांतों के सहारे उसकी पुष्टि करती चलती है । जैसे कि इस गीत में महादेवी के स्थापित निजी विचार है कि सब

की आँखों के आँसू उज्जवल होते हैं और सबके सपनों, आकांक्षाओं में सत्य मौजूद रहता है । वे अपने इसी स्थापित विचार को दीपक-फूल, सागर-गिरि, आकाश- धरती के दृष्टांतों से पुष्ट करते हुए एक पूरा गीत रच देती हैं ।

व्याख्या : महादेवी का कहना है कि जड़ हों या चेतन, सभी के आँसू के रंग एक जैसे सफेद होते हैं और सबके अन्तर्जगत में, कल्पना-आकांक्षा में एक ही सत्य मौजूद रहता है । दीपक और फूल को देखिए-जिस सृष्टि निर्माता ने दीपक को ज्वाला दी है, उसी ने फूल को पराग से भर दिया है । दीपक है कि प्रतिपल अपने को घुलाकर संसार पर अपना प्रकाश निछावर कर देता है और फूल है कि अपना पराग धरती पर झाड़कर चारों तरफ अपनी सुगंध फैला देता है । दोनो सृष्टि के मित्र हैं, लेकिन दोनों के आत्मदान का रुप अलग- अलग है । दीपक जलता तो है, लेकिन फूल की तरह खिल नहीं सकता और फूल है कि खिलता तो है, पर दीपक की तरह जल नही सकता ।

पहाड़ और सागर को लीजिए । वह पहाड़ है कि अपनी जगह से टस से मस नहीं होता, लेकिन अपने ऊपर सैकड़ो झरनों को बहाकर धरती को गले लगाये रहता है और यह सागर है कि न जाने कब से करुणा-जल की लहरें उठाकर धरती को चारों तरफ से घेरे रहता है । सागर का हृदय जल के कारण हमेशा से इतना सरस है कि वह पहाड़ जैसा नीरस नहीं बन सकता और पहाड़ का स्वरुप हमेशा से इतना कठोर रहा है कि वह सागर जैसा सरस नहीं बन सकता । यद्यपि दोनों अपने-अपने ढंग से धरती के मंगल के निमित्त काम करते है ।

हीरे और सोने की तरफ जरा निहारिए । एक ओर यह हीरा है जो जितने भी टुकड़ों में खंडित हो जाये, उसकी धार चाहे जितनी तीक्ष्ण हो, पर वह हमेशा आकाश के तारे जैसा चमकीला और खुशमिजाज बना रहता है और दूसरी ओर सोना है आग की मदिरा का पान करके भी केशरिया चमकीले रंग में हमेशा झूमता रहता है । दोनों की अपनी-अपनी प्रकृति है । अनमोल कहलाने के लोभ में क्या सोना कभी हीरा जैसे महीन टुकड़े में बँटता है और हीरा महीन टुकड़े में बँटता है तो है पर सोने जैसा पिघलता है? नही न । हालाँकि दोनों संसार की सुदंरता बढ़ाने के लिए अपने को निछावर कर देते हैं ।

अन्तहीन आकाश और उसमें रज-कण जैसी धरती को देखिए । मरकत जैसे नीले आकाश और मरकत जैसी नीली, हरी-भरी धरती के बीच (दो संपुटों में) एक ओर आकाश में पानी (मोती) वाला बादल शक्ल लेता है, दूसरी ओर धरती सभी वस्तुओं को अपना-अपना रुप-रंग देती है । यदि बादल में आकाश की आभा निखरती है तो वस्तुओं के रुप-रंग में धरती की आभा खिलती है । ऊपर से देखने में दोनों के बीच बड़ी दूरी है, संबंध नहीं दिखता, लेकिन वही आकाश का बिजली वाला मेघ धरती के रज में छिपे बीज को नमी देकर स्वयं उसका अंकुर बनकर निकल पड़ता है । धरती और आकाश

दोनों जीवन के कल्याणार्थ अकेले-अकेले, लेकिन एक उद्देश्य से प्रेरित होकर साथ में मिलकर काम करते हैं ।

सृष्टि के चप्पे-चप्पे में, कण-कण में तुम चाहो तो मेरी साँसों को नये-नये रूप में आँक लो, एक-एक चीज को चुन लो या फिर प्रतिपल में बनते ओर मिटते रुपों में अपनी सफल-असफल चाहो को गिन लो । इस संसार में जो कुछ मिटकर खाक हो रहा है या नया बन रहा है या फिर पल-प्रतिपल बदलते हुए आगे बढ़ा रहा है सबके भीतर एक ही प्राण घुल-मिलकर धड़क रहा है । हर वस्तु के अन्तर्जगत में, कल्पना में एक ही सत्य स्थित है ।

विशेष :

1. यह एक चिंतन प्रधान गीत है । अभिव्यक्ति व्यंजनाप्रधान है, पर अर्थ की दृष्टि से साफ नहीं है ।
2. जगत की हर वस्तु के अन्तर्जगत में एक ही सत्य-प्राण, मंगल भावना का स्वीकार हैं।
3. सब में सत्य के मौजूद होने की बात दो भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले युग्मों-दीपक-फूल, पहाड़-सागर, सोना-हीरा, आकाश-धरती-के काव्योपकरणों के जरिए कही गयी है ।

7.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

सरस्वती (मासिक) द्विवेदी युग की सबसे ख्यात पत्रिका । सन 1903 से 1920 तक इसके संपादक पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी थे । खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार में इस पत्रिका का सर्वाधिक योगदान रहा है । यह प्रयाग (इलाहाबाद) से प्रकाशित होती थी ।

चाँद-(मासिक) छायावाद युग की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में से एक है । इसके प्रसिद्ध संपादक पंडित नंदकिशोर तिवारी थे । सन 1922 से प्रयाग से इसका प्रकाशन आरंभ हुआ था। इसके फाँसी अंक, अछूत अंक, मारवाड़ी और विदुषी अंक बहुत चर्चित हुए ।

मर्यादा (मासिक)-यह पत्रिका सन 1910 में प्रयाग से निकलनी शुरू हुई । इसके संपादकों में पुराषोतमदास टंडन और पंडित कृष्णकान्त मालवीय थे ।

स्त्री-दर्पण (सचिव मासिक)-यह पत्रिका सन 1904 में प्रयास से निकलनी आरंभ हुई और इसकी संपादिका थी-रामेश्वरी नेहरु ।

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के काव्य और गद्य के प्रेरक कारणों पर संक्षेप में विचार कीजिए ।
2. महादेवी वर्मा के काव्य की विकास-यात्रा पर विचार कीजिए ।
3. महादेवी वर्मा ने गद्यविकास की विविध दिशाओं की चर्चा दीजिए ।

7.6 संदर्भ ग्रंथ

1. महादेवी वर्मा - यामा - लोकभारती प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण- 1995

2. अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-1999 ।
3. पथ के साथी-राधाकृष्ण प्रकाशन-नई दिल्ली, संस्करण-1992 ।
4. संचयन-शिप्रा प्रकाशन-आगरा, संस्करण- 1985
5. सुमित्रानंदन पंत (सं.) - महादेवी स्मरणग्रंथ, लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद संस्करण- 1967 ।
6. गंगा प्रसाद पांडेय (सं.) महादेवी वर्मा, राजपाल एण्ड संज दिल्ली, संस्करण-1992।
7. निर्मला जैन (सं.) - महादेवी संचयिता, वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली संस्करण-2002।

इकाई-8 महादेवी वर्मा के काव्य का अनुभूति एवं अभिय्यंजना पक्ष

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 महादेवी वर्मा का काव्य: अनुभूति पक्ष

- 8.2.1 काव्यदृष्टि
- 8.2.2 वैयक्तिक अनुभूति और कल्पनाशीलता
- 8.2.3 स्त्री स्वत्व, आकांक्षा और प्रणयानुभूति
- 8.2.4 दुःखवाद और वेदनानुभूति
- 8.2.5 सौन्दर्य और प्रकृति चित्रण
- 8.2.6 नव रहस्यानुभूति

8.3 महादेवी वर्मा का काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

- 8.3.1 काव्य भाषा
- 8.3.2 अलंकार विधान
- 8.3.3 बिम्ब विधान
- 8.3.4 प्रतीक विधान
- 8.3.5 काव्यरूप : गीत विधान
- 8.3.6 छंद विधान

8.4 मूल्यांकन

8.5 विचार सन्दर्भ और टिप्पणी

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 सन्दर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- महादेवी वर्मा के काव्य की अनुभूति के विविध पक्षों से आप परिचित हो सकेंगे,
- उनके काव्य के अभिव्यंजना पक्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- छायावादी काव्य में महादेवी वर्मा के विशिष्ट योगदान को जान सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

महादेवी वर्मा छायावादी काव्य के आधार स्तंभों में से एक हैं । वे स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में पैदा हुई, पढ़ी-लिखी और उससे प्रभावित हुई । एक ओर उन्हें भारतीय संस्कृति के समृद्ध अतीत ने, वेदान्त दर्शन ने, महात्मा बुद्ध के दुःखवाद, भक्ति साहित्य

ने प्रभावित किया तो दूसरी ओर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष, महात्मा गांधी के व्यापक राष्ट्रीय-सामाजिक कार्य और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वमानववाद ने न केवल अपनी ओर खींचा, बल्कि भीतर तक प्रभावित किया । इन सबका अभिन्न, मौलिक, जीवन्त प्रतीक है महादेवी का काव्य । उनकी कविता में अनुभूति के रूप में जो कुछ है, उसका सीधा संबंध भारतीय संस्कृति के गौरवशाली अतीत से लेकर उनके दौर के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष से है । उनकी कविता में राष्ट्रीय जागरण के साथ नारी जागरण है । उनकी कविता में यदि एक आम भारतीय स्त्री की पीड़ा है तो एक आधुनिक सुशिक्षित मध्यमवर्गीय भारतीय नारी की आत्म सजगता, अस्मिता, मुक्ति की आकांक्षा, विद्रोह और स्वप्नों की अभिव्यक्ति भी । उन्होंने छायावादी कविता को अनुभूति के साथ अभिव्यंजना की दृष्टि से भी समृद्ध किया । स्त्री की भाषिक मनोरचना से हिन्दी जगत का परिचय मीरा के बाद महादेवी ने करवाया । इसी कारण छायावादी रचनाकारों के बीच उनकी सर्जनात्मक काव्यभाषा-शब्द चयन, बिम्ब-प्रतीक-अलंकार विधान का अपना महत्व है । प्रसाद, पंत, निराला की तरह प्रबंधात्मक रचना में उन्हें रस नहीं था । शुरु से आखिर तक गीतों का सजाते, सँवारते और समृद्ध करते हुए उन्होंने अपनी काव्यायात्रा पूरी कर दी ।

8.2 महादेवी वर्मा का काव्य : अनुभूतिपक्ष

8.2.1 काव्यदृष्टि

महादेवी वर्मा छायावाद के प्रतिनिधि रचनाकारों में से एक है जो कविताएँ तो लिखती हैं और अपने काव्यसंग्रहों की भूमिकाओं में काव्य के विविध पक्षों पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए अपने काव्यपथ को समझाने की कोशिश भी करती हैं । उनकी दृष्टि में काव्य खण्ड का आंशिक नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन को, चेतना-अनुभूति के समस्त वैभव को स्वीकार करके चलता है । "अत: कवि का दर्शन जीवन के प्रति आस्था का दूसरा नाम है ।' दर्शन में चेतना के प्रति अनास्था संभव है, लेकिन काव्य में अनुभूति के प्रति अविश्वास संभव नहीं है । दूसरी बात-व्यवहार जगत, इतिहास,विज्ञान आदि प्रत्यक्ष यथार्य और इतिवृत्त को जितना महत्व देते हैं, काव्य उतना महत्व नहीं देता । वह अपने हृदय स्थित यथार्थनुभूति को सर्वाधिक महत्त्व देता है । इसीलिए काव्य में विषय का उतना महत्व नहीं होता, जितना हृदय की संवेदनशीलता का । काव्य की उत्कृष्टता विषय के बदले कवि की तलस्पर्शी संवेदनशीलता पर निर्भर है । इन्होंने स्पष्ट कहा कि 'काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं । उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिए जो सबको अपने स्पर्श मात्र से सोना कर दे ।' तीसरी बात-कवि केवल प्रत्यक्ष तक सीमित नहीं होता । वह अप्रत्यक्ष को भी ग्रहण करता है । दरअसल "प्रत्येक सच्चे कलाकार की अनुभूति प्रत्यक्ष सत्य ही नहीं, अप्रत्यक्ष सत्य का भी स्पर्श करती है, उसका स्वप्न वर्तमान ही नहीं, अनागत को भी रूप रेखा में बाँधता है और उसकी भावना यथार्थ ही नहीं, संभाव्य यथार्थ को भी मूर्तिमत्ता देती है, परन्तु

इन सबकी व्यष्टिगत और अनेक रूप अभिव्यक्तियाँ दूसरों तक पहुँचकर ही तो जीवन की समष्टिगत एकता का परिचय देने में समर्थ है । '

महादेवी ने काव्य के भीतर सत्य, सौन्दर्य और कल्पना की स्थिति और उनके पारस्परिक संबंधों पर जगह जगह विस्तार से विचार किया है । उनका मानना है कि "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है । एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त । इसी से साधन के परिचय-स्निग्ध खंड से साध्य की विस्मयकारी अखंड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनंद की लहर उठाता हुआ चलता है ।'

काव्य सत्य की प्राप्ति के लिए सौन्दर्य का सहारा लेता है, लेकिन यह सौन्दर्य एकांगी न होकर जड़-चेतन के समस्त अन्तर्बाह्य पर निर्भर रहता है । कल्पना भी स्वयं साध्य नहीं है, वह कवि की अनुभूति को सहज 'अनुरंजित' करने का काम करती है ।

8.2.2 वैयक्तिक अनुभूति और कल्पनाशीलता

"मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है । स्वच्छंद घूमते-घूमते थककर वह अपने लिये यह सहस्त्र बंधनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बंधनों से ऊबकर उसको तोड़ने में अपनी सारी ताकत लगा देता है । छायावाद के जन्म का मूल कारण मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है । उसके जन्म से प्रथम कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा । स्वच्छंद छंद में चित्रित मानव-अनुभूतियों का नाम 'छाया' उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।"

- यामा

महादेवी का जमाना अंग्रेजी उपनिवेशवाद और आधुनिक व्यक्तिवाद का था । उस जमाने में अपने देश, समाज और निजी मुक्ति की आकांक्षा और संघर्ष सर्वोपरि था । उस समय हर पढ़ा-लिखा मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की पहचान और उसकी अभिव्यक्ति चाहता था । यही कारण है कि छायावादी काव्य में सामान्य अनुभूति के बदले स्वानुभूति, विषय नहीं, विषयी की प्रधानता है । वस्तु क्या और कैसी है, यह महत्वपूर्ण नहीं रह गया था । महत्वपूर्ण यह हो गया था कि कवि उसे अपनी नजर से कैसे देखता है । छायावादी कवि अपने सिवाय हर बाहरी वस्तु को अपने हृदय के रंग से रंगकर देखता है, हर वस्तु पर अपनी अनुभूति का रंग चढ़ाकर सन्तुष्ट होता है । "स्वानुभूति के लिए ऐसा मानसिक परिवेश अनिवार्य रहता है जिसमें हम किसी के सुखात्मक-दुःखात्मक संवेदन या मनोरोग को निज का स्वीकार करते है । स्वानुभूति केवल सत्य की अनुभूति नहीं, वरन् अपने विशेष मानसिक परिवेश में परीक्षित स्वीकृत सत्य है ।' इसका प्रभाव हिन्दी के सभी छायावादी कवियों के काव्य पर पड़ा है । यदि मध्ययुग के कबीर, तुलसी और मीरा के कुछ स्वानुभूतिपरक काव्य को छोड़ दें, तो आधुनिक काल में पहली बार छायावादी कवियों ने अपने हृदय के वैभव-सुख, दुःख को

हिन्दी समाज के सामने रखा और उसे प्रकट करने का अंदाज भी सामान्यत: आत्मपरक है । निराला ने स्पष्ट कहा कि "मैंने 'मैं' शैली अपनाई और महादेवी ने बदली की ओट लेकर कहा कि "मैं नीर भरी दुख की बदली' । यदि छायावाद के पुरुष कवि-प्रसाद, पंत, निराला आदि-अपने व्यक्तित्व की पहचान और उसकी अभिव्यक्ति चाहते हैं, तो महादेवी अपने नारी व्यक्तित्व की महादेवी ने 'यामा' की भूमिका 'अपनी बात' में लिखा है कि " आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है । हम मनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रहना चाहते है, अपनी प्रत्येक कंपन को लिख लेने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल है । संभव है यह उस युग की प्रतिक्रिया हो जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर संसार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आहत करना था ।'

महादेवी ने अपनी कविताओं के माध्यम से अपने हृदय की भावकथा कही है और स्त्रियों की प्रतिनिधि होने के कारण आम भारतीय नारी और पढ़ी-लिखी मध्यवर्गीय स्त्री की भी । और दोनों को प्रकट करने का अंदाज उनका प्राय आत्मपरक (मैं शैली) है । इस प्रकार उन्होंने अपनी कविताओं में अपनी और आधुनिक भारतीय नारी के यथार्थ, स्वप्न, मुक्ति की आकांक्षा और स्वत्व का गीत गाया है । इसलिए वह वैयक्तिक रंग में होकर भी विशुद्ध रूप से वैयक्तिक नहीं है, उसका सामाजिक आधार है । मसलन-

मेरे ओ विहग से गान ।

सो रहे उर-नीड़ में मृदु पंख सुख-दुःख के समेटे
सघनविस्मृति में उनींदी अलस पलकों को लपेटे
तिमिर सागर से धुले । दिशि कूल से अनजान ।
खोजता तुमको कहाँ से आ गया आलोक सपना?
चौक तौले पंख, **तुम को याद आया कौन अपना**?
कुहर में तुम उड़ चले । किस छाँह को पहचान?

यह सुप्ति और जागरण, तिमिर और आलोक महादेवी का अपना यथार्थ तो है ही, उस जमाने की हर पढ़ी-लिखी मध्यमवर्गीय स्त्री का भी यथार्थ कमोवेश यही है ।

8.2.3 स्त्री-स्वत्व, आकांक्षा और प्रणयानुभूति

"साहित्य यदि स्त्री के सहयोग से शून्य हो तो उसे आधी मानवजाति के प्रीतीनीधत्व से शून्य समझना चाहिए । पुरुष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है, परंतु यथार्थ के अधिक समीप नहीं, पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव । अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेंगे, वैसा शायद पुरुष बहुत साधना के उपरान्त ही दे सके।" - **श्रृंखला की कड़ियाँ**

छायावादी कविता को एक युगीन सामूहिक पहचान प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने मिलकर दी थी, लेकिन नारी स्वत्व, आत्मजागृति, विद्रोह, मुक्ति, आकांक्षा, प्रणयानुभूति की पहचान अकेले महादेवी ने दी थी । उन्होंने छायावादी कविता में नारी को जो पहचान दी, वह प्रसाद-पंत-निराला की नारी पहचान से अलग थी, कारण यह है कि वे पढ़ी- लिखी स्त्री थीं । वे अपने और अपनी स्त्री जाति के यथार्थ को जिस रूप में, जितने निकट से जानती थी, वह पुरुष कवियों के लिए पुरुष होने के कारण प्रकृत्या संभव न था । उन्होंने छायावादी कविता की पुरुषप्रधान नारी विषयक दृष्टि और चित्रण की समीक्षा करते हुए कहा है कि "छायावाद ने उस कठोर अचलता से शापमुक्ति देने के लिए नारी को प्रकृति के समान मूर्त और अमूर्त स्थिति दे डाला । उस स्थिति में सौन्दर्य को एक रहस्यमयी सूक्ष्मता और विविधता प्राप्त हो गयी, परन्तु जीवन की यथार्थ रेखायें धुँधली और अस्पष्ट हो गयी ।' कुल मिलाकर छायावाद की नारी ' 'पुरुष के सौन्दर्य, स्वप्न, आदर्श आदि का प्रतीक है ।' यह सही है कि छायावादी कवि पुरुषों ने द्विवेदी युग की तुलना में नारी के अन्तर्बाहय को न केवल अधिक गहराई में देखा, बल्कि उससे ज्यादा मुक्त और रंगीन वातावरण में चित्रित भी किया । लेकिन महादेवी ने उसके अन्तर्बाहय जगत को जिस रूप में देखा, पहचाना और चित्रित किया, वैसा ये कवि नहीं कर सके। महादेवी ने पुरुषों को आगाह करते हुए साफ शब्दों में कहा कि नारी "आज इतनी संज्ञाहीन और पंगु नहीं है कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य और गति के संबंध में निश्चित कर ले ।'

महादेवी ने अपनी कविताओं में आधुनिक लोकतंत्र की समानता की भूमि पर नारी-पुरुष के प्रेम संबंध को मान्य रखा । बावजूद इसके वे पुरुष के वर्चस्व से मुक्त और व्यक्तित्व से अलग नारी के व्यक्तित्व की अपनी पहचान भी चाहती है । उनकी कविताओं में भारतीय नारी के बाहय रूप संभार, मांसल सौन्दर्य से अधिक उसके हृदय का वैभव प्रकाशित है, उसके अन्तर्जगत का सब कुछ । महादेवी अपने काव्य में स्त्री-श्राप प्रणय-संबंध के आधुनिक, नये संसार को सामने लाती है । सामाजिक बन्धनों से पूरी तरह मुक्त न होने के कारण महादेवी का नारी-स्वर अन्तर्मुखी है, किन्तु दृढ़ है । उनकी प्रारंभिक कविताओं में निजी दाम्पत्य के दुःखद अनुभव और असफलता का भी रंग घुल-मिल गया है । सम्मोहन और पीड़ा के बीज यहाँ तो हैं ही, दिव्य आवरण में ढाँकने की कोशिश भी यही से शुरु, होती है । देखें-

अलक्षित आ किसने चुपचाप, सुना अपनी सम्मोहन तान
दिखाकर माया का साम्राज्य, बना डाला इसको अनजान
मोह-मदिरा का आस्वादन किया क्यों हे भोले जीवन ।
जिन चरणों की नख- आभा ने हीरक-जाल लजाये
उन पर मैंने धुंधले से आँसू दो-चार चढ़ाये
इन ललचायी पलकों पर जब पहरा था बीड़ा का

साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का । - **नीहार**

महादेवी की प्रणयाभिव्यक्ति का स्वरूप आँसू प्रधान है । उसका कारण सामाजिक है । पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था ने नारी के लिए निषेध और दासता की कठोर प्रस्तर कारा का निर्माण कर डाला था, जब इस बात का उसे पहले-पहल ज्ञान हुआ तो रोना ही आया । महादेवी ने अपनी अनेक कविताओं में निजी ओर नारी जाति की मनोदशा की अभिव्यक्ति के लिए यही मुद्रा धारण की है । उनकी कविताओं में एक पढ़ी-लिखी मध्यमवर्गीय स्त्री का अपनी अभिव्यक्ति के आकुल हृदय तो दिखाई पड़ता ही है, इसके अलावा उसकी तेजोद्दीप्त मुद्रा और प्रबल अस्मिता भी दिखाई पड़ती है । अपने आकांक्षित प्रय के सामने वे मिटने के अधिकार का निर्णय अपना मानती है और अपनी पीड़ा के सामने उसके हृदय की पीड़ा को परखने का भी महादेवी के इस नये प्रेम का अनोखापन यह है कि प्रबल आत्मबोध के बावजूद वे अपने मनोभिलषित प्रिय का मनुहार और आह्वान करती हैं ।

जो तुम आ जाते एक बार ।
कितनी करुणा कितने संदेश, पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार-तार, अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पद पखार । - **नीहार**

महादेवी की कविताओं में आधुनिक मध्यवग्रीय नारी का एक दूसरा स्वर-अति बौद्धिक, आत्मसजग और विद्रोही नारी का-मिलता है । यह ऐसी विद्रोही नारी है जो अपनी पसंद-नापसंद न सिर्फ जानती है, बल्कि उसे प्रकट करने का साहस भी रखती है । वह अपनी पुरुष दासता, उसके प्रति विद्रोह से बखूबी परिचित है और स्वयं कोई नवनिर्माण न कर पाने की स्थिति ओर असमंजस से भी परिचित है । महादेवी आधुनिक नारी के विद्रोह और असमंजस दोनों का बयान एक ही कविता में करती हैं । अपनी पुरुष दासता का ज्ञान और उसके प्रति असहमति का स्वर यह है-

आज कहाँ मेरा अपनापन, तेरे छिपने का अवगुंठन
मेरा बंधन तेरा साधन, तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुममें अपना दु:ख प्रियतम । टूट गया वह दर्पण निर्मम ।

एकाधिकार वाले पुरुष माया-दर्पण को तोड़ देने के बाद स्वयं नया दर्पण न बना पाने का संकट यह है-

किसमें देख संवारुँ कुंतल, अंगराग पुलकों का मल मल,
स्वप्नों से आँजू पलकें चल, किस पर रीझूँ किससे रुठूँ,
भर लूँ किस छवि से अन्तरतम । टूट गया वह दर्पण निर्मम ।

महादेवी की कविताओं में आधुनिक नारी का एक तीसरा स्वर भी सुनाई पड़ता है । वे पुरुषप्रधान समाज व्यवस्था के भीतर नारी जाति के परिचय और इतिहास का, उसकी व्यक्तित्व शून्यता, अधिकार हीनता ओर उसके परवश आत्मबलिदान का बयान उसकी प्रतिनिधि बनकर करती हैं ।

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल, चिन्ता का भार बनी अविरल
रज-कण पर जल-कण हो बरसी, नवजीवन अंकुर बन निकली
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली
मैं नीर भरी दुःख की बदली ।

स्वाधीनता आंदोलन के मद्देनजर महादेवी सोई हुई स्त्रियों को न केवल जगाती है, बल्कि देशमुक्ति की राह में पिछला दुःख भुलाकर पुरुष को सहयोग देने का उन्हें दिशा निर्देश भी करती हैं । वे परिस्थिति के अनुरूप स्त्री की आग और करुणा दोनों की पक्षधर हैं।

कह न ठंडी साँस में भूल वह जलती कहानी
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका
राख क्षणिक पतंग है अमर दीपक की निशानी
जाग तुझको दूर जाना ।

8.2.4 दुःखवाद और वेदनानुभूति

महादेवी की कविताओं की बाहरी मुद्रा आरंभ से ही विशेष रूप से करुणा और वेदना प्रधान रही है । जब इस प्रकार की प्रवृत्ति पर समकालीन आलोचकों ने सवाल उठाना शुरु किया तो उन्होंने 'रश्मि' की भूमिका में अपने पक्ष का बचाव करते हुए एक साथ कई तर्क दे डाले । उनका पहला जवाब यह है कि "संसार साधारणत: जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है । जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी । कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है ।'' दूसरी बात- "संसार को दुखात्मक समझने वाले बुद्ध दर्शन से मेरा बचपन में असमय ही परिचय हो गया था ।' तीसरी बात- "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है तो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है ।' उनका मानना है कि अपने दुःख को विश्व के दुःख से एकाकार कर देना ही कवि का मोक्ष, अमरत्व है । यह "जीवन को अधिक मधुर और उर्वर बनाता है ।' अन्तत: महादेवी ने इसका उदात्तीक्तण करके दार्शनिक जामा पहनाते हुए यह कहा कि "मुझे दुःख के दोनों रूप प्रिय है । एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा में पड़े हुए असीम चेतना का क्रंदन हैं।

यह बिल्कुल सही है कि महादेवी को जीवन में किसी प्रकार का भौतिक (पार्थिव) अभाव नहीं था, लेकिन यह उनके जीवन यथार्थ का एक पहलू है । उनके जीवन यथार्थ का दूसरा पहलू यह भी है कि उन्होंने अपने निजी दाम्पत्य को स्वेच्छा से तिलांजलि देकर

एक आत्मनिर्भर, स्वतंत्र,विद्रोही स्त्री का जीवन जिया था, लेकिन वे अपनी कविताओं में जिस स्त्री-पुरुष के प्रणय संबंध की कामना करती है, वह उनके पक्ष में अपने लिए मनोकांक्षित पुरुष के अभाव से पैदा हुई थी । उनका मनोकांक्षित पुरुष उनके जीवन का सत्य कभी नहीं बन सका, वह केवल हृदय-सत्य बन सका । एक हाड़-मांस और आकांक्षा से पूर्ण स्त्री की अपने मनोकूल, सर्वथा योग्य पुरुष की तड़प को ही वे सनातन पुरुष-स्त्री के प्रणय और विरह में ढालती हैं । ऐसे पुरुष की प्रबल लालसा ओर सशरीर उसकी अनुपस्थिति ही वह मूलभूत कारण है जो महादेवी की निजी तौर पर शुरु से आखिर तक उनकी कविताओं में कमोवेश अपना रूप बदलते हुए मौजूद है । प्रारंभिक कविताओं में यह विरह वेदना वैयक्तिक और आवेगात्मक है, पर धीरे-धीरे वह सहृय बन जाती है । इसका प्रारंभिक रूप देखिए-

बिछाती थी सपनों के जाल तुम्हारी वह करुणा की कोर
गयी अधरों की मुस्कान मुझे मधुमय पीड़ा में बोर
भूलती थी मैं सीखे राग बिछलते थे कर बारम्बार
तुम्हें तब आता था करुणेश उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार
मेरी आहें सोती थीं इन ओठों की ओटो में
मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में । **'नीहार'**

दरअसल महादेवी ने अपने लिए जिस पूर्ण पुरुष की कामना की थी, उस समय का मध्यमवर्गीय समाज ऐसे पुरुष को जन्म न दे सका था और जो नवपुरुष समुदाय उनके सामने था, वह पढ़ा-लिखा होने के बावजूद अपने भीतरी मनोलोक में पुराने एकाधिकार वाले संस्कारों से पूरी तरह मुक्त न हो पाया था । ऐसे नवमध्यमवर्गीय पुरुष को उन्होंने अपने लायक नहीं समझा, इसलिए उसे अयोग्य ठहरा दिया । आकांक्षित, लेकिन ऐन्द्रिय स्तर पर अव्यक्त पूर्ण पुरुष को स्त्री की सनातन पुरुष-कामना से जोड़कर उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन को उसकी मनोस्मृति, कल्पना और उसी के विरह से रंग लिया ।

शलभ मैं शापमय वर हूँ । किसी का दीप निष्ठुर हूँ
कौन आया था न जाना, स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अंगुलियों के हैं, मुझे पर युग बिताने,
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ ।
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ ।

यह वह पढ़ी-लिखी नयी मध्यमवर्गीय स्त्री थी जिसे अपने मनोकूल, योग्य नये पुरुष की चाह थी । यह चाह पुरानी स्त्री की बेबस चाह से अलग नयी थी और क्रांतिकारी भी । फिर भी उसके बारे में खुल्लमखुल्ला कहने का साहस अभी नहीं आ पाया था । हाँ, दृढ़ता उसमें अवश्य थी । खुलकर न कह पाने के संकोच के कारण उसे अपनी बात कहने के लिए किसी अन्य काव्योपकरण की ओट लेनी पड़ती थी । छायावादी कवि पुरुषों की जब यह हालत थी तो महादेवी एक स्त्री थी । उनकी अभिव्यक्ति के

अन्तर्मुख होने का एक प्रधान कारण यही है । महादेवी ने इसे अपनी छायावादी भाषा में यों कहा है कि "बाह्यजगत की कठोर सीमाओं और अन्तर्जगत की असीमता की अनुभूति ने उस दुःख को एक अन्तर्मुखी स्थिति दे दी थी ।' अन्तर्जगत की असीमता नये पुरुष का यूटोपिया था । महादेवी अपने विरह और दुःख के बारे में सीधे-सीधे कहने के बदले कभी 'बदली की ओट लेकर कहती हैं तो कभी 'सांध्य गगन' की, तो कभी 'जलजात' और कभी 'नीरजा' । इसका एक उदाहरण देखिए-

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात
जीवन विरह का जलजात आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल
तरल जलकण से बने घन-सा क्षणिक मृदुगात
जीवन विरह का जलजात ।

प. रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मी आलोचक जब महादेवी की इस वेदनानुभूति के बारे में यह कहते हैं कि "इस वेदना को लेकर उन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं । कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।' महादेवी के मनोलोक को ठीक से न समझने के कारण शुक्लजी के सामने अनुभूति की वास्तविकता और अनुभूति की कल्पना के बीच द्विविधा उठी, वर्ना महादेवी ने अपना पक्ष बहुत पहले साफ कर दिया था कि वेदना का सम्बन्ध यथार्थ अनुभूति से है और उनके भावी स्वप्न से भी । भावी स्वप्न का संबंध कल्पना से है, लेकिन उसका आधार महादेवी के निजी जीवन का यथार्थ है । महादेवी के स्वप्न और अनुभूति में अतिशयता और अस्पष्टता है, लेकिन वे यथार्थ - शून्य भी नहीं है ।

'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' तक पहुँचते-पहुँचते महादेवी को अपनी नारी सीमाओं का पता चल गया था । वे जान गयी थी केवल व्यक्तिगत प्रबल आकांक्षा के बल पर अपने हृदय के भीतर के पूर्ण स्वप्न पुरुष को साकार रूप नहीं दिया जा सकता । वे जान गयी थीं कि सनातन हृदयस्थ पुरुष को साकार होने में एक जीवन क्या, एक युग भी कम है । इसीलिए उनका व्यक्तिगत आवेग मंद, विरह की आग ठंडी पड़ने लगती है । वे अपने हृदय के सनातन पूर्ण पुरुष के स्वप्न को भविष्य की अमानत समझकर उसे दर्शन की चादर में लपेटते हुए आवेग से संयमित चिर साधना और निर्वाण के पथ पर आगे बढ़ जाती हैं । इस प्रकार वे मन को समझाने में कामयाब हो जाती है कि अंदर का पुरुष अभी बाहर मिलने वाला नहीं है । इसी स्थिति में आकांक्षित पुरुष का विरह उसके लंबे इंतजार के कारण सहय और मधुर से मधुर बन जाता है ।

मैं सजग चिर साधना ले
सजग प्रहरी से निरन्तर जागते अलि रोम निर्झर
निमिष के बुद बुद मिटाकर, एक रस है समय सागर
हो गयी आराध्यमय विरह की आराधना ले - **'सांध्यगीत'**

महादेवी की प्रणय वेदना बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित है, उनकी लोककल्याण भावना के पीछे बुद्ध की करुणा की प्रेरणा है, लेकिन वह बुद्ध के मार्ग से इस अर्थ में अलग है कि उसमें स्वत्व का नाश नहीं है, बल्कि उसका उदात्तीकरण है और इस उदात्तीकरण में आत्मसजगता का पूरा हाथ हैं ।

8.2.5 सौन्दर्य और प्रकृति चित्रण

"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती है । छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी, अत: मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है । प्रकृति के लघु-तृण और महावृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्जवल विद्युतरेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं । जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा ।"

- "यामा" की भूमिका से

आधुनिक वैज्ञानिक-औद्योगिक क्रांति के प्रभावस्वरूप जब यूरोप के बुद्धिजीवियों का एक वर्ग प्रकृति को अपना शत्रु समझकर उसका नाश करते हुए विजय के दंभ में आगे बढ़ा, तो वहाँ के अति संवेदनशील मध्यमवर्गीय कवियों का हृदय उसकी रक्षा के लिए विकल हो उठा और उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से उसका बचाव किया । इस बचाव में प्रकृति के सौन्दर्य उद्घाटन से लेकर मनुष्य का उससे अनिवार्य संबंध की रक्षा तक की चिन्ता शामिल थ । 'यूरोप के वर्डसवर्थ से लेकर शेली आदि स्वच्छंदतावादी कवियों की कविता में एक प्रधान चिन्ता प्रकृति को लेकर थी । बीसवीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की प्रवृत्ति ने भारत पर अपना असर दिखाना शुरू किया । पंडित रामचन्द्र शुक्ल अपनी कविताओं और निबंधों में प्रकृति-नाश को लेकर काफी परेशान थे, फिर भी यूरोप के स्वच्छंदतावादी कवियों की तुलना में हिन्दी के स्वच्छंदतावादी, छायावादी कवियों के लिए यह आंशिक सत्य था । हिन्दी कवियों का संघर्ष विशेष रूप से उपनिवेशवाद, कठोर सामन्ती रुढ़ियों से था । चूँकि इनका मनोलोक भाववादी, वैयक्तिक था, इसलिए वे संघर्ष से हारकर प्रकृति की ओर मुखातिब हो गये । छायावादी कवियों में विज्ञान के साकारात्मक प्रभाव के चलते जहाँ प्रकृति के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने की शिशु शुलभ जिसा पैदा हुई, वहीं उसके सौन्दर्य के उद्घाटन की प्रवृत्ति भी । हमारे छायावादी कवि इस प्रकृति पर इतने मुग्ध

हुए कि अपनी वैयक्तिकता के रंग में उसे भी रंग डाला । उन्होंने अपनी भावनाओं और इच्छाओं को उस पर आरोपित करते हुए उसे मानवीय स्वरूप दे दिया । उनकी इस प्रवृति में भारतीय और यूरोपीय दोनों काव्य परंपराएँ बहुत मददगार साबित हुई, लेकिन मददगार ही । उन्होंने प्रकृति को नये रूप में चित्रित किया ।

महादेवी की कविताओं में प्रकृति के प्रति प्रारंभ में शिशु जैसा आकर्षण और कौतूहल भाव मिलता है । उन्होंने प्रकृति का सर्वाधिक उपयोग मानवीय भावों की अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि या उसके उपादान और अलंकरण के रूप में किया है । उनके पहले कविता संग्रह 'नीहार' में निजी भावों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का बहुत ही सुंदर चित्रण है । मसलन-

रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली
आँखों में रात बिताकर जब विधु ने पीला मुख फेरा
आया फिर चित्र बनाने प्राची में प्रात चितेरा
कन-कन में जब छायी थी वह नवयौवन की लाली
मैं निर्धन तब आयी ले सपनों से भरकर डाली । - **'नीहार'**

'रश्मि' में पहुँचकर महादेवी के सामने प्रकृति के वैभव और मनुष्य के दुःख के बीच विकल्प का प्रश्न खड़ा हो गया, लेकिन इस प्रश्न का जवाब भी उन्होंने आदिप्रकृति माँ से पाना चाहा, पर वह भला क्या जवाब देती? महादेवी ने तो खुद सवाल पूछा था, भला वे क्या जवाब देतीं, इसलिए उसे अनुत्तरित ही छोड़ दिया ।

कह दे माँ क्या अब देखूँ
देखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे अधरों को
तेरी चिर यौवन-सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ
तुझमें अम्लान हँसी है, इसमें अजस्र आँसूजल
तेरा वैभव देखूँ या जीवन का क्रंदन देखूँ?

महादेवी की 'नीरजा' से लेकर 'दीपशिखा' काव्यकृतियों तक प्रकृति के साथ जीवन क्रंदन की कविताएँ देखकर यही लगता है कि उन्होंने दोनों में से किसी को भी नहीं छोड़ा । उन्होंने 'नीरजा' में "धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त-रजनी", "रुपसि तेरा धन-केश-पाश", "ओ विभावरी", 'सांध्यगीत' में "ओर अरुण वसना", "यह संध्या फूली सजीली", "जाग-जाग सुकेशिनी री" जैसे सुंदर और सधे प्रकृति गीत हिन्दी काव्य को दिये हैं । कुछ अच्छे प्रकृति गीत 'दीपशिखा' में भी हैं । महादेवी के प्रकृति गीतों की संख्या पंत और निराला के प्रकृतिगीतों की तुलना में कम है, उनमें वैविध्य भी उतना नहीं है, पर जो भी है स्वर की दृष्टि से वे बहुत सधे हुए हैं । दूसरी बात, उनका प्रकृति चित्रण संश्लिष्ट तो है, लेकिन संपूर्ण चित्र में हर जगह अन्विति नहीं है । तीसरी बात, उनमें कहीं-कहीं अलंकरण की प्रवृत्ति बहुत है । 'नीरजा' का यह गीत देखिए कि अलंकार से किस प्रकार लदा हुआ है ।

धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त-रजनी
तारकमय नववेणी बंधन, शीश-फूल कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित धन- अवगुंठन, मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी । पुलकती आ वसन्त रजनी ।

प्रकृति गीतों में अलंकरण की विशेष प्रवृत्ति का एक प्रधान कारण यह है कि उन्होंने प्रकृति को खास तौर पर एक सजी-सँवरी नवयुवती-कभी रूपसी, कभी अभिसारिका, कभी सुकेशिनी, तो कभी अरुण वसना-आदि के रूप में चित्रित किया है । प्रकृति के मानवीकृत रूपों में उन्हें उसका रूपसी और माँ रूप सर्वाधिक प्रिय है । महादेवी अपने एक प्रकृति गीत में विराट प्रकृति को रूपसी के साथ अन्ततः माँ रूप देकर उसे एक संपूर्ण, सार्थक स्त्री के रूप में सामने लाती हैं ।

रुपसि तेरा धन-केश-पाश ।
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश-पाश
इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों से भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल,
दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास ।
रुपसि तेरा घन-केश-पाश ...

महादेवी के सामने प्रकृति के विराट-लघु, कोमल, कठोर, आकर्षक- भयानक, मूर्त्त-अमूर्त सभी रूप रहे हैं । आकाश, धरती, समुद्र को वे प्रायः विराट रूप में चित्रित करती हैं । प्रकृति का एक भीषण रूप देखिए-

घोर तम छाया चारों ओर,
घटाएँ घिर आई घनघोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिल जाते है पर्वत-मूल
गरजता सागर बारम्बार
कौन पहुँचा देगा उस पार ।

प्रातः, शाम, निपट अंधेरी, चाँदनी और तारोंभरी रात को लेकर महादेवी के अनेक प्रकृति गीत हैं । सभी छायावादी कवियों ने संध्या और सुबह की प्रकृति पर अनेक सुंदर कविताएँ रची हैं । प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री' और निराला की 'संध्या सुंदरी' प्रकृति गीत ख्यात हैं । प्रातः पर लिखा महादेवी का यह प्रकृति जागरण गीत देखिए-

जाग जाग सुकेशिनी री ।
अनिल ने आ मृदुल हौले

शिथिल बेणी-बंधन खोले
पर न तेरे पलक डोले
बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन परबोधिनी री ।
छाँह में अस्तित्व खोये
अश्रु में सब-रंग धोये,
मंदप्रभ दीपक संजोये,
पंथ जिसका देखती तू अलस
स्वप्न निमेषिनी री ।

रोचक तथ्य यह है कि जो महादेवी वर्मा वैयक्तिक अभिव्यक्ति के गीतों में रूप संभार और मांसल सौन्दर्य से प्राय: अपने को दूर रखती हैं, वही प्रकृति गीतों में वे रूप सौन्दर्य और प्रसाधन के प्रति आग्रहशील है । ऊपर बात कही जा चुकी है कि महादेवी ने प्रकृति का सर्वाधिक इस्तेमाल अपने भावों की अभिव्यक्ति के साधन रूप में किया है। 'मैं नीर भरी दुःख की बदली', 'विरह का जलजात जीवन', 'प्रिय सांध्यगगन मेरा जीवन', 'मेरे ओ विहग से गान', 'शलभ मैं शापमय वर हूँ, 'प्राणपिक। प्रिय नाम रे कह, आदि गीत इसी प्रकार हैं । ये इतने प्रचलित है कि अलग से उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

8.2.6 नव रहस्यानुभूति

"छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रहम का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है । बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता का भावन किया, हृदय की भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनों को मिलाकर ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी ।"

(दीपशिखा की भूमिका 'चिन्तन के कुछ क्षण से')

पहले पहल हमारे छायावादी कवि प्रकृति के अनन्त रूप और सौन्दर्य को देखकर विस्मित और मुग्ध थे । प्रकृति के अनन्त रूप-सौन्दर्य का उत्तर न तो उसके पास था और अपने बाल-स्वभाव, समझ के कारण ठीक से छायावादी कवियों के भी पास नहीं था । इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने मनोलोक में एक ऐसे सनातन तत्व की परिकल्पना कर डाली जो इस अनंत प्रकृति का मूल कारण, आधार हो और उसका प्राण एवं भौतरी अन्तसूत्र भी हो । उनकी इस कल्पना में भारतीय दर्शन और भक्ति साहित्य ने बड़ी मदद की ओर आधुनिक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण ने भी । विजयदेव नारायण साही ने इसे छायावादी कवियों का 'आध्यात्मिक पोज' (मुद्रा) कहा है। आध्यात्मिक पोज की रहस्यमुद्रा वाली कविताएँ कमोवेश हर छायावादी कवि, प्रसाद

से लेकर महादेवी वर्मा तक के यहाँ मिलती हैं । छायावादी कवि पुरुषों से महादेवी का फर्क यह कि वे स्त्री हैं और अपनी स्त्री प्रकृति के कारण वे प्रकृति के सनातन पुरुष की कल्पना सामान्यत: प्रिय के रूप में करती हैं । इसी बिन्दु पर वे अपने आकांक्षित हृदयस्थ प्रिय और अनन्त प्रकृति के मूल कारण सनातन की कड़ियाँ जोड़कर एक कर देती हैं । इसका कारण यह है कि वे स्वयं स्त्री है और अनंत प्रकृति भी स्त्रीरूपा है । वे अपनी सत्ता में पिण्ड है और संपूर्ण प्रकृति ब्रह्माण्ड है और दोनों के प्राण-पुरुष महादेवी का निजी प्रिय और प्रकृति का सनातन पुरुष-तत्वत: एक ही है । महादेवी के लिए वह निजी और प्रकृति-दोनों स्तरों पर रहस्यात्मक है । वे निजी तौर पर अपने आकाक्षित प्रिय की प्रेयसी बनती हैं और अनंत प्रकृति को विराट सनातन पुरुष की प्रेयसी के रूप में खड़ी करती हैं । इसके ठोस व्यक्तिगत और सामाजिक कारण थे । महादेवी इन्हीं को दर्शन से जोड़ते हुए अपने निबंध संग्रह 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' में एक जगह लिखती हैं कि "समर्पण के भाव ने ही आत्मा को नारी की स्थिति दे डाली । सामाजिक व्यवस्था के कारण नारी अपना कुल-गोत्र आदि, परिचय छोड़कर पति को स्वीकार करती है और स्वभाव के कारण उसके निकट अपने आपको पूर्णत: समर्पित कर उस पर अधिकार पाती है । अत: नारी के रूपक से सीमाबद्ध आत्मा का असीम में विलय होकर असीम हो जाना सहज ही समझा जा सकता है ।' महादेवी की अपने लिए असीम प्रिय की कल्पना स्वाभाविक और काफी तार्किक है, लेकिन विराट प्रकृति के लिए सनातन पुरुष की परिकल्पना गैर वैज्ञानिक है और गैर तार्किक भी । यह प्रकृति और पुरुष पर अपने स्त्री-व्यक्तित्व ओर हृदयस्थ मनोवांछित पुरुष का आरोपण है । प्रकृति में अपने आत्म प्रसार के सिवा इसका कोई अन्य कारण नहीं जान पड़ता ।

'नीहार' से लेकर 'सांध्यगीत' तक निजी तौर पर महादेवी का रहस्यपुरुष, प्रिय वह, 'कौन' और 'तुम' धर्मी है । हृदय के स्तर महादेवी को इस 'वह' धर्मा रहस्यपुरुष का पूरा एहसास है, लेकिन वह हृदय से बाहर जगत में ऐन्द्रिय स्तर पर दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए वह महज अस्पष्ट रूप में अपना आभास ही कराता है, सशरीर स्पष्ट रूप में सामने नहीं आता । महादेवी के दूसरे काव्य संग्रह 'रश्मि' की इस कविता का जरा मुआयना कीजिए-

रजत रश्मियों की छाया में धूमिल धन-सा वह आता,
इस निदाध से मानव में करुणा के स्रोत बहा जाता ।
उसमें मर्म छिपा जीवन का, एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बंधन का
संसृति के सूने पृष्ठों से करुण-काव्य वह लिख जाता । **-रश्मि**
एक करुणा अभाव में चिर-तृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा, निर्वाण में वरदान शत शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में

कौन तुम मेरे हृदय में ? - **नीरजा**

महादेवी के रहस्यवाद पर प्रश्न उनकी पहली कृति 'नीहार' के प्रकाशन के बाद ही उठने लगा था, जिसका उन्होंने माकूल जवाब देते हुए 'रश्मि' की भूमिका में लिखा है कि "इससे (प्रकृति और मनुष्य के बीच संबंध से) मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं धुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती, तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता । इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया । रहस्यवाद, नाम के अर्थ में छायावाद के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ में विशेष प्राचीन है । प्राचीनकाल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिए उसमें स्थान कहाँ?' छायावादी कवियों का रहस्यवद अपने युग की स्थितियों और आवश्यकताओं से उपजा था । वह अपने स्वरूप में एक ओर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से सम्बद्ध था और दूसरी ओर आधुनिक मध्यवर्गीय कवियों के यथार्थ और भावबोध से जुड़ा था । वह अपने तात्विक स्वरूप में चिन्तन प्रधान दर्शन ओर मध्ययुगीन आध्यात्मिक रहस्यवाद से अलग था । वेदान्ती आचार्यों और मध्ययुगीन संतों के दार्शनिक एवं रहस्यवादी मनोलोक से छायावादी कवियों का रहस्यवाद न केवल अलग, बल्कि आधुनिक था । अपने इसी स्वरूप के चलते वह चिर नवीन या नवरहस्यवाद था । यद्यपि उस पर वेदान्त और मध्ययुगीन रहस्यवादी सन्तों की छाया अवश्य है । देखिए-

मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों धन से तड़ित-विलास । -**रश्मि**
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ । - **नीरजा**

मध्ययुगीन सन्तों की छाया देखिए-

सगुण भक्ति का रंग-

जो तुम आ जाते एक बार ।
हँस उठते पल में आद्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद
छा जाता जीवन में बसन्त
लुट जाता चिर संचित विराग
आँखें देतीं सर्वस्व वार । - **नीहार**

निर्गुणिया रंग-

तुम मुझमें प्रिय । फिर परिचय क्या?
चित्रित तू, मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर-संगम
तू असीम, मैं सीमा का भ्रम,
काया-छाया में रहस्यमय ।
प्रेयसी-प्रियतम का अभिनय क्या? **सांध्यगीत**

महादेवी वर्मा ने एक जगह लिखा भी है कि "आज गीत में हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं, वह इन (वेदान्त, योग, निर्गुण, सूफीमत आदि) सब की विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है । उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्यसूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-संबंध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका ।"

भारतीय वेदान्त की छाया के बावजूद महादेवी के रहस्यवाद में बुद्धि या तर्क के बदले हृदय की प्रधानता है, यद्यपि वह बुद्धि- शून्य भी नहीं है । वह मध्ययुगीन रहस्यवाद से इसलिए भिन्न है कि आराध्य और आराधक के बीच वहाँ जैसी असमान सम्बन्ध की भूमि नहीं है । दरअसल महादेवी रहस्यवादी भक्त के बदले सौन्दर्यदर्शी और उससे तादात्म्य की विश्वासी कवयित्री हैं । महादेवी के यहाँ आधार और आधेय का संबंध समानता की भूमि पर हृदय की एकता है । उनके बीज जो अन्तर है वह सीमाबद्ध और सीमा से मुक्त का है, सौन्दर्य की अपूर्णता और पूर्णता का है । दूसरी बात, वे अपने प्रिय से भक्ति जैसा कुछ माँगने के बदले सिर्फ उसे चाहती हैं और उसमें लेना नहीं, सिर्फ आत्मदान संभव है । इस विशिष्ट अनुभूति और आत्मसमर्पण का आधार लौकिक है । महादेवी 'दीपशिखा' की भूमिका में कहती है कि "अलौकिक आत्मसमर्पण को समझने के लिए लौकिक का सहारा लेना होगा । स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी । अत: किसी उच्चतम आदर्श, भव्यतम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है । आदर्श समर्पित व्यक्तियों में संसार के असाधारण कर्मनिष्ठ मिलेंगे, सौन्दर्य से तादात्म्य के इच्छुकों में श्रेष्ठ कलाकारों की स्थिति है और व्यक्तित्व समर्पण ने हमें साधक और भक्त दिये हैं । 'उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि "अलौकिक रहस्यानुभूति भी अभिव्यक्ति में लौकिक ही रहेगी ।' उन्होंने मध्ययुगीन संतों की रहस्यपरक भक्ति से आधुनिक रहस्यवाद के स्वरूप को अलगाते हुए कहा है कि "रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमें हृदय की सीमा, एक असीमता में अपनी अभिव्यक्ति चाहती है और हृदय के अनेक रागात्मक संबंधों में माधुर्य भावमूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुँच सकता है जो सब रेखाओं में रंग भर सके, सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्मनिवेदक को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा

कर सके । भक्त और इष्ट के बीच वरदान की स्थिति संभव है, जो इष्ट नहीं, इष्ट का अनुग्रह दान कहा जा सकता है । माधुर्य भावमूलक प्रेम में आधार और आधेय का तादात्म्य अपेक्षित है और यह तादात्म्य उपासक ही सहज कर सकता है, उपास्य नहीं। इसी से तन्मय रहस्योपासक के लिए आदान संभव नहीं, पर प्रदान या आत्मदान उसका स्वभावगत धर्म है ।' महादेवी के आत्मसाधक की इष्ट के साथ 'समता' का लोकतंत्रीय 'स्वतंत्रता' से, आदान नहीं का 'अधिकार' से सीधा संबंध जुड़ता है । यहीं वे आधुनिक रहस्यवादी बन जाती है ।

मध्ययुगीन रहस्यवादी संतों की चिन्ता में राष्ट्र की मुक्ति शामिल न थी । उनकी मुख्य चिन्ता सामाजिक-धार्मिक सामन्ती रूढ़ियों से समाज और व्यक्ति की मुक्ति थी। उनका स्वरूप पार्थिव से अधिक आध्यात्मिक था, जबकि महादेवी आदि छायावादी रचनाकारों का रहस्यवाद सीधे-सीधे राष्ट्र, समाज और व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंध रखता है । वह राष्ट्र की सीमा पार कर विश्वमानववाद से हाथ मिलाता है । छायावादी कवियों के रहस्यवाद में यद्यपि मध्यकालीन रहस्यवादकी अनुगूँज है, पर यह उसका अनुकरण भी नहीं है । वह अपने युग के गर्भ से, हमारी लोकतंत्रीय आकांक्षा को लेकर पैदा हुआ था । उसकी बाहरी मुद्रा आध्यात्मिक थी । हमारे राष्ट्रीय संघर्ष के अगुआ बाल गंगाधर तिलक हों या महात्मा गांधी, उन्होंने इसी मुद्रा को धारण करके अंग्रेजों से लोहा लिया था । महादेवी की बाहरी मुद्रा भले आध्यात्मिक हो, लेकिन उसकी जमीन ठोस, लौकिक है । अपने इसी रूप में वह सन्तों के रहस्यवाद से भिन्न नहीं, नितान्त मौलिक है।

'नीहार' से 'सांध्यगीत' तक की काव्ययात्रा में महादेवी का जो असीम प्रिय काफी अस्पष्ट और धूमिल था, वह 'दीपशिखा' तक आते-आते उनके मन में काफी स्पष्ट हो गया, लेकिन शरीर धारण न कर सका । वे उसे जिस रूप में चाहती और प्यार करती है उसके अवतरण के लिए एक जीवन क्या, एक युग कम था । बावजूद इसके, महादेवी अपनी अमिट चाह की दृढ़ता से एक कदम पीछे नहीं हटती । वह हृदयस्थ, काल्पनिक और स्वप्न पुरुष ही सही, लेकिन स्वैच्छिक निर्वाण भी उसी के निमित्त है। यह अपने लिए सर्वथा योग्य पुरुष का ही दिव्य उदात्तीकरण है । जरा 'दीपशिखा' के इस गीत पर गौर कीजिए-

'मिट-मिट कर हर साँस लिख रही
शत शत मिलन-विरह की लेखा ।
निज को खोकर निमिष आँकते
अनदेखे चरणों की रेखा ।
पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी
युग-युग की पहचान बन गया ।
पथ मेरा निर्वाण बन गया
प्रति पग शत वरदान बन गया ।

देते हो तुम फेर हास मेरा
निज करुणा-जल कण मय कर
आज मरण का दूत तुम्हें छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया ।

महादेवी इसी काव्य कृति की भूमिका लिखती है कि "मनुष्य का आत्म निवेदन उसी के अन्तर्जगत की प्रतिकृति खोजता है । ... रहस्यद्रष्टा जब खंड रूपों से चलकर अखंड और अरुप चेतन तक पहुँचता है तब उसके लिए अपने अन्तर्जगत के वैभव की अनुभूति भी सहज हो जाती है और बाह्य जगत की सीमा की भी । अपनी व्यक्त अपूर्णता को अव्यक्त पूर्णता में मिटा देने की इच्छा उसे पूर्ण आत्मदान की प्रेरणा देती है । यदि इस तादात्म्य के साथ माधुर्य भाव न होता तो यह ज्ञाता और ज्ञय की एकता बन जाता, भावभूमि पर आधार और आधेय की एकता नहीं ।' मीरा के बाद महादेवी एक ऐसी आधुनिक रहस्यवादी कवयित्री है जिन्होंने अपने हदयस्थ असीम आकांक्षित स्वप्न-पुरुष के लिए अकेले वियोग में पूरा जीवन काट दिया । इसमें उनकी बेबसी नहीं, जिद थी ।

बोध प्रश्न- 1

(1) महादेवी के स्त्री स्वत्व, प्रणय और वेदना की बीस पंक्तियों में चर्चा कीजिए ।

(2) महादेवी के उद्धरणों के आधार पर बीस पंक्तियों में उनकी काव्यगत विशेषताएँ लिखिए।

(3) महादेवी की नव रहस्यानुभूति के स्वरूप को संक्षेप में समझाइए ।

(4) महादेवी के प्रकृति चित्रण पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए ।

8.3 महादेवी वर्मा का काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

8.3.1 काव्य भाषा

काव्य भाषा क बारे में महादेवी का यह व्यक्तिगत मत है कि उसका आधार मानव की सामान्य अनुभूति होती है और उसका प्रयोजन भी सामान्य मनुष्य तक सम्प्रेषण ही होता है । सामान्य अनुभूति को लक्ष्य में रखकर काव्यभाषा विशेष भंगिमा के साथ अपना रूप संयोजन करती है, इसीलिए वह विशेष सौन्दर्य और कलात्मक रूप प्राप्त कर लेती है । काव्यभाषा अपने रूप गठन के लिए आवश्यकतानुसार भाषा की संपूर्ण शक्तियों-अभिधा, लक्षणा और व्यंजना-से काम लेती है।

8.3.1.1 शब्दविधान

छायावाद ने द्विवेदी युग से विरासत रूप में जो काव्यभाषा प्राप्त की थी वह उस युग के इतिवृत्त प्रधान काव्य के लिए उपयोगी होते हुए भी काफी अनगढ़ और रूखी थी । दूसरी बात-द्विवेदी युग की काव्यभाषा संस्कृत की भारी भरकम ठस पदावली-'रूपोद्यान प्रफुल्लप्रायकलिकाराकेन्दुबिम्बानना' - से लैस थी, जो बोलती तो खूब थी,

लेकिन दूर तक गूँजती न थी । द्विवेदी युग से प्राप्त यह काव्यभाषा हमारे छायावादी कवियों के भावप्रधान, कल्पनाशील सौन्दर्य-चित्रण और उसकी सूक्ष्म व्यंजना के लिए असमर्थ थी । प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी ने द्विवेदी युग की अनगढ़, ठस, नीरस, इकहरी अर्थ वाली भाषा को अपनी भाव प्रधान दृष्टि और कल्पनाशील हृदय से कोमल, मधुर, संश्लिष्ट यानी अत्यन्त सृजनात्मक और कलात्मक बनाया । उन्होंने शब्द विशेष के समाज स्वीकृत अर्थ को अनदेखा करते हुए और पद-क्रम और अन्वय में व्याकरण के नियमों की उपेक्षा करते हुए अपने मनोकूल अर्थ का निर्धारण और काव्यभाषा का गठन किया । इन सभी का ध्यान विशेष रूप से लाक्षणिक और व्यंजनापरक शब्दों के चयन पर था । छायावाद के सभी कवियों ने अपने व्यक्तिगत, संस्कार और रुचि के अनुसार काव्यभाषा को समृद्ध बनाया । उनकी काव्यभाषा में जहाँ कालिदास से लेकर जयदेव आदि संस्कृत कवियों की मधुर, ललित, कोमलकांत पदावली मिलती है, वहीं ब्रजभाषा और अपनी-अपनी क्षेत्रीय बोलियों की छौंक भी । आवश्यकतानुसार नये शब्दों के निर्माण की प्रवृत्ति भी उनमें है । बावजूद इसके कालक्रम में उनकी भाषा की कुछ सीमाएँ भी उभर कर सामने आयीं ।

छायावादी काव्यभाषा को अपने अभ्यास और परिष्कार द्वारा उसे स्थिर बनाने में महादेवी का योगदान सबसे ज्यादा है । स्त्री-मनोभाषा की सृष्टि का श्रेय भी उन्हीं को है, लेकिन महादेवी सिद्धान्ततः भले सामान्य मनुष्य तक भाषा की सम्प्रेषणीयता के प्रति आग्रहशील थीं, व्यवहारतः अन्य छायावादी कवियों की तरह उनकी काव्यभाषा बोलचाल से दूर है । वह सामान्य मनुष्य के लिए सहज ग्राहय भी नहीं है । भारतीय संस्कृति दर्शन, संस्कृत साहित्य से विशेष प्रेम, संस्कृत से रंगी बंगला साहित्यभिमुखी अभिरुचि और संस्कृत भाषा में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का परिणाम यह हुआ कि वे अपनी काव्यभाषा को संस्कृत शब्दों के प्रति विशेष मोह से मुक्त नहीं कर पायीं । उन्होंने संस्कृत भाषा का आभास देने वाले अनेक शब्दों का निर्माण भी किया । उनकी काव्यभाषा में ब्रजभाषा और पछाँही की मात्र छौंक भर है । जैसे-हौले-हौले आदि । महादेवी की आरंभ से ही प्रवृत्ति लाक्षणिक और व्यंजनापरक पदावली के चयन की ओर रही है और बाद में भी उनकी इस प्रवृत्ति में कोई कमी नहीं आयी, बल्कि ऊपर से अलंकारों और प्रतीकों का बोझ बढ़ता गया । लाक्षणिक और व्यंजना प्रधान पदों के चयन से काव्यभाषा को फायदा यह हुआ कि उसकी अर्थव्यापकता बहुत बढ़ गयी और उसके अतिरिक्त भार से नुकसान यह हुआ कि काव्यभाषा की कमर टूटने लगी । डॉ. नामवर सिंह ने ठीक लिखा है कि 'महादेवी की पदावली से अतिशय अलंकृति का बोध होता है । ... इससे उनके स्वभाव के अतिशय परिष्कार और तराश का बोध होता है ।' पन्त के बाद महादेवी ही छायावाद की ऐसी रचनाकार है जिन्होंने श्रुति-माधुर्य और स्मृतिचित्र आधारित शब्दचयन को वरीयता दी उनकी कविता में प्रयुक्त लाक्षणिक और व्यंजक पदावली के कुछ दृष्टान्तों पर ध्यान दीजिए-

'निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार'

'तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार'
'घायल मन लेकर सो जाती मेघों में तारों की प्यास'
'वरदानों की वर्षा से यह सूना एकान्त जगा दो ।'
'आशा की मुस्कुराहट पर मेरा नैराश्य लुटा दो ।'
'निष्पंद पड़ी हैं आँखें वरसानेवाली आँधी'
'छाया की आँख मिचौनी', 'सस्मित सपनों की बातें'

महादेवी की कविता में इन लाक्षणिक और व्यंजक पदों का सौन्दर्य अकेले या स्वतंत्र रूप में नहीं है, बल्कि उसके भावप्रवाह और रचना के अनुक्रम में है । अलग-अलग ये शब्द किसी भी संस्कृत काव्य या कोश में मिल सकते हैं, लेकिन महादेवी अपने रचना प्रवाह के भीतर इनके जरिए विशिष्ट सौन्दर्य और सूक्ष्म अर्थ की सृष्टि करती हैं । महादेवी ने छायावाद की नवीन अभिव्यंजना प्रणाली को ताकतवर बनाने में पूरा योगदान दिया, इसमें कोई सन्देह नहीं है । महादेवी की कविता के प्रवाह में इन पदों की अर्थव्यंजकता देखिए-

हँस उठते पल में आर्द नयन, धुल जाता ओठों से विषाद
छा जाता जीवन में बसन्त, लुट जाता चिर संचित विराग

प्रसाद, पंत, निराला को जिस प्रकार कुछ शब्दों से विशेष मोह था, उसी प्रकार महादेवी को भी था । वे शब्द घूम-फिरकर उनकी अनेक कविताओं में आते रहते है । जैसे- श्वाँस, नि:श्वास, उच्छवास, स्पंदन, कंपन, निस्पंद, सीमा, असीम, तम, प्रकाश, रजत, रश्मि, ओस, आँसू आदि । उनकी भाषा में इनकी फिजूलखर्ची भी है । महोदवी की भाषा में अन्य छायावादी कवियों की भाँति पदक्रम-भंग, दूरान्वय दोष, सहायक क्रियाओं के बहिष्कार की प्रवृत्ति है । भावावेग ने एक ओर पदक्रम भंग में मदद की, दूसरी ओर विशेषण-विपर्यय की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा दिया ।

8.3.2 अलंकार विधान

द्विवेदी युग की काव्यभाषा में रीतिवाद के विशेष विरोध के चलते अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह न था । जो थे भी, सीधे और सरल थे । उनकी संख्या कम भी थी और अर्थसंश्लिष्टता पर भी ध्यान कम था । अलंकार की दृष्टि से अधिक सूक्ष्म और संश्लिष्ट योजना छायावादी काव्यभाषा की प्रधान विशेषता है । छायावादी कवियों ने रूप या आकार साम्य के बदले प्रभाव साम्य आधार वाले अलंकारों के विधान में विशेष रुचि ली । इन्होंने अलंकारों का उपयोग सौन्दर्य चित्रण के साधन के रूप में किया है । पुराने अलंकारों की सीधी-सादी, सपाट, इकहरी राह छोड़कर इन्होंने सूक्ष्म काव्य सौन्दर्य की आवश्यकतानुसार अपेक्षाकृत संश्लिष्ट अलंकारों की राह पकड़ी और नये उपमानों की सृष्टि की । भाव प्रधान दृष्टि और कल्पनाशील चित्त ने उनके अलंकार विधान में विशेष मदद की ।

महादेवी को सादृश्यमूलक अलंकार-उपमा,रूपक, तदरूप. आदि-विशेष रूप से प्रिय है । उनमें विविधता भी है । उनके काव्य में विराट, लघु, मूर्त के लिए अमूर्त्त, अमूर्त्त के लिए मूर्त्त हर प्रकार के उपमान प्रयुक्त हुए हे । शब्दविधान की तरह यहाँ भी ध्यान रखना जरुरी है कि महादेवी के अलंकारों का सौन्दर्य भी रचना के अनुक्रम में ही खुलता है । इनके दो उदाहरण देखिऐ-

विधु की चाँदी की थाली, मादक मरकंद भरी-सी
जिसमें उजियाली रातें, लुटती घुलती मिसरी-सी ।
मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि, अलिगुंजित पद्यों की किंकिणि
भर पद-गति में अलस तरंगिणि, तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी ।

8.3.3 बिम्ब विधान

छायावादी कविता के अभिव्यंजना पक्ष की एक विशिष्टता है- चित्रात्मक भाषा की सृष्टि, यानी बिम्बीवधान । द्विवेदी युग की सीधी-सादी भाषा के सामने काव्यभाषा के स्तर पर यह बहुत बड़ा परिवर्तन था । दरअसल सभी छायावादी कवि वैयक्तिता और कल्पनाशीलता के बड़े आग्रही थे । चित्रात्मक काव्यभाषा के नियोजन का मूल कारण उनकी यही प्रवृत्ति है । सामान्यत: वे अनुभूति की चित्रात्मक प्रस्तुति के पक्षपाती हैं । महादेवी वर्मा अपनी परवर्ती काव्यकृतियों और संग्रहों-सांध्यगीत, यामा, दीपशिखा- में हर गीत की पृष्ठभूमि में किसी न किसी चित्र का विधान करती है, लेकिन चित्र या बिम्ब उनकी भावभूमि को मूर्त्त और चटक करने का अलंकार की तरह साधन मात्र है। महादेवी ने अपने प्रकृति-गीतों की रचना में बिम्बविधान से भरपूर मदद ली है । उन्होंने विराट प्राकृतिक तत्वों का विराट उपमानों के जरिए चित्र खड़ा किया है । विराट आकाश और धरती के बीच लहराते सागर का नजारा देखिए-

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता ।

दृश्य, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, ध्वनि के संश्लेषण से प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण एक सजी सँवरी युवती के रूप में देखिए-

सौरभी भीना झीना गीला/लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल,
चल अंचल से झर-झर झरते/पथ में, जुगनू के स्वर्णफूल,
दीपक से देता बार-बार/तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास
रूपसि तेरा धन-केश-पाश
उच्छवसित वक्ष परचंचल है ।वक-पातों का अरविंद हार,
तेरी नि:श्वासें छू भू को/बन-बन जाती मलयज बयार,
केकी रव की नूपुर-ध्वनि सुन जगती जगती की मूक प्यास
रूपसि तेरा घन-केश-पाश

अन्विति की दृष्टि से महादेवी के बिम्ब विधान में बिखराव प्राय: खटकता है ।

8.3.4 प्रतीक विधान

सभी छायावादी कवियों की काव्यभाषा का बिम्ब के साथ प्रतीक एक मुख्य उपकरण रहा है । उनके भाव प्रधान, रहस्यात्मक, कल्पना प्रधान हृदय को सृष्टि की एक-एक वस्तु, यहाँ तक कि पूरी सृष्टि किसी अदृश्य, असीम, सनातन सत्ता की ओर संकेत करती हुई लगती है और अपनी इसी प्रकृति के कारण उन्होंने अनेक प्रतीकों की सृष्टि कर डाली हैं। उनके प्रतीक अर्थ की दृष्टि से अस्पष्ट हैं । इसका कारण उस समय का सामाजिक यथार्थ है । डॉ. नामवर सिंह का कहना वाजिब है कि "उस समय समाज में जो नयी व्यवस्था आ रही थी, उसके विषय में कवियों का ज्ञान धुँधला था । जो कुछ नया आ रहा था, उसे कुछ-कुछ तो वे अनुभव कर रहे थे, परन्तु पूरा-पूरा न समझ पाते थे । उनके लिए परिवर्तन अनुभवगम्य था, परन्तु बुद्धिगम्य न था ।'

छायावादी कवियों में सबसे ज्यादा प्रतीकों की सृष्टि में रस महादेवी को है । दरअसल प्रतीकों से उन्हें मोह है । यहाँ तक कि उनकी सभी कृतियों के नाम-नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, अग्निरेखा आदि-प्रतीकात्मक हैं । अपनी प्रारंभिक कविताओं में महादेवी प्रतीकों की आग्रही कम थी । वे अपना ज्यादातर काम उपमानों, लाक्षणिक-व्यंजनापरक पदों से चला लेती थी, लेकिन परवर्ती काव्यभाषा में वे उपमानों का प्रतीकवत् इस्तेमाल करने लगी । उनके प्रतीकों की दुनिया यद्यपि सीमित है, किन्तु एक ही प्रतीक का अलग-अलग संदर्भो में प्रयोग अर्थ वैविध्य की सृष्टि करता है। शलभ, दीपक, बादल, कमल आदि प्रतीक इस दृष्टि से खास तौर पर याद किये जा सकते हैं । उन्होंने दीपक, शलभ, कली, मधुमास, वसन्त, कमल, नभ, तारे, तम, प्रकाश, मोती, पंथ, शूल आदि प्रतीकों का बहुतायत उपयोग किया है । महादेवी के कुछ प्रतीक युग्म-चातक-बादल, बादल-दामिनी, बुलबुल-फूल, शलभ-दीपक आदि-यत्र-तत्र पारम्परिक अर्थ का निर्वाह करते हैं । महादेवी की विशिष्टता इनमें उतनी नहीं है, जितनी पुराने प्रतीकों में नई अर्थवत्ता भरने और नये प्रतीकों के विधान में । उनके ऐसे प्रतीकों का अर्थ ग्रहण करने में पाठक को काफी दिमागी मेहनत करनी पड़ती है । उनके प्रतीक विधान का मूल स्रोत प्रधानत: प्रकृति है । कुछ उदाहरण लीजिए-

सहजग्राह्य प्रतीक- 'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।'

प्रतीकार्थ-मंदिर - शरीर, दीप = प्राण

'प्राण में जो जल उठा और दीपक चिरन्तन'

प्रतीकार्थ-चिरन्तन दीपक = सनातन प्राण पुरुष

गूढ़ अर्थ वाले प्रतीक - 'करुणामय को भाता है तम के परदे में आना'

प्रतीकार्थ-तम का परदा = पुरुष प्रधानव्यवस्था का बंदिश वाला वातावरण

'शलभ मैं शापमय वर हूँ/किसी का दीप निष्ठुर हूँ

प्रतीकार्थ-शलभ = मध्यमवर्गीय पुरुष, किसी का दीप-
अपने पसंदीदा पुरुष की वस्तु
'टूट गया वह दर्पण निर्मम'
प्रतीकार्थ-निर्मम दर्पण = पुरुष प्रधान कठोर समाज व्यवस्था

8.3.5 काव्यरूप : गीत विधान

"हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत प्रधान ही कहा जायेगा । हमारा व्यस्त और व्यक्तिप्रधान जीवन हमें काव्य के किसी अंग की ओर दृष्टि करने का अवकाश ही देना नहीं चाहता ।"

- 'यामा' की भूमिका 'अपनी बात' से

छायावादी काव्य की प्रकृति मूलत: प्रगीतात्मक है । कारण यह है कि छायावादी कवियों के व्यक्ति प्रधान स्वभाव ने किसी दूसरे की कथा कहने के बजाय अपने दु:ख के बारे में कहना अधिक बेहतर समझा । यदि उन्हें किसी दूसरे की कथा कहने की जरूरत आन पड़ी, तो उन्होंने उस पर अपनी दृष्टि और हृदय का रंग चढ़ा कर ही कही है । प्रसाद, पंत, निराला आदि जिन छायावादी कवियों ने प्रबंधात्मक कृतियों की रचना की उनमें एक तो कथा और घटना से ज्यादा पात्रों की संवेदना प्रधान हो गयी है, दूसरी बात-पात्रों की संवेदना का आलेखन इन्होंने अपनी वैयक्तिक अभिरुचि के अनुसार ही किया है । महादेवी का तो कहना ही क्या, शुरु से लेकर आखिर तक उनकी काव्यप्रकृति प्रगीतात्मक ही बनी रही ।

महादेवी ने अपनी काव्यकृतियों की भूमिकाओं में गीतों के स्वरूप पर तो विचार किया ही है, अपने गीतों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें भी कही हैं । उनका मानना है कि "सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्था का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।' इसमें भावातिरेक का संयमित और कला से अनुशासित होना बहुत जरुरी है । वैयक्तिकता, संवेदना की सघनता या तन्मयता, तीव्रता, संक्षिप्तता, अन्विति और सहज संप्रेषणीयता गीत के मूल तत्व हैं । दर असल "गीत में भाव, शब्द, तन्मयता आदि विशेषताएँ भिन्न होती हुई भी एक लय (टेक) से ऐसे जुड़ी रहती हैं, जैसे एक वृंत पर खिले फूल की अनेक पंखुड़ियाँ । हम वृंत को ग्रहण कर समस्त पंखुड़ियों और मधु-गंध के साथ फूल को प्राप्त कर लेते हैं, गीत के प्रति आकर्षण के मूल में संभवत: यही सहज सम्प्रेषणीयता है ।'

महादेवी बचपन से ही अपने घर के गीतमत वातावरण में पली-बढ़ी । उनकी माता स्वयं ठाकुरजी की पूजा के दौरान सस्वर मीरा, सूर आदि के गीत गाती थीं । 'दीपशिखा' की भूमिका से पता चलता है कि आगे महादेवी लोकगीतों, ग्रामगीतों और कलाविदों के संगीत से भी प्रभावित हुईं और वैसे भी परंपरा में हमेशा से स्त्री जाति ने अपने सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति के लिए गीत को सबसे अधिक अपने हृदय के निकट पाया है । महादेवी ने इन्हीं सब संस्कारों को अपनी आस्थाशील काव्यप्रकृति में ढालकर

प्रगीतों की रचना की है । उन्होंने 'दीपशिखा' की भूमिका में कहा भी है- "मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले है ।' उन्होंने अपने गीतों की दो विशेषताएँ - अन्तर्मुखता और एकाग्रता बतायी है । उनका अपने गीतों के बारे में कहना है कि "मेरे गीत मेरा आत्मानिवेदन मात्र हैं' दूसरी बात-उन पर "मेरी एक आस्था की छाया है ।'

छायावाद में वैसे तो प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि सभी रचनाकारों में गीत लिखने की प्रवृत्ति मिलती है, लेकिन उनमें भी सबसे ज्यादा रस निराला और महादेवी को है । निराला ने 'गीतिका' का संकलन इसी दृष्टि से किया था ओर संगीत को. ध्यान में रखकर उसकी स्वर-मैत्री भी तैयार की थी । छायावाद के भीतर विशुद्ध रूप से सुनियोजित, सायास और कला की खराद पर पूरी तरह खरे गीतों की रचना सिर्फ महादेवी ने की है । उन्होंने गीतों की ऐसी प्रणाली चलायी, जो आगे रूढ़ हो गयी और उस पद्धति पर बच्चन आदि परवर्ती कवियों को गीत लिखना बड़ा आसान हो गया । महादेवी के गीत लिखने की प्रणाली गणितीय प्रमेय जैसी है । उसकी पहली पंक्ति टेक की होती है । जिसमें मुख्य कथ्य सूत्रात्मक रूप में नियोजित रहता है । उसके बाद दो से लेकर पाँच-छ: पादों में विभिन्न दृष्टान्तों के जरिए उसकी पुष्टि करते हुए वे गीत की पूर्णाहुति कर देती हैं । उन्होंने कुछ गीत मध्युगीन भक्तों की पद वाली परिपाटी पर रचे हैं । जैसे- "जो तुम आ जाते एक बार ।' इसी प्रकार का यह भी गीत है-

क्या पूजन क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुंदर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे ।
मेरी श्वाँसें करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे ।
पद-रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे ।
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे ।

प्रणाली तो मययुगीन है, पर इसकी साँसें महादेवी की है । महादेवी ने अपने ज्यादातर गीत नयी प्रणाली पर, नये सुर में रचे । इन गीतों में "शलभ मैं शापमय वर हूँ ''टूट गया वह दर्पण निर्मम' प्राणपिक प्रिय नाम रे कह । आदि को याद किया जा सकता है । इनमें प्रयोग वैविध्य भी है ।

महादेवी के प्रारंभिक गतों में अनुभूति की तीव्रता है । 'नीरजा' से बौद्धिक आग्रह बढ़ते-बढ़ते 'दीपशिखा' तक चरम शिखर तक पहुँच गया और शिल्पगत बारीकी भी बढ़ती गयी । अन्विति तो उनके सभी गीतों में है, लेकिन बौद्धिकता के विशेष आग्रह के चलते बाद के गीतों में अनुभूति क्षीण हो गयी । वे अपने गीतों में सामान्यत: छोटी लय ही संभाल पाती हैं, बड़ी लय वाले गीत उनकी रुचि के अनुकूल नहीं जान पड़ते हैं और सधते भी कम हैं । डॉ. देवराज ने महादेवी के गीतों पर 'केन्द्रापगामिता' का जो दोष मढ़ा है, वह सही नहीं है । अपने गीतों की अन्विति की वे पूरी तरह से रक्षा करती हैं। कुल मिलाकर. छायावाद में गीत को सजाने-सँवारने, साधने, परिष्कार से लेकर रूढ़

बनाने में महादेवी का कोई जवाब नहीं है । वे छायावाद की सबसे बड़ी प्रगीतकार है, इसमें कोई दो राय नहीं है ।

8.3.6 छंद विधान

"काव्य की भाषा अपनी प्रभविष्णुता का साथ देने वाले छंदबंध को ही स्वीकर करती है।"

- सधिनी

द्विवेदी युग के मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि कवियों ने संस्कृत के अतुकान्त वर्णवृत्तों को पुनर्जीवित करने का खूब प्रयास किया, लेकिन वे युग प्रवाह के अनुकूल न थे । छायावादी कवियों ने खड़ी बोली की प्रकृति और अपने व्यक्तिप्रधान काव्यकी आवश्यकतानुसार भध्ययुगीन कवित्त, रूपमाला, सखी, राधिका, पीयूषवर्षण, प्लवंगम जैसे मात्रिक छंदों लावनी और आल्हा जैसे लोक छंदों को आधार बनाकर छायावादी काव्य का छंदविधान विकसित किया । इनमें उन्होंने भावप्रवाहानुकूल अर्थलय की पूरी रक्षा की । छायावाद के सभी कवियों ने अपने भावानुकूल छंदों को अपनाया । यद्यपि महादेवी ने सोलह मात्राओं से लेकर 32 मात्राओं वाले चरण को गीत की टेक बनाकर छंद के स्तर पर अनेक प्रयोग किये हैं, लेकिन उन्हें सबसे ज्यादा सफलता और लोकप्रियता सोलह मात्राओं के टेक वाले गीतों से मिली ।

बोध प्रश्न- 2

(1) महादेवी के शब्दविधान की आठ-दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए ।

(2) महादेवी के प्रतीकविधान पर सात-आठ पंक्तियों में विचार कीजिए ।

(3) महादेवी के गीतविधान का आठ-दस पंक्तियों में विवेचन कीजिए ।

8.4 मूल्यांकन

महादेवी वर्मा ने एक कवयित्री के रूप में छायावादी कविता को अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से एक स्त्री की अनुभूति और भाषा दी है । छायावाद की अनेक सामान्य विशेषताएँ उनमें प्रसाद, पंत, निराला के समान मिलती हैं, लेकिन एक मध्यवर्गीय स्त्री के मनोलोक के उदघाटन में वे उनसे अलग अपनी पहचान बनाती हैं । महादेवी के समय में भारतीय नारी की जितनी छवियाँ है, महादेवी व्यक्तिगत और प्रतिनिधि रूप में उन्हें साकार करती है । उनका प्रणय, विरह, रहस्य, छायावादी पुरुष कवि की नजर से नहीं, बल्कि उन्हीं की नजर से अपने पक्ष का बयान है । उनकी रहस्यानुभूति के पीछे एक आधुनिक स्त्री की आकांक्षा और संकोच है । उनका रहस्य पुरुष स्वप्नजात है । कारण यह है कि उस समय की पुरुषप्रधान व्यवस्था रुढ़ियों से पूरी तरह मुक्त न थी, वह महादेवी के आकांक्षा पुरुष को सशरीर पैदा नहीं कर सकी थी । महादेवी ने काव्य के अभिव्यंजना पक्ष-काव्यभाषा और काव्य रूप को समृद्ध बनाने में मदद की ।प्रसाद, पंत, निराला की तुलना में उनकी भाषा में अधिक परिष्कार,

निखार और तराश है । उन्होंने अपने स्त्री मनोलोक से बिम्ब और प्रतीक को नयी अर्थव्यंजकता दी । अनुभूति की सघनता और अन्विति की दृष्टि से निराला से भी अधिक सधे गीत उन्होंने छायावाद को दिये ।

8.5 विचार सन्दर्भ और टिप्पणी

विषयीगत दृष्टि- जब किसी वस्तु का चित्रण उसके असली रूप में न करके अपने भाव या मनोनुरूप किया जाए । इसी को व्यक्तिक भी कहते है ।

प्रभाव साम्य- जब बाह्य रूप या आकार के बदले दो वस्तुओं के बीच समानता उनके किसी भीतरी गुण के आधार पर स्थापित की जाए । छायावाद के ज्यादातर अलंकार ऐसे हैं । जैसे-यौवन के लिए वसन्त या मधुकाल ।

बिम्ब- वस्तुविशेष के भाव से अनुप्राणित शब्दचित्र को बिम्ब कहते हैं । जैसे- "क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल, चिन्ता का भार बनी अविरल ।" यह दूर क्षितिज पर पहले-पहल दिखाई पड़ने वाली धुँधली बदली का शब्दचित्र है ।

प्रतीक- जब कोई वस्तु अपना स्वीकृत अर्थ छोड़कर किसी अन्य सूक्ष्म भाव या विचार की सूचक बन जाये तो उसे प्रतीक कहते हैं । जैसे- "मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' में दीपक अपने प्रचलित अर्थ में नहीं, बल्कि जीवन के आत्मदान का प्रतीक है ।

विशेषण- जब विशेषण अपने लिए रूढ़ विशेष्य का साथ छोड़कर किसी अन्य विशेष्य का विशेषण बन जाए । जैसे- टूट गया वह दर्पण निर्मम । निर्मम, हृदय के लिए रूढ़ विशेषण है, पर यहाँ दर्पण के साथ जोड़ दिया गया है ।

मानवीकरण- जब-जड़ चेतन प्रकृति पर मानवीय क्रिया कलापों का आरोपण करके चित्रण किया जाए । जैसे-स्मित प्रभात । हँसना, रोना, मुस्काना मनुष्य की क्रिया है, लेकिन उदाहरण में प्रभात के मुस्कराने की बात कही गयी है ।

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के काव्य के अनुभूति पक्ष की विशेषताओं पर विचार कीजिए ।
2. महादेवी वर्मा के काव्य के अभिव्यंजना पक्ष की चर्चा कीजिए ।

8.7 संदर्भ ग्रंथ

1. महादेवी वर्मा- यामा, भारती-भण्डार लीडर प्रेस-इलाहाबाद, पाँचवा संस्करण- 1971
   दीपशिखा, भारती-भण्डार लीडर प्रेस-इलाहाबाद,पंचम संस्करण-सं. 1960
   संधिनी, लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद, ग्यारहवाँ संस्करण- 1982

2. डॉ. नामवर सिंह-छायावाद, राजकमल प्रकाशन-दिल्ली,द्वितीय आवृत्ति- 1968
कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण- 1974
3. इन्द्रनाथ मदान (सं.) - महादेवी,राधाकृष्ण प्रकाशन-दिल्ली, तृतीय संस्करण- 1983

♦♦♦

इकाई- 9 सुमित्रानंदन पंत का काव्य

इकाई की रुपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कवि परिचय

9.2.1 जीवन परिचय

9.2.2 रचनाकार का व्यक्तित्व

9.2.2.1 कवि सुमित्रानंदन पंत

9.2.2.2 पंत के अन्य सर्जक रुप

9.2.3 काव्य-विकास एवं कृतियाँ

9.2.3.1 काव्य कृतियों का परिचय

9.2.3.2 साठोत्तर काव्य

9.3 काव्य-वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

9.3.1 प्रथम रश्मि का आना रंगिणि

9.3.2 शान्त स्निग्ध ज्योत्सना उज्जवल

9.3.3 भारत माता ग्राम वासिनी

9.3.4 हाय । मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन

9.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.6 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

यह इकाई छायावाद के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानंदन पंत के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित है । इस इकाई के अध्ययन से आप-

- कविवर सुमित्रानंदन पंत के जीवन से परिचित हो सकेंगे ।
- रचनाकार-व्यक्तित्व के निर्माण के प्रेरक और प्रभावक तत्वों, परिस्थितियों, विकासक्रमों तथा उनकी दिशाओं को जान सकेंगे ।
- पंत के कृतित्व एवं उनके काव्य-विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- उनकी चुनी हुई कविताओं का वाचन और व्याख्याओं का आस्वाद ले सकेंगे ।
- सम्बंधित कविताओं के प्रतिपाद्य और शिल्प से परिचित हो सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

सुमित्रानंदन पंत छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं, जिनकी कविताओं के आधार पर छायावादी कविता की तमाम विशिष्टताओं, सीमाओं और संभावनाओं को रेखांकित किया

जाता है। 'छायावाद' नाम उस काव्यधारा के लिए प्रयुक्त किया गया, जो द्विवेदी युग की अतिशय सामाजिकता, नैतिकता के विरोध में एक स्वच्छंदतावादी काव्य-दृष्टि लेकर आई थी । छायावाद अपनी पूर्ववर्ती हिन्दी कविता के समानांतर एक भावगत और शिल्पगत विद्रोह था । आरंभ में "अनंतजी की ओर' जैसे कार्टून पंत की रहस्यात्मक कविताओं को ध्यान में रखकर ही बनाये गये थे । छायावादी चतुष्टय में पंतजी का ऐतिहासिक महत्व है । जिस छायावाद को लेकर आरंभ में आलोचकों में गलतफहमी थी, कतिपय नवीनताओं को स्वीकार न करने के कारण वे इस काव्यधारा के प्रबल विरोधी बन गये थे, पंत ने उस गलतफहमी को दूर किया । 'पल्लव' का "प्रवेश' लिखकर उन्होंने छायावाद की पृष्ठभूमि, उसके उद्भव की अनिवार्यता तथा उसके काव्य-उपादानों की, सही परिप्रेक्ष्य में व्याख्या की, जिससे छायावाद को लेकर छायी हुई धुंध छँटी और छायावाद की नई व्याख्या शुरु हुई । इसलिए 'पल्लव' के 'प्रवेश' को छायावाद का घोषणा-पत्र कहा जाता है ।

हिन्दी में छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तन का श्रेय कुछ लोग मुकुटधर पाण्डेय तथा कुछ जयशंकर प्रसाद को देते हैं, किन्तु इस संबंध में कोई दो मत नहीं हैं कि छायावादी कविता के अनुभूति-पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष के प्रचार-प्रसार का श्रेय पंत को जाता है । पंतजी अपनी कविताओं में भाव, भाषा, चिंतन और काव्यशैली के क्षेत्र में नितांत नये प्रयोग करते रहे हैं, इसलिए उन्होंने रीतिकालीन अन्तर्वस्तु की जगह आधुनिक अन्तर्वस्तु तथा ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली का प्रयोग किया । उन्होंने छायावाद को जितनी गंभीरता और नूतन अभिव्यंजना शक्ति प्रदान की, उतनी ही प्रगतिवाद के लिए नयी भूमि तैयार की । वाचस्पति पाठक के अनुसार "अपने काव्यबोध और जीवन के वस्तुगत सत्यों के प्रति जितनी तटस्थ, ईमानदार और उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टि पंत की रही है, उतनी कदाचित किसी भी दूसरे कवि की नहीं रही ।'

पंतजी प्रकृति के सुकुमार कवि है । वे कोमल भावनाओं के कवि है । निराला जैसी संघर्षशीलता उनमें नहीं है । अंग्रेजी के रोमेन्टिक कवि शेली से प्रभावित होने के कारण उन्हें हिन्दी का शैली भी कहा जाता है । सौन्दर्य और उदात्त कल्पना से युक्त उनकी कविता छायावाद में विशिष्ट स्थान रखती है । पंत एक बड़े सजग और जागरुक रचनाकार थे । 1921 में गांधीजी के असहयोग आंदोलन की पुकार पर पंत ने अध्ययन छोड़कर स्वतंत्र लेखन करना शुरु, किया । उन्होंने अपने युग की तमाम विचारधाराओं को बारी-बारी से अपने अनुभव के निकष पर कसा और सबके साथ अपनी शिरकत की। उपनिषद के अद्वैतवाद, गांधीवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, अरविंद दर्शन सबसे उनका नाता रहा और उन्होंने सबमें कुछ-न-कुछ अच्छाइयाँ देखीं । कतिपय विशेषताओं को लेकर यदि वे गांधीवाद के साथ हैं, तो सामाजिक बदलाव को लेकर वे मार्क्सवाद से प्रभावित है । पंतजी बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार है । उन्होंने कई विधाओं में अपनी कलम चलाई है । वे कवि के साथ निबंधकार, आलोचक, नाटककार, कथाकार, संपादक

भी हैं । पंतजी प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य से अपनी यात्रा आरंभ करते हैं तथा मानवप्रेम और विश्व मानवतावाद तक की यात्रा तय करते हैं । उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी तो तराशकर काव्य के उपयुक्त बनाया ।

9.2 कवि परिचय

9.2.1 जीवन परिचयम

सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई 1900 को, उत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तराखंड) के अल्मोड़ा जिले के कौसानी गाँव में हुआ था । इनके पिता का नाम पंडित गंगादत्त पंत तथा मां का नाम सरस्वती देवी थी । जन्म के कुछ घंटे बाद ही इनकी माता का देहान्त हो गया तथा दादी, बुआ और पिता की स्नेह-छाया में इनका पालन पोषण हुआ । इनके बड़े भाई के एक मित्र बिहार के थे, जिनका नाम था-सुमित्रानंदन सहाय । यह नाम पंतजी को इतना अच्छा लगा कि उनहोंने अपना नाम बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया ।

शिक्षा-दीक्षा : पंत की आरंभिक शिक्षा गाँव में हुई । 1911 से 1919 तक अल्मोड़ा के हाईस्कूल में उनका अध्ययन हुआ । तत्पश्चात् वे काशी गये और क्वीन्स कालेज, बनारस से हाईस्कूल की परीक्षा पास की । उब शिक्षा प्राप्ति हेतु उन्होंने प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में प्रवेश लिया । 1921 में गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन चलाये जाने पर उन्होंने अपना नाम कॉलेज से कटवा लिया, किन्तु राजनीति उठा-पटक में उनकी रुचि न होने के कारण काव्य लेखन को ही उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया । इनके काव्य-लेखन में कुछ बाधाएँ भी आयीं जिनमें एक मुख्य बाधा आर्थिक थीं । 1926 में इनके अग्रज का देहान्त होने पर इनके व्यापार की स्थिति बिगड़ने, लगी जिसमें बानवे हजार रुपये का घाटा हुआ, जिसे पूरा करने के लिए इनके पिता को अपनी सारी जायदाद बेचनी पड़ी । शायद इसी हादसे के आघात को सहन न कर पाने कारण पंतजी के पिता का देहान्त हुआ और पंतजी का स्वास्थ्य भी दिन-प्रतिदिन बिगड़ता गया ।

प्रवास : 1930 में कालाकांकर के राजा और उनके छोटे भाई अल्मोड़ा गये, जहाँ पंतजी से उनके भेंट हुई । उन्होंने बड़े आग्रह-अनुरोध के साथ पंतजी को कालाकांकर ले आये । कालाकांकर की प्राकृतिक सुषमा ने पंतजी को बेहद प्रभावित किया और वे प्राकृतिक सौंदर्य के पुजारी बन गये । उनकी प्रसिद्ध 'नौका विहार' कविता में पंतजी ने कालाकांकर के राजभवन का उल्लेख किया है -

'काला कांकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिंत प्रमन ।'

अन्य स्थानों से भी पंतजी की बुलाहट होती रही । 1934 में फिल्म जगत के उदय ने अपनी फिल्म 'कल्पना' के लिए गीत लिखने के लिए पंतजी को मद्रास आमंत्रित किया। मद्रास से उन्हें पांडिचेरी जाने का अवसर मिला जहाँ वे महर्षि अरविंद के संपर्क में आकर अरविंद दर्शन से प्रभावित हुए । उनके स्वर्ण-काव्य पर अरविंद दर्शन का गहरा

प्रभाव पड़ा जिससे वे भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय से एक नये युग का स्वप्न देखते है । यह पंत की विचारधारा और उनके काव्य में एक नये मोड़ का सूचक है ।

पद एवं पुरस्कार : इस तरह वर्षों तक पंतजी भ्रमण करते रहे और अंत में उन्होंने इलाहाबाद को स्थायी निवास-स्थान बनाया । 1950 में ही वे इलाहाबाद आकाशवाणी केन्द्र में हिन्दी प्रोड्यूसर तथा 1957 में आकाशवाणी के हिन्दी परामर्श दाता के पद पर नियुक्त हुए । 1960 में भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में उनकी षष्ठपूर्ति आयोजित की गई जिसमें उनका भव्य अभिनंदन हुआ । 1961 में उन्हें पद्मभूषण की उपाधि मिली । 1962 में 'कला और बूढ़ा चाँद' कविता-संग्रह पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरूस्कार मिला । 1964 में उत्तर प्रदेश सरकार का दस हजार रुपये का विशेष पुरूस्कार प्राप्त हुआ । 1969 में 'चिदम्बरा' काव्य पर उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला । 'लोकायतन' महाकाव्य पर इन्हें सोवियत लैन्ह नेहरु पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

काव्य-प्रेरणा : प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना की प्रेरणा कहीं न कहीं से अवश्य प्राप्त करता है । 'रश्मिबंध ' की भूमिका में पंतजी ने लिखा है- "अपने समय के प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं से ही किसी न किसी रूप में प्रभावित होकर उदीयमान कवि अपनी लेखनी की परीक्षा लेता है । जब मैंने कविता लिखना आरंभ किया था, तब मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं था कि काव्य की मानव-जीवन के लिए क्या उपयोगिता या महत्ता है । मैं यही जानता था कि उस समय काव्य जगत में कौन सी शक्तियाँ कार्य कर रही थीं । जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है, उसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों की कृतियों ने मेरे हृदय को अपने सौंदर्य से स्पर्श किया और उसमें एक प्रेरणा की शिखा जगा दी । उनके प्रकाश में मैं भी अपने भीतर-बाहर अपनी रुचि के अनुकूल काव्य के उपादानों का चयन एवं संग्रह करने लगा ।' इनके अतिरिक्त पंत की कवित्व शक्ति, उनके कवि रूप को बाहर लाने का श्रेय प्रकृति को है जिसे उन्होंने सहज रूप से स्वीकार किया है- "मेरे किशोर-प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ । मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे जिन्होंने मुझे कवि-कर्म करने की प्रेरणा दी थी, किन्तु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत-प्रदेश की दिगंत-व्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की, जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकान्त एकाग्र तन्मयता के रश्मि-ढोल में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कंठ वनपाँखियों के साथ बोलना-कुहुकना सिखाया । प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम मेरे स्वभाव के विभिन्न अंग ही बन गये हैं जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकट-क्षणों में अमोघ सांत्वना मिली है ।'

प्रभाव-ग्रहण : प्राय: प्रत्येक रचनाकार किसी न किसी रचनाकार के जीवन दर्शन और काव्य-दृष्टि से प्रभावित होता है । पंतजी अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों तथा रवीन्द्रनाथ से प्रभावित हैं । उन्होंने लिखा है- "सन् 1919 की जुलाई में मैं कॉलेज में पढ़ने के लिए प्रयाग आया तब से प्राय दस साल तक प्रयाग ही में रहा । यहाँ मेरा काव्य संबंधी ज्ञान धीरे-धीरे व्यापक होने लगा । शेली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों से मैंने बहुत कुछ सीखा और मेरे मन में शब्दचयन और ध्वनि-सौंदर्य का बोध पैदा हुआ (रश्मिबंध) ।'

स्वभाव : पंतजी का स्वभाव अंतर्मुखी था । उनके स्वभाव के बारे में अज्ञेय का कथन है कि- "पंतजी के स्वभाव में एक विशेष प्रकार की परनिर्भरता थी । ... वह आजीवन न किसी के भरोसे रहते रहे, शायद आभ्यंतर जगत की स्वायत्तता बनाये रखने की यह एक युक्ति थी कि बाहर की जगत की संपूर्ण व्यवस्था किसी दूसरे को सौंपकर वह स्वयं उधर से निश्चिंत हो जायें ।' पंतजी सुरुचिसंपन्न व्यक्ति थे । उनका बाहरी व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, उतना ही आंतरिक व्यक्तित्व भी । उनके बालों की सजावट को देखकर किसी विद्वान ने कहा था कि यदि आप विलायत में होते तो बालों की डिजाइन बनाने के लिए आपको लाखों रुपये मिलते । उनकी रुचिसंपन्नता जीवन के साथ उनकी कविता में भी प्रकट हुई है ।

9.2.2 रचनाकार का व्यक्तित्व

9.2.2.1 कवि सुमित्रानंदन पंत

पंत मूलत: कवि हैं । कविता ही उनकी चिरसंगिनी रही है । अपना परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है-

मैं भावों में तन्मय
अंकित करता उसको
मुझे नहीं दूसरी प्रेयसी,
मिली कभी भी ।

पंत का कवि-व्यक्तित्व आपादमस्तक काव्यात्मक और कलात्मक है । पंत का व्यक्तित्व विद्रोही है, किन्तु यह उग्र विद्रोह नहीं है । यह उनकी प्रकृति के अनुरूप सौम्य विद्रोही है । कामेश्वर शर्मा के अनुसार- "इन्होंने विद्रोह भी किया तो बहुत कोमल- जैसे कोई चमेली की डाल से मार रहा हो, इन्होंने समन्वय का प्रयत्न भी किया तो बहुत उथला- जैसे चावल में तिल और पानी पर तेल मालूम पड़ता हो' **(बोध और व्याख्या)** । अपने समय की तमाम काव्यधाराओं से पंत का संबंध रहा है । ये काव्यधाराएँ हैं-

छायावाद और सुमित्रानंदन पंत : पंतजी छायावाद के विश्लेषक हैं । द्विवेदी युग के बाद तमाम सामाजिक, नैतिक रुढ़ियों और वर्जनाओं का विरोध करती हुई जो एक नई

स्वच्छंद काव्यधारा विकसित हुई उसे छायावाद नाम दिया गया । छायावाद नाम हेयता सूचक अर्थ में दिया गया, किन्तु वही नाम स्वीकृत हो गया । पंतजी छायावाद के प्रतिनिधि और विशिष्ट कवि हैं जिन्होंने छायावाद की व्याख्या की तथा पूर्ववर्ती काव्यों से उसकी एक पृथक पहचान कायम की । छायावाद के संदर्भ में उन्होंने कहा कि कवि या लेखक अपने युग से प्रभावित होता है, साथ ही अपने युग को प्रभावित भी करता है। "छायावादी काव्य वास्तव में भारतीय जागरण की चेतना का काव्य रहा है । उनकी एक धारा राष्ट्रीय जागरण से संबद्ध रही है, जिसकी प्रेरणा गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के युद्ध में निहित रही है और दूसरी धारा का संबंध उस मानसिक दार्शनिक जागरण की भावात्मक तथा सौंदर्यबोध संबंधी प्रक्रिया से रहा है जिसका समारंभ औपनिषदिक विचारों तथा पाश्चात्य साहित्य तथा संस्कृति के प्रभावों के कारण हुआ है।' छायावाद स्थूल सौंदर्य की जगह सूक्ष्म सौंदर्य की स्थापना करता है । पंतजी ने बदलते युग संदर्भ में कविता के बदलते सौंदर्य- बोध की व्याख्या की- "छायावाद ने जो नवीन सौंदर्य बोध, जो आशा आकांक्षाओं का वैभव, जो विचार सामंजस्य तथा समन्वय प्रदान किया था, वह पूंजीवादी युग की विकसित परिस्थितियों की वास्तविकता पर आधारित था । मानव चेतना तब युग की बदलती हुई कठोर वास्तविकता के निकट संपर्क में नहीं आ सकी थी । उसकी समन्वय तथा सामंजस्य की भावना केवल मनोभूमि पर ही प्रतिष्ठित थी, किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वह सर्वधर्म समन्वय, सांस्कृतिक समन्वय, ससीम-असीम तथा इहलोक-परलोक संबंधी समन्वय की अमूर्त भावना अपर्याप्त लगने लगी जिससे छायावाद ने प्रारंभिक प्रेरणा ग्रहण की थी । अनेक कवि तथा कलाकारों की सृजन-कल्पना इस प्रकार के कोरे मानसिक समाधानों से विरक्त होकर अधिक वास्तविक तथा भौतिक धरातल पर उतर आई और मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित होकर प्रगतिवाद के नाम से एक नवीन काव्य चेतना को जन्म देने में संलग्र हो गई । जिस प्रकार मार्क्स के भौतिकवाद ने अर्थनीति तथा राजनीति संबंधी दृष्टिकोणों को प्रभावित किया, उसी प्रकार फ्रायड, युंग आदि पश्चिम के मनोविश्लेषकों ने रागवृति संबंधी नैतिक दृष्टिकोण ने एक महान क्रांति उपस्थित कर दी। फलत: छायावादी युग के सूक्ष्म आध्यात्मिक तथा नैतिक विश्वासों के प्रति संदिग्ध होकर तथा पश्चिम की भौतिक तथा जैविक विचारधाराओं से अधिक-कम मात्राओं में प्रभावित होकर अनेक प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, प्रतीकवादी कलाकार अपने हृदय के विक्षोभ तथा कुंठित आशा-आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए संक्रांति काल की बदलती हुई वास्तविकता से प्रेरणा ग्रहण करने लगे ।'

हिन्दी कविता को छायावाद का प्रदेय क्या है, इसकी व्याख्या करते हुए पंत ने लिखा है- "छायावादी कविता ने सोयी हुई भारतीय चेतना की गहराईयों में नवीन रागात्मकता की माधुर्य ज्वाला, नवीन जीवन-दृष्टि कासौंदर्य बोध तथा नवीन विश्व-मानवता के स्वप्नों का आलोक उंड़ेला । छायावाद से पहले खड़ी बोली का काव्य, भाव तथा भाषा की दृष्टि से निर्धन ही रहा । छायावाद ने उसमें अंगड़ाई लेकर जागते हुए भारतीय

चैतन्य का भाव-वैभव भरा । विश्वबोध के व्यापक आयाम, लोकमानव की नवीन आकांक्षाएँ, जीवन प्रेम से प्रेरित परिष्कृत अहंता के मांसल सौंदर्य का परिधान उसके पहले-पहल हिन्दी कविता को प्रदान किया' **(रश्मिबंध)** ।

प्रगतिवाद और सुमित्रानंदन पंत : छायावाद की अतिशय कल्पना का विरोध करती तथा मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित जो काव्यधारा हिन्दी में आई उसे प्रगतिवाद कहते हैं । प्रगतिवाद जीवन और जगत के प्रति भावात्मक और कल्पनावादी दृष्टिकोण न रखकर एक वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है । जब 1935 में प्रेमचंद ने साहित्य के मानदंड बदलने की बात कही तब 1938 में 'रूपाभ' के प्रवेशांक में पंतजी ने भी कहा था कि "आज की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती ।' जाहिर है कि पंत ने भी छायावाद की समाप्ति की घोषणा की तथा प्रगतिवाद के आगमन का स्वागत किया था । मार्क्स का उन्होंने गुणगान किया-

धन्य मार्क्स चिर तमाच्छत्र, पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के कालचक्षु सम**,** प्रकट हुए प्रलयंकर ।

प्राय: छायावाद और प्रगतिवाद को एक दूसरे का विरोधी माना जाता है । यह भी कहा जाता है कि "प्रगतिवाद छायावाद के भस्म से नहीं, उसका गला घोंटकर पैदा हुआ था,' किन्तु पंत प्रगतिवाद को छायावाद का अगला विकास-चरण मानते हैं- "प्रगतिशील कविता वास्तव में छायावाद की ही धारा है । दोनों के स्वरों में जागरण का उदात्त संदेश मिलता है- एक में मानवीय जागरण का, दूसरे में लोक जागरण का । दोनों की जीवन-दृष्टि में व्यापकता रही है- एक में सत्य के अन्वेषण या जिज्ञासा की, दूसरे में यथार्थ की खोज या बोध की । दोनों ही वैयक्तिक क्षुद्र अहंता को अतिक्रम पर प्रभावित हुई है, एक ऊपर की ओर, दूसरी विस्तृत धरती की ओर । दोनों खमतापूर्ण रही है- एक अंतर गांभीर्य की, दूसरी सामाजिक गति की शक्ति से ।' वे यह भी कहते है कि छायावाद का आरंभिक अस्पष्ट अध्यात्मवादी दृष्टिकोण प्रगतिवाद में धूमिल भौतिकवाद तथा वस्तुवाद बनने का प्रयत्न करने लगा ।

प्रगतिशील चेतना से प्रभावित होकर ही पंतजी यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने की ओर अग्रसर हुए । ठोस सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का चित्रण तथा लघुता पर दृष्टिपात करते हुए मानवतावाद का उद्घोष करने लगे । ताजमहल को रोमेंन्टिंग दृष्टि से न देखकर यथार्थवादी और प्रगतिशील दृष्टि से देखा । "दुत झरो जगत के जीर्ण पत्र'- कहकर संसार के तमाम रुढ़ियों और जर्जर ग्राम्या में उनकी प्रगतिशील दृष्टि भास्वर रूप में प्रस्तुत हुई है । सारतः पंत जी प्रगतिवाद के कोई कार्ड-होलडर सदस्य नहीं थे, परंतु युगधारा के प्रभाव में आकर उन्होंने प्रगतिवाद को अपनाया तथा उसकी मान्यताओं के अनुरूप कविताएं लिखीं तथा वक्तव्य दिए । उन्होंने प्रगतिवाद की प्रासंगिकता और अनिवार्यता के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये । अत: पंतजी छायावादी दायरे को तोड़कर प्रगतिवादी खेमे में आये । उनकी प्रगतिशील कविताओं और विचारों को अनदेखा करके प्रगतिशील आंदोलन का इतिहास नहीं लिखा जा सकता है ।

अत: कह सकते हैं कि पंत ने छायावाद को जितना समृद्ध किया, उतना ही प्रगतिवाद को भी

प्रयोग और पंत :

प्रयोगवाद और पंत :

प्रयोगवाद एक साहित्यिक, कलात्मक आंदोलन था जो 1943 में अज्ञेय के संपादकत्व में 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ अस्तित्व में आया । पंतजी इस आंदोलन से जुड़े नहीं थे और न ही उनकी कविताएँ सप्तक में संकलित थीं, किन्तु साहित्य में प्रयोगशीलता की जो एक सहज प्रवृत्ति होती है, उससे वे प्रभावित रहे और भाव, भाषा, अलंकार और छंद के क्षेत्र में निरंतर प्रयोग करते रहे । 'पल्लव' की भूमिका में वे ब्रजभाषा में प्रयुक्त भाव, भाषा, अलंकार, छंद आदि की एकरसता की जगह नये काव्य उपकरण के प्रयोग पर बल देते हैं- "भाव और भाषा का ऐसा शुष्क प्रयोग, राग और छंदों की ऐसी एकस्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रांत उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है? घन की घहर, भेकी की भहर, झिली की झहर, बिजली की बहर, मोर की कहर, समस्त संगीत तुक एक ही नहर में बहा दिया और बेचारे औपकायन की बेटी उपमा को तो बाँध ही दिया । आँख की उपमा? खंजन, मृग, कंज, मीन, इत्यादि और इन धुरंधर साहित्यचार्यों को? शुक, दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि ।'

पंतजी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को छायावाद से जोड़कर देखते हैं - "मैंने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को छायावाद की उपखाखाओं के रूप में इसलिए माना है कि मूलत: ये तीनों धाराएँ एक ही युग-चेतना अथवा युगसत्य से अनुप्राणित हुई हैं । उनके रूप-विधान तथा भावना-सौष्ठव में कोई विशेष अंतर नहीं है और अपने विचार-दर्शन में भी वे भविष्य में एक दूसरे के निकट आ जाएँगी । ये तीनों धाराएँ एक दूसरे की पूरक हैं।

नई कविता और सुमित्रानंदन पंत :

प्रयोगवाद के बाद हिन्दी में नई विषयवस्तु और नये शिल्प का दावा लेकर एक काव्य आंदोलन खड़ा हुआ जिसे नई कविता नाम दिया गया । पंतजी एक दीर्घ कालावधि तक साहित्य-सृजन में रत रहे । छायावाद से लेकर नई कविता तक हिन्दी में जितनी काव्यधाराएं और साहित्यिक आंदोलन अस्तित्व में आए, उन सबसे वे प्रभावित हुए तथा उनकी मान्यताओं के अनुरूप साहित्य- सृजन किया । उन्होंने नई कविता की अंतर्वस्तु, शिल्प, कलादृष्टि, छंद आदि का मूल्यांकन किया । प्रगतिवाद की सीमाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने नई कविता के संदर्भ में लिखा कि- "नई कविता इन दोषों से कुछ हद तक अपने को मुक्त कर सकी है, पर वह अधिकतर 'कला के लिए कला' वाले सौंदर्यवादी सिद्धांत की प्रतिध्वनि मात्र रह गई है । इस समय उसका सर्वाधिक आग्रह रूप-विधान एवं शिल्प के प्रति प्रतीत होता है । भावपक्ष को वह वैयक्तिक निधि या संपत्ति मानती है । भावना की उदात्तता, सार्वजनिक उपयोगिता एवं अर्थगांभीर्य की

ओर वह अधिक आकृष्ट नहीं । भावों एवं मान्यताओं की दृष्टि से वह अभी अपीरपक्क, अनुभवहीन तथा अमूर्त ही है । वह अपने चारों ओर की परिस्थितियों के अंधेरे तथा मानसिकता के कुहासे में कुछ टटोल-भर रही है । सत्य से अधिक उसकी आस्था क्षण के बदलते हुए यथार्थ ही में है और टटोलन के ही भावुक सुख-दुःख भरे प्रयत्न को वे अधिक महत्व देती है । लक्ष्य से अधिक मूल्य वह लक्ष्य के अनुसंधान की व्यथा को देती है । इसी से उसके मानस में रस का संचार होता है जो उसकी किशोर प्रवृत्ति है। ऐसा भाव या वस्तु सत्य, जिसका मानव जीवन के कल्याण के लिए उपयोग हो सके- उसे नहीं रुचता । वह उसकी काव्यगत मान्यताओं के भीतर समा भी नहीं सकता । वह तो साधारणीकरण की ओर बढ़ना हुआ । उसे विशेषीकरण से मोह है । वह प्रतीकों, बिम्बों, शैलियों और विधाओं को जन्म दे रही है । वह अति वैयक्तिक रुचियों की तथ्यशून्य तथा आत्म-मुग्ध कविता है । आज जो एक सर्वदेशीय संस्कृति, विश्व मानवता आदि का प्रश्न साहित्य के सम्मुख है, उसकी ओर उसकी रुझान नहीं । उसकी मानवता वैयक्तिक और कुछ अर्थों में अति वैयक्तिक मानवता है । सामाजिक दृष्टि से वे समाजीकरण के विरोध में आत्मरक्षा तथा व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति सचेष्ट तथा सन्नद्ध मानवता है । 'पंतजी का यह भी आरोप है कि नई कविता ने छंदों की दृष्टि से कोई नये प्रयोग नहीं किये । नयी कविता शब्दलय को न संभाल सकने के कारण वह अर्थलय या भावलय की खोज में लयहीन बनी रही- "रूप और भावपक्ष की अपरिपक्कता के कारण अथवा तत्संबंधी दुर्बलता को छपाने के लिए वह शैलीगत शिल्प को ही अधिक महत्व देती है और व्यक्तिगत होने के कारण शैली एक ऐसी वस्तु है कि उसकी दुहाई देकर एक कृतिकार कुछ अंशों तक सदैव अपनी रक्षा कर सकता है ।' **(रश्मिबंध)**

9.2.2.2 पंत के अन्य सर्जक रूप :

पंत मूलत: कवि हैं, किन्तु उन्होंने एक उपन्यास "हार' तथा एक कहानी-संग्रह- "पाँच कहानियाँ', हिन्दी साहित्य को दिए है । नाल्यविधा से भी उनका संबंध रहा तथा उन्होंने "ज्योत्सना', "रजत शिखर', "शिल्पी' काव्य-रूपक लिखे । वे आलोचक नहीं थे, किन्तु छायावाद संबंधी प्रचलित अस्पष्टता तथा गलतफहमियों को दूर करने के लिए काव्य-संग्रहों की लंबी भूमिकाएँ लिखीं जिनमें उनका आलोचक रूप सामने आया । "छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' उनकी समीक्षा-कृति है । कविता के भाव और शिल्प में बदलाव की तरह पंत समीक्षाक्षेत्र में भी उसके नये मानदंड निर्माण करने के पक्ष में हैं- "हिन्दी में समालोचना का बड़ा अभाव है । 'रसगंगाधर', 'काव्यादर्श' आदि की वीणा के तार पुराने हो गए हैं ।' यानी काव्यशात्र को युग के अनुरूप बदलने की जरुरत है, क्योंकि पुरानी कसौटी पर छायावादी कविता को नहीं कसा जा सकता ।

9.2.3 काव्य विकास एवं कृतियों

पंत की प्रकाशित प्रमुख कृतियाँ :

उच्छ्वास (1922) - खानगी तौर पर अजमेर से प्रकाशित

पल्लव (1926) - इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

वीणा (1927) - इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

ग्रंथि (1929) - इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

गुंजन (1932) - भारती भंडार, बनारस ।

ज्योत्सना (1934) - गंगा ग्रंथागार, लखनऊ।

युगांत (1936) - इंद्रा प्रिंटिंग वर्क्स, अल्मोड़ा ।

युगवाणी (1939) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

ग्राम्या (1940) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

स्वर्णकिरण (1947) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

स्वर्णधूलि (1947) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

मधुज्वाल (1948) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

युगपथ (1949) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

उत्तरा (1949) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

रजत शिखर (1951) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

शिल्पी (1952) - सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद ।

अतिमा (1955) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

सौवर्ण (1947) - भारतीय भंडार, इलाहाबाद ।

वाणी (1958) - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

कला और चुढ़ा चाँद (1959) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

लोकायतन - 1977

पंत जी की लोकायतन के बाद प्रकाशित प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं -

'किरणवीणा', पो फटने से पहले, पतझर एक भावक्रांति, समाधिता, गीतहंस, शंखध्वनि, शशि की तरी और आस्था ।

(ज्योत्सना, रजतशिखर, शिल्पी, उत्तर-शती उनके काव्यरूपक हैं।)

संकलन

पल्लविनी (1940) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

आधुनिक कवि (2) (1941) - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

कविश्री सुमित्रानंदन पंत (1956) - साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) ।

रश्मिबंध (1958) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

चिदंबरा (1959) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

तारूपथ-संपादक-दूधनाथ सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1956

गद्यकृतियाँ

हार (उपन्यास), पाँच कहानियाँ (1936) - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

शिल्प और दर्शन (निबंधों भाषणों और वार्ताओं का संकलन)

गद्यपथ (1953) - साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद ।

छायावाद : पुनर्मूल्यांकन (आलोचना), कला और संस्कृति ।

साठ वर्ष: एक रेखांकन (आत्मकथा-1960) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

'रुपाभ' पत्रिका का संपादन- 1938 ।

9.2.3.1 काव्य कृतियों का परिचय

वीणा **:** "वीणा" पंत का दूसरा काव्य-संग्रह है । इसे उन्होंने अपनी "बाल कल्पना" तथा "दूधमुँहा प्रयास" कहा है । यह एक किशोर मन का भावना-प्रधान काव्य है । किन्तु इसमें युग-विमुखता भी नही है । इस संग्रह की कविताओं में अतिशय कल्पना, आदर्शवाद, रहस्यात्मकता तथा सूक्ष्म सौदर्य चेतना विद्यमान है । पंत का कथन है कि-

"मैंने प्रकृति की छोटी-छोटी वस्तुओं को अपनी कल्पना की तूलिका से रंगकर काव्य की सामग्री इकट्ठी की है । कवि ने 'वीणा' में स्वयं को एक भोली बालिका के रूप में प्रस्तुत किया और कहा है-

यह तो तुतली बोली में है

एक बालिका का उपहार ।

ग्रंथि : (1920) । यह अतुकान्त छंद में लिखित एक प्रेमकथा है । एक नाव के डूबने के साथ एक युवक का डूबकर बेहोश होना तथा बेहोशी टूटने पर अपने सिर को एक अपूर्व किशोरी की जाँघ पर रखे देखना-कवि को भावविह्वल कर देता है । किन्तु उस किशोरी का विवाह किसी अन्य युवक के साथ होता है और वह विवाह-बंधन कवि के मन में विषाद की एक गाँठ लगा देता है जो आजीवन नहीं खुलती । कुछ आलोचकों के अनुसार इस प्रेम-विरह की कविता में पंत ने अपने जीवन की उस घटना का सांकेतिक और मार्मिक चित्रण किया है जिसके कारण वे आजीवन कुँवारे रहे । इसमें पवित्र प्रेम तथा विरह की तीव्र और मार्मिक अनुभूति है ।

पल्लव : (1926) 'पल्लव' का प्रकाशन हिन्दी कविता के इतिहास में एक युगांतकारी घटना थी । 'पल्लव' में प्रकाशित भूमिका को छायावाद का मेनिफेस्टो कहा जाता है । इसमें छायावाद के पूर्ववर्ती काव्य विषय, काव्य-पद्धति तथा छायावाद की पृष्ठभूमि और उनकी मान्यताओं को सविस्तार प्रस्तुत किया गया है । युग-संदर्भ में कविता के बदलते विषय, मानदंड, शैली की नयी पद्धति की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए छायावाद की स्थापनाओं को प्रस्तुत किया गया है । "पल्लव" संग्रह ने सबसे पहले पंत को काव्य-

जगत में स्थापित किया । पल्लव काल में पंतजी प्रकृति-प्रेम और सौंदर्य से विशेष मोहासक्त रहे । "मोह" कविता में वे लिखते हैं

छोड़ दुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को ।

"पल्लव" संग्रह की सबसे लंबी कविता 'परिवर्तन' है जो कवि की "उस काल के हृदय-मंथन तथा बौद्धिक संघर्ष की विशाल दर्पण सी बन गयी है ।" इसमें सृष्टि में परिवर्तन की नित्यता, संसार की क्षणभंगुरता का यथार्थ चित्रण करते हुए परिवर्तन को निष्ठुर कहा गया है तथा उसका विराट चित्र खींचा गया है-

अहे निष्ठुर परिवर्तन ।
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन ।
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन
निखिल उत्थान-पतन ।
अहे वासुकि सहस्त्र फन ।
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर ।
शत- शत फेनोच्छवसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घूमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर ।
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डला, दिड्मण्ल।

पूर्ववर्ती संग्रहों की तुलना में "पल्लव" में कवि की दृष्टि अत्यंत परिपक्क दिखती है । पंत का कथन है- "प्रकृति सौंदर्य और प्रकृति प्रेम की अभिव्यंजना पल्लव में अधिक प्रांजल तथा परिपक्क रूप में हुई है । "वीणा" की विस्मय भरी रहस्य प्रिय बालिका अधिक मांसल, सुरुचि-सुरंगपूर्ण बनकर, प्राय: मुग्धा युवती का हृदय पाकर, जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील होकर "पल्लव" में प्रकट हुई है ।" **(रश्मिबंध)**

गुंजन : गुंजन पंतन के काव्य-विकास का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जिसमें कवि का चिंतन क्रमश: प्रौढ़ होता, गया है । इसमें छायावाद अपनी संपूर्ण विशिष्टता के साथ साकार हो उठा है । इसका मूल विषय मानवजीवन है । कवि सुंदर से सत्य और शिव की ओर अग्रसर होता है । इस संग्रह की बहुचर्चित कविता "नौका विहार' है जो कालाकांकर प्रवास के समय लिखी गयी थी । इसमें कवि नौका- विहार से प्राप्त

उल्लासपूर्ण अनुभूति का चित्रण करते हुए अंत में कविता को दर्शन में परिणत करता है और मानवजीवन को शाश्वत मानता है -

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम

शाश्वत है गति, शाश्वत संगम ।

ज्योत्सना : (1934) यह एक काव्य-रूपक है । इसमें कवि ने मानवजीवन के आदर्श मानदंड तथा वर्ण-जाति विहीन राष्ट्र तथा नये मानवतावाद की कल्पना की है । कवि जीवन तथा मानव के संबंध में जो कुछ भी सुंदर परिकल्पना करता है, प्रेम, मानवता के विषय में जो भी उच्चादर्श हो सकते है उसका अंकन कवि ने किया है । उन्होंने स्वीकार किया है कि- "मेरे काव्य दर्शन की कुंजी निश्चय ही ज्योत्सना में है ।'

युगान्त : 1936 इसमें कुल 33 कविताएँ संकलित हैं । "युगान्त' शीर्षक ही इस तथ्य का द्योतक है कि यह पिछले युग छायावाद युग के अंत का परिचय देता है । यह कवि के पूर्ववर्ती भावलोक और कल्पनालोक की समाप्ति की घोषणा है । प्रकृतिप्रेम और सौंदर्य से आसक्त पल्लव काल का कवि युगान्त की "मानव' शीर्षक कविता में घोषणा करता है-

सुंदर है विहग, सुमन सुंदर

मानव ? तुम सबसे सुंदरतम ।

"युगान्त" में कवि मानव और उसके जीवन की समस्याओं के प्रति विशेष आकृष्ट है । वह अपने सृजन और चिंतन के केन्द्र में मानव को रखता है । इसमें मानव-कल्याण की भावना, मानव की समता, स्वतंत्रता और आपसी प्रेम की भावना व्यक्त हुई है । पंत का कथन है कि- "युगान्त की क्रांति भावना में आवेश है और है नवीन मनुष्यत्व के प्रति संकेत । दूसरे शब्दों में बाह्य क्रांति के साथ ही मेरा मन अंत: क्रांति का, नवीन मनुष्यत्व की भावनात्मक उपलब्धि का आकांक्षी बन जाता है ।"

युगवाणी **:** (1936) युगवाणी में कवि ने युग-चेतना को वाणी दी है । इसमें पंत ने मार्क्सवादी विचारधारा को पकड़ा है । कवि ने साम्यवाद की प्रासंगिकता दिखाकर शोषितों के प्रति गहरी सहानुभूति दिखाई है । इसमें कवि का विचार पक्ष प्रबल हो गया है । पंतन ने समाज और उसकी समस्याओं को मार्क्सवादी आलोक में देखा है । 'युगवाणी' में भावुकता नहीं, बौद्धिकता है । बौद्धिक आलोक में वे युगीन समस्याओं को देखते हैं । वे एक रम्य समाज-निर्माण की कल्पना करते हैं जो समाजवादी चेतना से अनुप्राणित हैं-

रम्य रूप निर्माण करो है,

रम्य वस्तु परिधान,

रम्य बनाओ गृह, जन पथ को,

रम्य नगर, जन्मस्थान ।

शिवदान सिंह चौहान के अनुसार "पंत की युगवाणी की कविता यूटोपियन है यद्यपि उनका 'यूटोपियनिज्म' समाजवादी है, इसलिए प्रगतिवादी है । वह 'यूटोपियन' इसलिए है कि वे एक उच्च आदर्श, उच्च जीवन, नये समाज, नयी संस्कृति की कल्पना करते हैं।

ग्राम्या : (1940) ग्राम्या में कवि ग्राम्य जीवन की ओर लौटता है तथा भारतीय ग्राम्य जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालता है । ग्राम-जीवन की उपेक्षा, विकास के अभाव तथा बदतर स्थिति को देख कवि भावाकुल हो उठते हैं-यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित यह भारत का ग्राम, सभ्यता-संस्कृति से निर्वासित । 'ग्राम्या' में कवि यथार्थवादी जमीन पर स्थित है । 'गुंजन' के बाद कवि की यथार्थवादी चेतना **क्रमश:** गहराने लगती है और वे मानव-जीवन की समस्याओं से जुड़ने लगते है । ग्राम्या में अन्न, वस्त्र, घर, यानी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं से वंचित दीनहीन लोग हैं । पंत ग्रामजनों के प्रति सहानुभूति, दया, करुणा दिखाते हैं तथा उनके जीवन में परिवर्तन की अनिवार्यता पर बल देते हुए "सामूहिक मंगल हो समान" की उद्घोषणा भी करते है । "हमारे अंदर से उठकर जो प्रेरणाएँ कल देश और समाज की ताकत बनने वाली हैं, ग्राम्या का संबंध मुख्यत: उन्हीं से है ।" ग्राम्या की "वे आँखें" कविता बड़ी मार्मिक तथा मानवतावादी विचारधारा से युक्त है । इसमें कवि ने एक किसान की पीड़ा का चित्रण किया है जिसके लहराते खेल जमींदार द्वारा बेदखल हो गये हैं । उसका जवान बेटा कारकूनों की लाठियों से मारा गया है, जिसका घर-बार महाजन द्वारा कुर्क कर लिया गया है । जिसकी बेटी दूध के अभाव में मर गयी है और जिसकी पुत्रवधू पुलिस अत्याचार के कारण कुएँ में कूदकर मर गयी है । ये आँखें उसी किसान की है जिनमें दु:ख का सागर लहरा रहा है-

अंधकार की गुहा सरीखी
उन आँखों से डरता है मन
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दु:ख का नीरव रोदन ।
मानव के पाशव पीड़न का
देती वे निर्मम विज्ञापन ।
फूट रहा उनमें गहरा आतंक,
क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम
डूब कालिमा में उनकी
कँपता मन उनमें का तम ।
ग्रस लेती दर्शक को वह
दुर्जेय,दया की भूखी चितवन
झूल रहा उस छाया-पट में
युग-युग का जर्जर जन-जीवन ।

ग्राम्या की 'भारत माता' बहुचर्चित कविता है जिसमें भारतमाता का यथार्थ चित्र खींचा गया है । कवि भारत माता की दुरावस्था से बेहद चिंतित हैं । इसमें कवि की राष्ट्रीय चिंता व्यक्त हुई है ।

स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि : यह उनका स्वर्ण काव्य कहलाता है जिसमें कवि अरविंद दर्शन से प्रभावित होकर भौतिकता और आध्यात्मिकता को पृथक्-पृथक् अपर्याप्त मानकर दोनों के समन्वय पर बल देता है । पंत का कथन है- "स्वर्णकिरण में मैंने मानवता की व्यापक सांस्कृतिक समन्वयता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है-

"भू रचना का भूतिपाद युग हुआ विश्व इतिहास में उदित,
सहिष्णुता सदभाव शान्ति में हों गत संस्कृति धर्म समन्वित
वृथा पूर्व-पश्चिम का दिग्भ्रम मानवता को करे न खण्डित,
बहिर्नयन विज्ञान को महत अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योजित ।
सस्मित होगा धरती का मुख, जीवन के गृह-प्रांगण शोभन,
जगती की कुत्सित कुरुपता सुषमित होगी, कुसुमित दिशि क्षण ।"

स्वर्णकिरण में वेद-उपनिषद के मंत्रों की प्रतिध्वनियाँ हैं । स्वर्णधूलि में भी वेदमंत्रों के अनुस्वाद है ।

वाणी : वाणी में भी समन्वयकारी चेतना है । इसमें विषयों की विविधता है । प्रमुख कविता 'आत्मिका' में व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से चेतना के संचरण तथा पिण्ड और ब्रह्माण्ड को समझने-समझाने का प्रयास किया गया है । नये छंद-रूपकों के प्रयोग है ।

कला और बूढ़ा चाँद : यह एक प्रेरणा-प्रधान काव्य-संग्रह है जिसे पंतजी ने काव्य शैली की दृष्टि से एक नया प्रयोग कहा है । यह उनके काव्य विकास की एक महत्वपूर्ण रचना है । वे छंद, अलंकार के बंधन से मुक्त होकर कविता से कहते हैं -

ओ रचने-
तुम्हारे लिए कहाँ से
ध्वनि छंद लाऊँ?
कहाँ से शब्द भाव लाऊँ?

लोकायतन : 'लोकायतन' उनका प्रबंध काव्य है जिसमें लोकायत प्रदर्शन की स्थापना है। परंपरागत और वर्तमान मूल्यों को त्यागकर कवि नये मूल्यों की स्थापना पर बल देता है । ऊर्ध्व और सामयिक चेतना का समन्वय लोकायतन का प्रतिपाद्य है । सावित्री सिन्हा के अनुसार 'लोकायतन अपने पहले के हर महाकाव्य से अलग है । न तो उसमें द्विवेदी युगीन महाकाव्यों के समान अतीत का गौरव गान, शूद्र अथवा नारी का उद्धार है और न परवर्ती प्रबंध काव्यों की भांति किसी एक सार्वभौम समस्या के विरोधी पहलुओं की टक्कर में संशय और द्वंद्व-ग्रस्त चेतना का चित्रण है । लोकायतन के कवि की दृष्टि-प्रक्रिया ही अलग है । पूर्ववर्ती प्रबंधकाव्यों में व्यक्ति, घटना अथवा समस्या प्रधान है, युग और परिवेश उनकी नियामक इकाईयों में से ही एक है, पर

लोकायतन का लक्ष्य तो मूर्त विराट पर केन्द्रित है, घटनाएँ और पात्र उसी विराट के अंश है ।'

इस रचना में पंतजी की जीवन-दृष्टि समग्रता में व्यक्त हुई है । पंतजी के शब्दों में- "मैंने इस काव्य में अपने जीवन दर्शन को व्यक्त किया है ।... जिस चेतना को महाभारतकार, भागवतकार या मानसकार ने व्यक्त किया है, उसी को मैंने अपनी जीवनदृष्टि द्वारा मानव पर चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है । .... मैंने तो उर्ध्यमुखी मनुष्य की कल्पना की है । लोकायतन में मेरा ईश्वर संतों या किसी धर्म का नहीं है । मैंने तो मनुष्य को भू-ईश्वर कहा है । मेरा विश्वास है कि धरती ही स्वर्ग है और इस पर जीवन जीने वाला मनुष्य ही उसका ईश्वर है ।... इस महाकाव्य में मैंने अपनी भाषा और महाकाव्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है ।..... वस्तुत: यह चिंतन प्रधान काव्य है ।.... यह युग विघटन का है और इसी में से लोकायतन का जन्म हुआ है ।..... मेरे भीतर आज का विघटन, भविष्य का निर्माण सब कुछ भरा हुआ था और एक प्रकार से लोकायतन के द्वारा मैंने वमन कर दिया है ।'

अत: पंत का काव्य विकास अनेक पड़ावों से होकर गुजरा है । सौंदर्य, प्रेम, वैयक्तित्कता से होते हुए मानवता में उनके काव्य की परिणति होती है । पंत का सजग मन नित्य नवीन विचारधारा की तलाश में लीन रहा और रुढ़ियों से बँधकर रहना उसने स्वीकार नहीं किया । इसी संदर्भ में उन्होंने उपनिषद के अद्वैतवाद, गाँधीवाद, मार्क्सवाद, अरविंद दर्शन-सबसे जुड़कर उसे जाँचा परखा । वे मार्क्सवाद से जुड़कर भी गाँधीवाद से अपना अलगाव नहीं दिखाते । मार्क्स के भौतिकवाद तथा अरविंद के अध्यात्म दोनों को पृथक-पृथक अपर्याप्त मानकर दोनों में समन्वय स्थापित करते हैं । आरंभ में पंतजी कला कला के लिए सिद्धांत के समर्थन थे, किंतु छायावादोत्तर युग में वे- "कला जीवन के लिए' सिद्धांत के पोषक बन गये । एक अन्य तथ्य यह है कि उनके काव्य-विकास पर समग्रत: दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि उनकी कविता के आरंभिक काव्यात्मक और कलात्मक रुप पर उनका चिंतन क्रमश: हावी होने लगता है, उनके कवि को उनका दार्शनिक

रुप ग्रसित कर लेता है जिससे उनका परवर्ती काव्य लोकायतन आदि दुरुह काव्य का दृष्टांत प्रस्तुत करता प्रतीत होता है ।

9.2.3.2 साठोत्तर काव्य

साठोत्तर काव्य पंत जी के साठोत्तर काव्य में कतिपय नये आयाम विकसित हुए है और दृष्टि-दर्शना में भी नयी रंगत आयी है । इस विषय में डॉ. हरिचरण शर्मा का कथन हैं कि "इस युग में-साणेत्तर रचनाओं में किरण वीणा, शंखध्वनि' पौं फटने से पहले और 'पतझर एक भाव क्रांति में ही नहीं, गीत हंस, शंखध्वनि, समाधिता और आस्था में भी कवि ने आभ्यंतर और बाहय का न केवल, समन्वय किया है, अपितु जीवन सत्य की खोज भी की है । 'आस्था' इसी खोज का परिणाम है । पंत यथार्थ में

जिये तो सही, किंतु नवचेतनावादी शिखरों का आकर्षण सदैव उनके मन में रहा है । अत: जीवन-सत्ता का सत्य पाने के लिए पंत ने अपने साठोत्तर काव्य में जो सूक्ष्म चिन्तना प्रस्तुत की है, वह उन्हें स्वर्णक्षितिज का स्वर्णविहग प्रमाणित करती है । उनका भावुक एवं उन्मुक्त मन स्वर्णविहग की भाँति धरती की गंध लेता हुआ उस असीम आकाश में विचरण करता प्रतीत होता है जहाँ ऊर्ध्वमुखी नवचेतना के शिखर हैं। कवि के समग्र काव्य का मूल कथ्य भी यही है कि जब तक मनुष्य अंतश्चेतना का परिष्कार करके ऊर्ध्वमुखी नहीं हो जाता है तब तक मानवता का स्वप्न अधूरी लिपि की भाँति धुँधलाता रहेगा ।

9.3 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

9.3.1 प्रथम रश्मि का आना रंगिणि

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ।
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ-कहाँ हे बाल-विहगिनि ।
पाया, तूने यह गाना?

सोयी थी तू स्वप्न-नीड़ में,
पंखों के सुख में छिपकर,
झुम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी-से जुगनू नाना ।
शशि-किरणों से उतर-उतरकर,
भू पर कामरुप नभचर,
चूम नवल कलियों का मृदु मुख,
सिखा रहे थे मुसकाना ।

स्नेह-हीन तारों के दीपक,
श्वास-शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न-अवनि में,
तम ने था मण्डप ताना!
कूक उठी सहसा तरुवासिनी ।
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनि ।
बतलाया उसका आना?

निकल सृष्टि के अंध-गर्भ से,
छाया-तन बहु छाया-हीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर,

चला कुहुक, टोना-माना!
छिपा रही थी मुख शिश-बाला,
निशि के श्रम से हो श्री-हीन,
कमल-क्रोड में बन्दी था अलि,
कोक-शोक से दीवाना ।
मूर्च्छित थीं इन्द्रियाँ, स्तब्ध जग,
जड़-चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल,
साँसों का आना-जाना!
तूने ही पहले बहुदर्शिनी!
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का, नभ-चारिणि ।
गूँथ दिया ताना-बाना!
निराकार तम मानो सहसा,
ज्योति-पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत-जाल में,
धर कर नाम-रूप नाना!
सिहर उठे पुलकित हो दुम-दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर
झलका हास कुसुम अधरों पर,
हिल मोती का-सा दाना!
खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,
जगी सुरभि, डोले मधु-बाल,
स्पन्दन, कम्पन और नवजीवन,
सीखा जग ने अपनाना ।
प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ-कहाँ हे बाल-विहगिनि!
पाया यह स्वर्गिक गाना?

संदर्भ : 'प्रथम रश्मि' कविता छायावाद के प्रतिनिधि एवं प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत के 'वीणा' काव्य संग्रह में संकलित है । इसका रचनाकाल 1919 है । यह पंत की आरंभिक कविताओं में से एक है, जब वे प्रकृति के प्रति पूरी तरह आसक्त थे ।

प्रसंग : प्रस्तुत कविता प्रकृति के संबंध में पंतजी की जिज्ञासा का परिणाम है । यह उनके जिज्ञासु व्यक्तित्व का द्योतक है । पंत के लिए यह आश्चर्य और जिज्ञासा का विषय है कि उषा के आगमन के पहले ही पक्षी चहकने लगते है और अपने कलरव से उषा के आने की सूचना देते हैं । कौन ऐसी शक्ति और अंतदृष्टि है जिससे पक्षियों को प्रभात के आगमन का भान हो जाता है? पंत के लिए प्रकृति सदा रहस्यमयी रही है इसीलिए उसके संबंध में कौतूहल उत्पन्न करते तथा चिड़ियों से प्रश्न करते है । कवि विहंगिनी की इस चेतना पर विस्मित और विमुग्ध हैं कि सबसे पहले वही प्रथम-रश्मि के आने का अनुभव कैसे करती है ।

व्याख्या : कवि चिड़ियों से प्रश्न करता है कि प्रथम रश्मि के आने का भान कैसे हुआ तथा तूने जागरण का यह गाना कहाँ से पाया है? आगे के तीनों चरणों में रात्रि के वातावरण का चित्रण है । चिड़ियों को संबोधित करते हुए कवि का कथन है कि जब तुम स्वप्न-नीड़ में पंखों के सुख में छिपकर सो रही थी, तब तुम्हारे द्वार पर प्रहरी के रुप में जुगनु घूम रहे थे । शशि की किरणों के सहारे उतरकर कामरुप नभचर नयी कलियों का मुख चूमकर मुस्काना सिखा रहे थे यानी उसकी पंखुड़ियों को खोल रहे थे ताकि वे खिल जाएँ । तारे बुझ रहे थे, पेड़ के पत्ते निश्चल थे, सर्वत्र स्वप्न विचर रहे थे तथा पृथ्वी पर चारों ओर तम का मंडप तना हुआ था । ऐसी परिस्थिति में हे तरु वासिनी! तू सहसा कूक उठी । ऐ अंतर्यामिनी! प्रथम रश्मि (उषा, सवेरा) का आना तुम्हें किसने बतलाया?

आगे के चरण में निशिचरों के क्रिया-कलापों का संकेत है कि सृष्टि के अंधेरे-गर्भ से निकलकर छायातन और छायाहीन (मायावी) दुष्ट निशिचर षडयंत्र रच रहे थे, जादू-टोना कर रहे थे । रात्रि समाप्त होने की स्थिति में चंद्रमा थककर डूबने जा रहा था, कमल के कोश में भौंरा अभी बंद था और कोक पक्षी शोक में डूबा हुआ था, इंद्रियाँ मूर्च्छित अर्थात सुप्तावस्था में थीं, जड़-चेतन एकाकार हो गया था, अर्थात् दोनों में कोई अंतर नहीं दीखता था और सुप्त-शून्य विश्व की छाती में सिर्फ साँसों का आना-जाना जारी था । यानी निस्तब्ध निशा थी । ऐसी अवस्था में हे बहुदर्शिनी । सबसे पहले तूने ही जागृति का गाना गाया और सारे जगत में श्री-सुख सौरभ का ताना-बाना गूँध दिया । यानी अब तक जो स्तब्ध संसार था उसमें जागृति लाकर हलचल पैदा कर दी । उसमें समृद्धि ला दी । रात्रि में जड़-चेतन के एकाकार (अंधेरे के कारण) की स्थिति में होने के बाद प्रकृति के स्वरुप में बदलाव को सर्वप्रथम विहंगिनी ही पहचानती है, कवि उसकी दिव्य दृष्टि और पहचान की तीव्र शक्ति पर मुग्ध है ।

आगे की पंक्तियों (निराकारतम.... नाम रुप नाना) के दो अर्थ निकलते हैं । एक तो यह कि चिड़ियों की चहक के साथ रात्रि का निराकार अंधेरा अचानक ज्योतिपुंज में साकार हो उठा और सारा संसार बड़ी तेज गति से अनेक नाम धारण कर प्रकट हो उठा । यानी रात्रि के अंधेरे में सारा जगत एकाकार था, जड़-चेतन की अलग पहचान नहीं थी, किंतु सवेरा होते ही सारा संसार उठा और अपने नित्य कर्मो में प्रवृत्त होकर अनेक

रुपों में व्यक्त हुआ । इन पंक्तियों में भारतीय दर्शन के एक सिद्धांत की ओर संकेत है। जब ब्रहमा अपने अव्यक्त, निराकार रुप में रहता है तब समस्त जगत उसमें विलीन रहता है और जगत की अलग कर्म-सत्ता नहीं रहती । यह प्रलयावस्था होती है। जब जगत की सृष्टि होती है और ब्रहमा अपना साकार रुप धारण करता है तो सृष्टि की उत्पत्ति होती है । वही ब्रहमा जगत-जाल में अनेक रुपों और अनेक नामों में व्याप्त हो जाता है । यानी सृष्टिकर्ता सृष्टि में अनेक रुपों में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है । यहाँ भी कवि कविता के साथ दर्शन को जोड़ते हैं जो उनकी विशेषता है ।

'सिहर उठे... का सा दाना ।' अर्थात् दुमदल पुलकित हो गये, सोया हुआ समीर जागकर अधीर हो उठा, कुलों के अधरों पर हास्य फैल गया ओर ओस की बूँदे मोती के दाने के समान चमक उठीं । सभी के पलकें खल गयी, स्वर्ण छवि चारों ओर फैल गयी तथा संसार में स्पंदन, कंपन और नवजीवन फैल गया ।

विशेष :

1. यह नवजागरण की चेतना से समन्वित कविता है । जैसे रात्रि की समाप्ति का आभासा पहले चिड़ियों को होता है, उसी प्रकार हिन्दी में नवजागरण की चेतना को सबसे पहले छायावाद ने बड़े व्यापक रुप में ग्रहण किया ।
2. इस कविता में विपरीत वातावरण का चित्रण है-एक रात्रि का, दूसरा-ऊषा का । रात्रि के अंधेरे से सुबह के उजाले की ओर यात्रा कराती है यह कविता ।
3. इस कविता में पंतजी ने पक्षियों के लिए रंगिणी, बाल-विहंगिनी, तरुवासिनी, बहुदर्शिनी, नभचारिणी, संबोधनों का प्रयोग किया है । रंगिणी का अर्थ है रंगीली, विविध रंगों वाली । बाल-विहंगिनी शब्द का प्रयोग किया है । पंत की प्रवृत्ति कोमल शब्द-निर्माण की ओर रही है इसलिए उन्होंने रंगिणी, बाल-विहंगिनी आदि शब्दों के प्रयोग किये हैं ।
4. कामरूप नभचर को किसी ने पवन, किसी ने अप्सरा के रूप में विवेचित किया है। निराकार तम मानो सहसा वाले चरण मे प्रकृति चित्रण का दार्शनिक रूप मिलता है।
5. 'जगत जाल' दार्शनिक शब्दावली हैं । दर्शन के अनुसार संसार कार्य-व्यापार और संघर्षो का जाल है । दिन शुक होते ही आदमी उसमें उलझ जाता है ।
6. "कमल क्रोड़ में बंदी था अलि"-में कविप्रसिद्धि का प्रयोग हुआ है कि रात्रि के समय भ्रमर कमल के कोश में बंद रहता है ।
7. कविता छायावादी प्रगीत का उदाहरण है जिसमें कौतूहल की प्रधानता है ।
8. भाषा में परिष्कृति के साथ-साथ चित्रोमयता और लाक्षणिक सौन्दर्य प्रकट हैं।

9.3.2 शान्त स्निग्ध ज्योत्सना उज्जवल

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्जवल!

अपलक अनंत, नीरव भूतल!
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लांत, निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुन्तल!
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर,
चंचल अंचल सा नीलाम्बर!
साड़ी की सिकुडन सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर!
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर!
सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्सना रही विचर,
लो, पाले चढ़ी, उठा लंगर!
मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि हंसनि-सी सुन्दर,
तिर रही खोल पालों के पर!
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर!
कालाकांकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन!
नौका से उठती जल हिलोर!
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर!
विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अंतस्तल,
जिनके लघु दीपों का चंचल, अंचल को ओट किए अविरल,
फिरती लहरें लुक-छिप पल-पल!
सामने शुक्र की छवि झलमल तैरती परी-सी जल में कल,
रुपहरे कंचों में हो ओझल!
लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखलाता, मुग्धा-सा रुक-रुक!
अब पहुँची चपला बीच धार!
छिप गया चाँदनी का कगार!
दो बाँहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
आलिंगन करने को अधीर!
अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भू-रेखा सी अराल,

अपलक नभ नील नयन विशाल!
माँ के उर पर शिशु-सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप,
वह कौन विहग? क्या विकल कोक उड़ता, हरने निज विरह-शोक,
छाया की कोकी को विलोक!.
पतवार घुमा, अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार!
डांडों के चल करतल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार,
बिखराती जल में तार हार!
चाँदी के साँपों-सी रलमल नाचतीं रश्मियाँ जल में चल,
रेखाओं-सी खिंच तरल सरल!
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ -सौ शशि सौ-सौ उड्ड झिलमिल,
फैले फूले जल में फेनिल!
अब उथला सरिता का प्रवाह, त्यागी से ले ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह!
ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार!
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत, इस जीवन का उदगम,
शाश्वत है गति! शाश्वत संगम!
शाश्वत लघु लहरों का विलास!
हे जग जीवन के कर्णधार! चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार!
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता तुझको अमरत्व दान!

संदर्भ : प्रस्तुत 'नौका विहार' कविता छायावाद के प्रतिनिधि एवं सौंदर्यजीवी कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य-संग्रह 'गुंजन' में संग्रहित है । इसका रचनाकाल 1932 है । यह कालाकांकर के निवासकाल मे रचित पंत की, प्रकृति चित्रण की प्रसिद्ध कविता हैं।

प्रसंग : कालाकांकर नरेश ने बड़े आग्रह के साथ पंतजी को आमंत्रित किया था । एक लंबे समय तक पंतजी ने कालाकांकर में निवास किया जहाँ की प्रकृति से प्रभावित होकर उन्होंने अपने प्रकृति प्रेम तथा सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति को पैना बनाया । चांदनी रात में नौका-विहार की मधुर अनुभूति को कवि ने अनेक संश्लिष्ट चित्रों, रमणीय दृश्यों, बिम्बों और रुपकों में बाँधा है । नंददुलारे बाजपेयी के अनुसार 'विशेषकर नौका विहार में पंतजी प्रकृति के रुप-चित्रण की ओर आकृष्ट हुए हैं' ।

व्याख्या : रात्रि का समय है । चारों ओर शांत वातावरण है । शीतल चांदनी बिखरी हुई है । ऐसा लगता है, मानों आकाश अपलक नयनों से धरती के सौंदर्य को निहार रहा हो। धरती भी अपने शांत हृदय से आकाश के विस्तार और सौन्दर्य को देखने में मग्न है । ग्रीष्म ऋतु में गरमी के कारण क्षीणकाय गंगा नदी बालू की शय्या पर, थकाव से चूर होकर लेटी हुई है । गंगा किनारे दूर-दूर तक फैले बालू पर चाँदनी पड़ रही है । उस रेत में बिखरी छोटी छोटी सीपियाँ चाँदनी में मोती के समान चमक रही हैं, मानों ये सीपियाँ हँस रही हैं। सारा वातावरण चाँदनी की शोभा में मुस्कुरा रहा है । ऐसे रोमानी वातावरण में नौका का लंगर खोल दिया गया, उसकी पाले चढ़ाई गयी । नौका धीरे-धीरे मंथर गति से धारा में आगे बढ़ने लगी, ऐसा लगता था मानों कोई हंसिनी अपनी श्वेत पंखों को फैलाकर जल में विहार कर रही हो । इस कविता की चित्रमयता और बिम्बात्मकता अनुपम है ।

नौका-विहार की रमणीय और उल्लासपूर्ण अनुभूति का वर्णन करते हुए कवि अंत में दर्शन की ओर मुड़ता है-

शाश्वत इस जीवन का उदगम
शाश्वत है गति शश्वत संगम ।

यहाँ कवि भारतीय दर्शन के आशावादी दृष्टिकोण तथा जीवन-मृत्यु संबंधी वृत्तीय अवधारणा से प्रभावित है । भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन शाश्वत है, मृत्यु जीवन का अंत न होकर एक नये जीवन की शुरुआत है । गति शाश्वत है और संगम शाश्वत है । जिस तरह नौका-विहार के लिए प्रस्थान करके कवि पुन: उसी बिन्दु पर लौट आता है, उसी तरह मृत्यु के बाद भी प्राणी पुन: जीवन में लौटता है । अत: जीवन और मरण शाश्वत है, एक चक्रीय अवधारणा है ।

विशेष :

1. कविता का मूर्त विधान अत्यंत काव्यात्मक है । पूरी कविता में भाव, शब्द प्रयोग और संरचना में एक गहरी अन्विति और संश्लिष्टता है । इसमें कवि का प्रकृति प्रेम, कल्पनाशक्ति, संवेदनात्मकता, सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति और बिम्बात्मकता द्रष्टव्य हैं।
2. शुक्ल जी के अनुसार 'नौका-विहार का वर्णन अप्रस्तुत आरोपों से अधिक आच्छादित होने पर भी प्रकृति के प्रत्यक्ष रुपों की ओर कवि का खिंचाव सूचित करता है ।'
3. 'दिखलाता मुग्धा सा रुक-रुक' में उपमा अलंकार है ।
4. 'तन्वंगी गंगा तथा तापस बाला गंगा निर्मल में मानवीकरण अलंकार है । 'अपलक अनंत' में भी आकाश का मानवीकरण है जो अपलक नेत्रों से धरती के सौन्दर्य को निहार रहा है ।
5. अपलक अनंत, सैकत शय्या, शांत स्निग्ध, सिकता की सस्मित सीपी पर, मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर में अनुप्रास अलंकार है । सिहर-सिहर में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार हैं।

6. दुग्ध-धवल, तन्वंगी, श्रांत-क्लान्त, शुचि, दूरस्थ, कृश, प्रतीप आदि संस्कृत के तत्सम शब्द हैं।
7. इस कविता को पढ़ने से ऐसा लगता है कि पंतजी ने प्रकृति के रुप, रंग, आकार, गति, ध्वनि तथा उसकी एक-एक भंगिमा को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है ।
8. कविता प्रकृति चित्रण और मनोरंजन से आंरभ होकर अंत में दर्शन की गंभीरता में समाप्त होती है ।

9.3.3 भारत माता ग्राम वासिनी

भारत माता
ग्राम वासिनी!
खेतों में फैला दृग श्यामल
शस्य भरा जन जीवन आँचल
गंगा यमुना में शुचि श्रम जल
शील मूर्ति,
सुख-दुःख उदासिनी!
स्वप्न मौन, प्रभू पद नत चितवन,
होठों पर हँसते दुःख के क्षण,
संयम तप का धरती सा मन,
स्वर्ण कला,
भू पथ प्रवासिनी!
तीस कोटि सुत, अर्ध नग्न तन,
अन्न वस्त्र पीड़ित, अनपढ़, जन,
झाड़ फूस खर के घर आँगन,
प्रणत शीष
तरुतल निवासिनी!
विश्व प्रगति से निपट अपरिचित,
अर्थ सभ्य, जीवन रुचि संस्कृत,
रुढ़ि रीतियों से गति कुण्ठित,
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी!
सदियों का खण्डहर, निष्क्रिय मन,
लक्ष्य हीन, जर्जर जन जीवन,
कैसे हो भू रचना नूतन,
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!

पंचशील रत, विश्व शांति व्रत,
युग युग से गृह आँगन श्रीहत,
कब होंगे जन उद्यत जाग्रत?
सोच मग्न
जीवन विकासिनी!
उसे चाहिए लौह संगठन,
सुन्दर तन, श्रद्धा दीपित मन,
भू जीवन प्रति अथक समर्पण,
लोक कलामयि,
रस विलासिनी!

संदर्भ : 'भारत माता' कविता छायावाद के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य संकलन "ग्राम्या" में संकलित है । इसका रचनाकाल 1940 है ।

प्रसंग : 'ग्राम्या' संग्रह में कवि ग्राम्य-जीवन की ओर लौटता है । इस कविता में भारत माता की करुण और दयनीय स्थिति का चित्रण है । भारतमाता के स्थिति-चित्रण द्वारा भारतवासियों की दयनीय स्थिति का निदर्शन कराया गया है । कवि भारत को जगाकर, उसे एकताबद्ध करके विकास के रास्ते पर उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य देना चाहता है । कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा उसके अभावों के प्रति चिंता प्रकट हुई है ।

व्याख्या : इस कविता के प्रत्येक चरण में कवि ने भारतमाता के अनेक चित्र दिए है । गुलाम भारत का चित्र बड़ा ही दयनीय है । कवि ने भारत माता को एक असहाय, दुःखी, पीड़ित मानवी रुप में प्रस्तुत करके भारत की पोल खोल दी है । कवि का कथन है कि भारतमाता गाँवों में निवास करती है । खेतों की श्यामलता के रुप में उसकी आँखों की कालिमा फैली हुई है । फसल और जनजीवन से भरा उसका आँचल है । गंगा, यमुना में प्रवाहित जल मानों भारतमाता का पवित्र श्रम-जल है । वह शील की मूर्ति है, वह सुख-दुःख से उदासीन है ।

दूसरा चित्र इस प्रकार है कि उसके स्वप्न मौन हैं, प्रभुपद पर उसकी चितवन है, होठों पर दुःख विहँसता है, वह संयम-तप करती है तथा धरती सा उसका मन सहिष्णु और गंभीर है । वह स्वर्गीय कला के समान अद्वितीय है, किंतु भूमि पर निवास करती है । तीसरे चित्र में कवि का कथन है कि भारत माता के तीस करोड़ पुत्र (उस समय भारत की जनसंख्या तीस करोड़ थी) अर्धनग्न, अन्नवस्त्र विहीन, अनपढ़, झाड़-फूस के घर में रहते हैं और भारतमाता अपनी संतानों की यह अवस्था देख सिर झुकाये हुए पेड़ों के नीचे निवास करती है । तात्पर्य यह कि भारत अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाया । प्रकारांतर से तत्कालीन सरकार की अक्षमता की ओर संकेत है । वह अपने ही घर में गुलाम बनी बैठी है । अगले शब्द-चित्र में कवि का कथन है कि भारतमाता विश्व-प्रगति से अपरिचित है, यानी उसका दायरा सीमित है । वह अर्धसभ्य है, रुढ़ियों-अंधविश्वासों में फँसी हुई है, उसकी प्रगति का रास्ता रुद्ध है, वह राहु ग्रस्त

होते हुए भी शरद के चाँद के समान हंसी की चाँदनी बिखरेनी वाली है । यानी उसकी मुस्कान के भीतर उसका गहरा दुख छिपा हुआ है । उसका मन निष्क्रिय है, वह लक्ष्मी है, उसका जीवन जर्जर है तो नूतन भू की रचना कैसे हो सकेगी? उसने गीता जैसे ग्रंथ का सृजन कर उसके ज्ञान को विश्व में फैलाया है, किंतु आज वह ज्ञान से दूर है । पंचशील और विश्वशांति का संदेश फैलाना उसका व्रत है, वह युग-युग से घर-आँगन में उदास पड़ी है । वह इस बात से चिंतित है कि उसके निवासी कब जाग्रत होंगे, कब चिंतनशील होकर जीवन का विकास करेंगे । अंत में कवि का कथन है कि उसे लौह-संगठन (सुदृढ़ संगठन, एकता) चाहिए । सुंदर शरीर तथा श्रद्धा से दीपित मन चाहिए, लौकिक जीवन के प्रति अथक परिश्रम चाहिए।

राष्ट्रगीत के अन्य कवि जहाँ भारत के मात्र उज्ज्वल और प्रशंसात्मक पक्षों को रखते हैं, वहाँ 'भारत माता' कविता में पंत ने भारत के समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । इसमें कवि भारत की गौरवशाली परंपरा के प्रति अभिभूत नहीं होते, बल्कि तटस्थ भाव से उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और नैतिक पतन तथा उसके अंतविरोध को दर्शाते है । भारत की दुरावस्था के प्रति कवि पंत की गहरी चिंताएँ व्यक्त हुई हैं, इस दृष्टि से 'भारत माता' कवि की राष्ट्रीय चेतना और देश-प्रेम की कविता हैं।

विशेष :

1. 'भारत माता' कविता में भारतीय समाज की दुरावस्था का यथार्थ चित्रण है ।
2. कवि का कथन है कि भारत ने अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की भी पूर्ति नही कर पाया ।
3. 'विश्व प्रगति से निपट अपरिचित' में भारत के वैश्विक परिप्रेक्ष्य से जुड़ा न होने तथा उसकी सीमित स्थिति का संकेत है ।
4. 'पंचशील रत', 'विश्वशांति व्रत'-भारत का आदर्श रहा है ।
5. 'लौह संगठन'-दृढ़ एकता का प्रतीक है । कवि भारत में एकता के अभाव को देखते हुए लौह-संगठन की अनिवार्यता सिद्ध करता है । लौह संगठन से ही भारत का विकास हो सकता है तथा बाहरी शक्तियाँ भारत में हस्तक्षेप नहीं कर सकती हैं।
6. शस्य, शुचि, श्रीहत, शरदेन्दु, प्रणत आदि संस्कृत के तत्सम शब्द हैं ।
7. भारतमाता को प्रतीक बनाकर भारतीयों की दुर्दशा का चित्रण है । भारत के प्रति चिंता कविता को लोकजीवन और राष्ट्रीय भावधारा से जोड़ती है ।
8. यह एक गेय कविता है जिसमें प्रगति शैली का निर्वाह हुआ है ।

9.3.4 हाय । मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन?
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन!
स्फटिक-सौध में हो श्रृंगार मरण का शोभन,

नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रहें जीवित जन?
मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ छाया से रति!!
प्रेम अर्चना यही, करें हम रण को वरण?
स्थापित कर कंकाल, भरें जीवन का प्रांगण?
शव को दें हम रुप, रंग, आदर मानव का
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का?
युग-युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर
मानव के मोहांध हृदय में किये हुए घर ।
भूल गये हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के है मृतक, जीवितों का हैं ईश्वर!

संदर्भ : यह कविता प्रगतिशील कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य-संकलन 'युगांत' में संकलित है । इसका रचना-काल 1935 है ।

प्रसंग : यह 'ताज' कविता पंत की उन कविताओं में से एक है, जिनके आधार पर वे प्रगतिशील कवि के रूप में सामने आते हैं । इस कविता में पंतजी ताज को देखकर वाह-वाह नहीं करते । वे उसे कलात्मक और सौंदर्यवादी दृष्टि से न देखकर प्रगतिवादी और उपयोगितावादी दृष्टि से देखते है जिससे छायावाद से उनका अलगाव तथा एक नयी काव्यधारा से उनका जुडाव लक्षित होता है । कवि सुंदरम से सत्यं और शिवम् की भूमि पर कदम बढ़ाता दिखाई देता है ।

व्याख्या : छायावादी कवि पंत जहाँ प्रकृति, सौंदर्य तथा कलात्मक वस्तुओं के प्रति विशेष मोह रखते हैं, वहीं प्रगतिवाद से प्रभावित होने पर उनकी विचारधारा सहसा बदलती है, जिससे उनका सौंदर्यबोध बदलता है । वे कल्पना की ऊँचाई से यथार्थ की ठोस जमीन पर उतरते हैं । ताजमहल, जो प्रेम और सौंदर्य का प्रतीक है, वहाँ पंत की दृष्टि में वह सामंती युग की विलासप्रियता, जनता के शोषण और अमानवीयता का प्रतीक है । कवि आश्चर्य प्रकट करता हुआ कहता है कि जब जनजीवन एकदम निर्जीव और विषादयुक्त बना हुआ हो, तब मृत्यु का श्रृंगार किया जाता है, जबकि दूसरी ओर नग्न, भूखा, वासविहीन जिन्दा आदमी भटकने को विवश है । कवि उस मानव को धिक्कारता है जो जीवन से उदासीन होकर आत्मा का अपमान करता तथा प्रेत से प्रेम करता है । कवि पुन: सवाल करता है कि क्या प्रेम-अर्चना यही है कि हम मरण का वरण करें तथा जीवन के प्रांगण में कंकालों की स्थापना करें? यह ताज इस बात का सबूत है कि वहाँ शव को जीवित मानव का रंग, स्वरुप और आकार दिया जाता है तथा जीवित मानव को शव का कुत्सित चित्र बना दिया जाता है । ताज युग-युग से मृत आदर्शों का प्रतीक है । अंत में कवि का कथन है कि मृतकों के लिए मृतक (अर्थात् जो मृतक की पूजा करता हो वह भी मृत है ।) तथा जीवितों के लिए ईश्वर है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि "ताजमहल के कला-सौंदर्य को देख अनेक कवि मुग्ध हुए हैं, पर करोड़ों की संख्या में भूखी मरती जनता के बीच ऐश्वर्य विभूति के उस विशाल आडंबर के खड़े होने की भावना से क्षुब्ध होकर युगांत के बदले हुए कवि पंतजी कहते हैं कि हाय! हाय मृत्यु का... बना दे शव का ।' कुल मिलाकर 'ताज' कविता छायावादी संस्कारों से मुक्त, प्रगतिवादी सोच और संवेदना की कविता है । इसमें सौंदर्य-द्रष्टा छायावाद कवि पंत समाजदृष्टा और राष्ट्रदृष्टा बन जाते हैं । वे यह ज्वलंत प्रश्न छोड़ जाते हैं कि जीवित मानव की हित-चिंता किये बिना मृतक के आकर्षक स्मारक बनाने से क्या लोक-कल्याण संभव है?

विशेष :

1. इस कविता में दो विपरीत स्थितियों को सामने रखकर एक का समर्थन तथा दूसरे की भर्त्सना की गई है ।
2. कवि की दृष्टि में ताज विलासिता और शोषण का प्रतीक है । ताज द्वारा जीवित मानव का उपहास उडाना तथा मृतक की पूजा करना सामाजिक नैतिक दृष्टि से अनुचित है ।
3. कविता में विचारपक्ष की प्रधानता है । कवि की मानवतावादी विचारधारा और जनपक्षधरता व्यक्त हुई है ।
4. 'मृतको के हैं मृतक्' में व्यंग्य है कि मृतक की कब्र पर आलीशान महल बनाने वाला भी मृतक ही है । उसकी नैतिकता मर चुकी है, क्योंकि वह जीवित की उपेक्षा और मृतक ही है और मृतक की पूजा करता है । 'जीवितों का है ईश्वर' - जीवित व्यक्ति ईश्वर के भरोसे है ।
5. कविता में सामाजिक न्याय की बात उठाई गई है । इसमें प्रश्नों और आश्चर्य चिह्नों की भरमार है ।
6. कवि ने जनजीवन में व्याप्त दुःख-दैन्य का मूल कारण सामंतों और बादशाहों की विलासप्रियता को माना है ।
7. विषण्ण, स्फटिक, सौध, क्षुधातुर आदि संस्कृत के तत्सम शब्द हैं ।
8. 'ताज' पंत के बदले हुए सौंदर्यबोध और बदली हुई यथार्थदृष्टि का परिचय देती है । इस कविता को छोड़कर पंत का समग्र मूल्यांकन असंभव है ।

9.4 विचार संदर्भ और शब्दावली

रंगिणी-रंगोवाली, रंगीली । जगत-जाल-दर्शन में संसार को कार्य-व्यापारों का जाल कहा गया है । छायातन-छाया के समान शरीरवाला, मायावी, राक्षस । कमल-कोड़ में बंदी था अलि-एक कवि-प्रसिद्धि, जिसके अनुसार भ्रमर रात्रि मे कमल के कोश में बंद रहता है । मुग्धा-एक नायिका, जो यौवन को प्राप्त हो चुकी हो किंतु उसमें कामचेष्टा न हो तथा जो बहुत कोमल ओर लज्जाशील हो । कोक-चकवा पक्षी । लंगर-लोहे को एक बहुत बड़ा काँटा जिसका व्यवहार नावों या जहाजों को एक ही जगह पर ठहराये रखने के

लिए किया जाता है । डांड-नाव खेने का बल्ला । विषण्ण-विषादयुक्त। सौध-एक बहुमूल्य सफेद पत्थर जो पारदशी होता है । सौध-राजमहल । ज्ञान मूढ़/गीता प्रकाशिनी-यह भारतमाता के लिए कहा गया है कि भारत ने विश्व भर में गीता का ज्ञान फैलाया किंतु आज वह ज्ञान मूढ़ है यानी भारत में निरक्षरता है ।

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सुमित्रानंदन पंत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ।
2. पंत के काव्य-विकास पर संक्षेप में लिखिए ।
3. विभिन्न काव्यधाराओं के संदर्भ में पंत के काव्य का मूल्याकंन कीजिए ।
4. 'पंत और पल्लव'-पर संक्षेप में एक टिप्पणी लिखिए ।

9.7 संदर्भ ग्रंथ

1. सुमित्रानंदन पंत-रश्मिबंध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1988
2. संपादक दूधनाथ सिंह - तारूपथ-लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण- 1995
3. पंत-पल्लव, राजकमल प्रकाशन-, नई दिल्ली ।
4. पंत-ग्राम्या, भारती भंडार, इलाहाबाद ।
5. पंत - लोकायतन
6. पंत-कला और बूढ़ा चाँद

♦♦♦

इकाई 10 सुमित्रानंदन पंत के काव्य का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष

इकाई की रुपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 काव्य-संवेदना

- 10.2.1 काव्यानुभूति
- 10.2.2 वैयक्तिता
- 10.2.3 कल्पनाधिक्य
- 10.2.4 प्रकृति-चित्रण
- 10.2.5 प्रेम और सौंदर्य का सूक्ष्मीकरण
- 10.2.6 वेदना और निराशा
- 10.2.7 रहस्यात्मकता
- 10.2.8 यथार्थ चित्रण
- 10.2.9 प्रगतिशील दृष्टि : नारी भावना
- 10.2.10 जर्जर परंपराओं का ध्वंस
- 10.2.11 दार्शनिकता
- 10.2.12 राष्ट्रीयता
- 10.2.13 मानवतावादी चेतना

10.3 अभिव्यंजना पक्ष

- 10.3.1 काव्यरुप
- 10.3.2 काव्यभाषा-शैली
- 10.3.3 अलंकार
- 10.3.4 बिम्ब-योजना
- 10.3.5 प्रतीक-विधान
- 10.3.6 लय और छंद विधान

10.4 सारांश

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

यह इकाई सुमित्रानंदन पंत की रचनाशीलता तथा उनके काव्य के भाव और शिल्प पक्ष से संबंधित है । इस इकाई से आप-

- छायावाद और छायावादोत्तर हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि में सुमित्रानंदन पंत की काव्य संवेदना से साक्षात्कार कर सकेंगे ।
- पंत की कविता के भावपक्ष और कलापक्ष का सोदाहरण परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- रचनाकार के बुनियादी सरोकारों से परिचित होने के साथ उनके समकालीन अन्य कवियों से भिन्नता बता सकेंगे ।
- छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता जैसे काव्यादोलनो से पंत की सहमति-असहमति को जान सकेंगे ।
- पंत की काव्य प्रेरणा, काव्य स्वभाव, काव्यदृष्टि और काव्य के उद्देश्यों को जान सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

पंतजी छायावाद के प्रतिनिधि और प्रकृति के सुकुमार कवि हैं । भाषा-शिल्प को तराशने के कारण उन्हें शब्द शिल्पी कहा जाता है । प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से भी उनके गहरे सरोकार रहे हैं । पंत की काव्य संवेदना निरंतर विकासशील रही है । उसमें जीवन के विविध पक्ष चित्रित हुए है । प्रकृति प्रेम से अपनी यात्रा आरंभ कर, विविध काव्यांदोलनों से रचना के स्तर पर जुड़ते हुए, विभिन्न दर्शनों से अपने सरोकार बनाते हुए वे रचनारत रहे हैं । पंत की विशिष्टता इसमें हैं कि उन्होंने कविता को दर्शन की पृष्ठभूमि प्रदान की, जिसमें कविता भावुकता तक सीमित न रहकर दर्शन की ठोस जमीन पर अवस्थित हुई । यद्यपि दार्शनिकता के चलते उनकी कविता की आलोचना भी हुई, तथापि पंत उस आलोचना की परवाह किये बगैर काव्यरचना में प्रवृत्त रहे । उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दर्शनों का गहरा अध्ययन करके अपने काव्य-चिंतन को समृद्ध किया । पंतजी एक स्वस्थ जीवन और समाज दर्शन की तलाश में अनेक दर्शनों के संपर्क में आते हैं और उनकी प्राय: प्रत्येक रचना एक नये मोड़, एक नयी रचनादृष्टि का सबूत देती है । पंतजी प्रकृति से जितनी गहराई से जुड़ते हैं, उतनी ही गहराई से मानव, समाज और उसकी समस्याओं से भी । अत: उनके काव्य में एक संतुलन है । वे अपनी पूर्ववर्त्ती कमियों को परवर्ती रचनाओं से पूरा करते हैं और उनकी प्रत्येक रचना एक नयी संभावना लेकर आती हैं । कविता के भावपक्ष और कलापक्ष के क्षेत्र में वे निरंतर प्रयोग करते रहे हैं । स्वच्छंदतावाद से लेकर प्रगतिवाद की प्रतिबद्धता दोनों उनमें मिलती है । उनकी कविता के आधार पर छायावाद और प्रगतिवादी कविता के मानदंड स्थापित किये जाते हैं ।

10.2 काव्य-संवेदना

10.2.1 काव्यानुभूति

काव्यानुभूति का संबंध काव्य के अनुभूति पक्ष से हैं । कविता के मूलत: दो पक्ष होते हैं- अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष । इसी को भाव पक्ष और शिल्पपक्ष भी कहते

हैं। अनुभूति पक्ष के अंतर्गत कविता में व्यक्त कवि के भाव, संवेदना, विचार आदि आते हैं । भाव विचार और संवेदना अमूर्त होते है जो कविता में शिल्प के माध्यम से प्रकट होते हैं । अत: अनुभूति कविता की प्राथमिक वस्तु है और इसी अनुभूति पक्ष को कविता का मुख्य शील माना जाता है । अनुभूति के अंतर्गत कवि का इन्द्रिय बोध, भावबोध और विचार बोध की चर्चा होती है । इन्द्रियों के माध्यम से बाहरी चीजों का ज्ञान होता है, फिर वे मन के भीतर स्थित भाव को प्रभावित करते हैं । विचारबोध का संबंध हमारे चिंतनजगत से हैं । विचार बोध के द्वारा एक रचनाकार जीवन-जगत की समस्याओं के बारे में सोचता और उसका समाधान प्रस्तुत करता है । अत: इन्द्रिय बोध, भावबोध और विचारबोध की संश्लिष्ट रुप ही किसी कवि की काव्यानुभूति का निर्माण करता है । जिस कवि का यह तीनों पक्ष जितना व्यापक होगा, उसकी काव्यानुभूति उतनी ही समृद्ध होगी । पंतजी हिन्दी के एक ऐसे ही कवि हैं जिनका अनुभूति पक्ष बड़ा ही व्यापक और समृद्ध है । उनकी कविता का अनुभूति पक्ष या भावपक्ष इस प्रकार है-

10.2.2 वैयक्तिकता

आधुनिक युग में पूँजीवादी सभ्यता और औद्योगिकीरण ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया था जिसमें व्यक्ति स्वकेन्द्रित होने लगा । वैयक्तिकता छायावाद की एक बुनियादी विशेषता रही है । द्विवेदी युग की प्रबल सामाजिकता, उपयोगितावादी दृष्टि और रूढ़ नैतिकता के विरोध में छायावादी कवियों ने वैयक्तिक चेतना का उद्घोष किया । प्रबल सामाजिकता के भीतर उसका दबा हुआ 'मैं' अपनी अभिव्यक्ति के लिए मचल उठा । प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी ने अपने वैयक्तिक सुख-दुःख आदि मनोभावों का मार्मिक चित्रण किया । पंतजी ने ग्रंथि की कविताओं में निजी अनुभूतियों का चित्रण किया है । पंत तथा अन्य छायावादी कवियों ने अपने व्यक्तित्व के प्रति विशेष सजगता दिखाई है। उन्होंने अपनी खोई हुई पहचान को कविता के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया, इसलिए छायावाद का अस्मिता की खोज का काव्य कहा जाता है । अत: उस वैयक्तिकता को निषेधात्मक तथा त्याज्य इसलिए नही माना जाना चाहिए कि उसमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा है और उस व्यक्ति से वे समाज और अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक जाकर विश्व मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हैं।

10.2.3 कल्पनाधिक्य

दर्शन में जो दृष्टि है, विज्ञान में जो बुद्धि है, साहित्य में वही कल्पना है । कल्पना को साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है । कल्पना के द्वारा ही एक रचनाकार अपनी रचना में नयी-नयी संभावनाओं, नये-नये भावों और विचारों को प्रस्तुत करता है, जिससे रचना में नवीनता आती है तथा पिष्टपेषण का परिहार होता है । सभी छायावादी कवि कल्पनाजीवी थे । चूँकि वे वर्तमान से असंतुष्ट थे और उनका भविष्य भी अंधकारमय था, जहाँ आशा की कोई किरण नहीं दिखाई देती थी, इसलिए वे

कल्पना में उड़ान भरते और काल्पनिक तथा मनोवांछित संसार की सर्जना करते । नामवर सिंह का कथन है कि "कल्पना' के द्वारा ही उसमें सार्वभौम भावना आयी । अपनी काल्पनिक उड़ान में कवि ने अनुभव किया कि वह संपूर्ण विश्व को अपनी बाँहों में बाँध सकता है । जैसे छोटा-सा फूल अपनी सुरभि से संपूर्ण व्योम को बाँध लेने का हौसला रखता है, उसी तरह छायावादी कवि ने भी अपनी कल्पना से अखिल चराचर को समेट लेने का सुख अनुभव किया' (छायावाद) । पंत स्वीकारते हैं कि "मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ (आधुनिक कवि कवि की भूमिका) । पंत की 'अप्सरी', 'अनंग', 'प्रथम रश्मि', 'बादल' आदि कविताओं में कल्पना की प्रधानता है । 'अप्सरी' कविता में पंत की कल्पना का स्वरुप द्रष्टव्य है -

तुहिन बिंदु में इन्दु रश्मि सी सोई तुम चुपचाप
मृदुल शयन में स्वप्न देखती निज निरुपम छवि आप ।

कल्पना का ही चमत्कार है कि छाया दमयंती-सी, तारे गगन के उर में घाव से प्रतीत होते है और स्याही की बूँद नक्षत्र का आभास कराती है । कल्पना के मूलत: दो रुप मानते गए हैं-विधायक कल्पना तथा ग्राहक कल्पना । विधायक रचनाकार के पास होती है और ग्राहक कल्पना पाठक या आलोचक के पास । पंत अपनी विधायक कल्पना के लिए प्रसिद्ध हैं । उन्होंने इस कल्पना का इतना अधिक प्रयोग किया है कि कहीं-कहीं उनकी कल्पना वास्तविकता से बहुत दूर चली गयी है।

पंत कोमल कल्पना के कवि मानते जाते हैं, इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने कोमल स्वभाव के अनुकूल ही कोमल विषयों का चयन किया तथा भाषा की कोमलता पर बल दिया । आंरभिक कविताओं में यही प्रवृति दिखाई देती है । अत: विषय-चयन, नारी-सौंदर्य और प्रकृति के कोमल रुपों के चित्रण, वस्तु वर्णन में कोमलता, भाषा, बिम्ब, अलंकार तथा छंद प्रयोग में कोमलता के कारण उन्हें कोमल कल्पना का कवि कहा जाता है, जो उपयुक्त है । कल्पना उनकी सबसे प्रिय वस्तुओं में से है इसलिए वे पल्लव को "कल्पना के ये विह्वल बाल' की संज्ञा देते हैं । बच्चन के अनुसार- "पंतजी कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं, इच्छा के गायक हैं-वासना, तीव्रतम इच्छा के नहीं ।' यह सही है कि कल्पना पंत-काव्य की बहुत बड़ी शक्ति है । इसी के चलते उन्होंने लोकजीवन ओर दर्शन की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की है । वे कल्पना से इतने अभिभूत हैं कि उसे ईश्वरीय प्रतिभा का अंश मानकर उसे ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य मानते है । नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन है- "कल्पना ही पंत जी की कविता की विशेषता, उसके आकर्षण का रहस्य है । यही उनकी विविध बहुमुखी रचनाओं का आधार, उनमें रमणीयता का विस्तार करती है । कल्पना केवल शैली में ही नहीं, काव्यविषय में भी है.... कल्पना ही पंत जी की कविता का मेरुदंड, उसकी काव्यसृष्टि का मापदंड है । कोरी कल्पना की बाल्य-सुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यंत तल्लीन और गहन कल्पना-अनुभूतियों के चित्रण में पंतजी का विकासक्रम देखा जा सकता है ।'

पंतकाव्य में अतिशय कल्पना और भावुकता तो है, किंतु उसके बीच में विचार तत्व भी झलक मारता है, जैसे 'नौका-विहार' की अंतिम पंक्तियाँ तथा 'परिवर्तन' जैसी कविता । पंत की यह विचारात्मकता उनके परवर्ती काव्यों में क्रमश: गहराती जाती है और कविता की कलात्मकता को क्षतिग्रस्त भी करती है । लेकिन आरंभिक कविताओं में विचार तत्व भावना की तरलता में घुलकर आते हैं, जबकि परवर्ती कविताओं में विचार तत्व भावधारा में स्तंभ की तरह टिके होते हैं । इतना स्वीकार्य है कि प्रकृति-सौन्दर्य और गहन चिंतन-मनन ने उनकी कल्पना को धार दी ।

10.2.4 प्रकृतिचित्रण

पंत का प्रकृति के साथ गहरा जुडाव रहा है । पल्लव काल में तो वे लिखते हैं-

छोड़ दुमों की शीतल छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
वाले! तेरे बाम जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन? और
छोड़ अभी से इस जग को ।

पंतजी ने प्रकृति के अत्यंत कोमल और उदार चित्र खींचे हैं इसलिए उन्हें प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है । बचपन से ही वे प्रकृति से विशेष प्रभावित रहे । उनकी स्वीकारोक्ति है कि- "कविता लिखने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है ।' अंग्रेजी स्वच्छंदतावादी कवियों की तरह उन्होंने प्रकृति को जड़ न मानकर चेतन, संजीव माना है तथा प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण किया है । उनका यह भी कथन है कि "उषा, संध्या, फूल, कोंपल, कलरव, मर्मर, ओसों के वन और नदी-निर्झर मेरे एकाकी के किशोर मन को सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं..... ।

पंत की कविता में प्रकृति चित्रण की सभी प्रणालियाँ मिलती हैं-

1. **आलंबन रूप में-**

जहाँ प्रकृति मनुष्य के भावों का आलंबन बनती है-

उड़ गया अचानक लो भूधर
फड़का अपार पारद के पर
स्व शेष रह गये है निर्झर
है टूट पड़ा भू पर अंबर ।

2. **उद्दीपन रूप में-**

जहाँ प्रकृति मन के भावों को उद्दीप्त करती है-

देखता हूँ जब उपवन, पियालों में फूलों के
प्रिय, भर-भर अपना यौवन, पिलाता है मधुकर को ।

3. **आलंकारिक रूप में-**

प्रेम-कंटक से अचानक विद्ध हो
जो सुमन तरु से विलग है हो चुका ।

4. मानवीकरण रूप में-

इसमें प्रकृति मानव की तरह क्रिया-कलाप करती दिखाई देती है जैसे-
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रान्त-क्लान्त निश्चल

5. दूती के रूप में-

इसमें प्रकृति दूती या संदेशवाहक के रु में चित्रित होती है । जैसे-
सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के प्रिय जीवनधर ।

6. दार्शनिक रूप में-

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उदगम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम ।

10.2.5 प्रेम और सौंदर्य

प्रेम और सौंदर्य साहित्य के शाश्वत विषय रहे हैं । छायावाद में स्थूलता से ऊपर उठकर प्रेम और सौंदर्य का सूक्ष्मीकरण मिलता है । पंत-काव्य का बीज प्रेम और सौंदर्य की जमीन पर अंकुरित हुआ है । आरंभ में वे प्रकृति-सौंदर्य से विशेष प्रभावित थे और प्रकृति सौंदर्य की तुलना में मानव सौंदर्य को हेय मानते थे ।

अत: पंत की सौंदर्य चेतना प्रकृति सौंदर्य से मानव-सौंदर्य की ओर विकसित हुई है । नंददुलारे बाजपेयी के अनुसार- "प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म मानसिक विवृत्ति में पंतजी की कल्पना समर्थ हुई है और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान भी लेने चली है।' (पंत सहचर) । उच्छवास, आँसू, ग्रेंथि पंत का प्रेम काव्य है जिसमें वियोग वर्णन फी प्रधानता है 1 उच्छवास की बालिका पंत के मन में मे संबंधी जिज्ञासा पैदा करती है और कवि वियोग का दुःख भोगता है । ग्रंथि उनका प्रेम काव्य है । ग्रंथि और कुछ नहीं, प्रेम की ग्रंथि है जो कवि के मन में बन गई है । इस तरह पंत ने प्रकृति प्रेम और मानव प्रेम तथा प्रकृति सौदर्य और मानव सौंदर्य दोनों के चित्रण किये हैं । नारी के बाहरी सौंदर्य के साथ 'उसके आंतरिक सौंदर्य का भी उन्होंने सूक्ष्म चित्रण किया हैं ।

10.2.6 वेदना और निराशा

छायावादी कविता का उत्स वेदना और करुणा है । छायावाद में वेदना को काव्यात्मक और कलात्मक रुप मिला । छायावाद में वेदना की प्रधानता का एक कारण यह है कि सभी छायावादी कवियों का वैयक्तिक जीवन अभावग्रस्त तथा वेदना से पूर्ण रहा ।

प्रसाद क्षय से पीड़ित और विधुर बने, निराला भी कम उम्र में विधुर बन गये, पंत आजीवन कुँवारे रहे तथा महादेवी का दाम्पत्य जीवन दुःखमय रहा । वेदना के व्यक्तिगत कारणों के अलावा युगीन कारण भी थे । युगीन परिस्थितियों में कवियों की इच्छाओं का पूर्ण न होना तथा राष्ट्रीय आंदोलन की असफलता भी कारणस्वरुप थी । पंत ने वेदना को काव्य का उदगम स्थल मानते हुए कहा है -

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान ।

पंत की कविता में वेदना और निराशा का चित्रण अनेक मिलता है । उच्छवास, आँसू ग्रंथि तमाम कविताओं में उनकी इसी वेदना को वाणी मिली है, लेकिन वेदना से एक मधुर संगीत भी फूटता है-

कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है?

10.2.7 रहस्यात्मकता

छायावाद में रहस्यात्मकता की प्रवृत्ति मिलती है । अंतर्मुखता के कारण छायावादी कवि रहस्यवाद की ओर प्रवृत हुए थे । रहस्यवाद एक ऐसी मानसिक अवस्था है, जिसमें साधक उस असीम सत्ता के साथ भावना के स्तर पर एकात्म अनुभव करता है । शुक्ल जी ने रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ मानी हैं-जिज्ञासा, विरह और मिलन । छायावाद में भी अनेक जगह परोक्ष सत्ता के साथ जिज्ञासा तथा विरह मिलन की अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं, इसलिए शुक्लजी ने तो छायावाद को रहस्यवाद ही कह डाला। पंत में रहस्यवाद की पहली अवस्था-जिज्ञासा के दर्शन होते है । 'मौन निमंत्रण' कविता इसका सटीक उदाहरण है जिसमें वे प्रकृति में एक अदृश्य सत्ता का संकेत पाते हैं-

स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन!

किंतु गौरतलब है कि पंत का रहस्यवाद मध्यकालीन कवियों का रहस्यवाद नहीं है । इसमें रहस्यवाद जिज्ञासा की सीमा तक ही आ पाया है ।

10.2.8 यथार्थ चित्रण

पंत जी आंरभ में रोमानी और सौंदर्यजीवी कवि के रूप में अपनी पहचान बनाई, किंतु उत्तर छायावादकाल में वे यथार्थवादी कविताओं की रचना करते है । 'ताज', 'दो लड़के'. 'भारतमाता' आदि उनकी ठोस यथार्थवादी कविताएँ हैं । 'ताज' कविता में वे मानव जीवन में व्याप्त गरीबी, दैन्य के लिए जिम्मेदार तत्वों पर आक्रोश व्यक्त करते तथा ताज को सामंतों की विलासिता का प्रतीक मानते हैं । 'दो लड़के में वे शोषित पासी के दो नंग-धड़ंग बच्चों के चित्र खींचते हैं । छायावाद की अतिशय कल्पना से ऊबकर पंतजी यथार्थोन्मुखी बने । उन्होंने महसूस किया कि अतिशय कल्पना मानवजीवन का कल्याणकारी तत्व नहीं है, इसलिए वे मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर क्रांति की बात करते हैं ताकि समाज में परिवर्तन आये और शोषितो, दलितों के प्रति न्याय हो सके। युगान्त में वे क्रांति का आह्वान करते है । वे श्रमिको के शोषण से अधिक दुःखी हैं । वे श्रमिक के श्रम को लोकक्रांति का अग्रदूत कहते हैं ।

10.2.9 प्रगतिशील : दृष्टि नारी भावना

पंत के नारी के बाहरी और आंतरिक सौंदर्य का चित्रण किया है । नारी के साहचर्य को 'संग में पावन गंगा-स्नान' कहकर वे नारी-सौंदर्य के साथ पवित्रता को भी महत्व देते हैं। उन्होंने नारी को वासना से मुकत कर उसे विशिष्ट गरिमा प्रदान की तथा उसे देवि, **माँ, सहचीर, प्राण से संबोधित किया-**

तुम ही हो स्पृहा, अश्रु औ हास
सृष्टि के उर की साँस
तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अंतर्धान
देवि! माँ! सहचरि! प्राण!

पंतजी को एहसास है कि भारतीय नारी सदियों से दलित पीड़ित रही है । इसलिए वे नारी मुक्ति के आकांक्षी है, जो नारी सामाजिक-नैतिक बंधनों में जकड़ी हैं । पुरुष-प्रधान समाज ने उसे युगों से गुलाम बनाकर रखा, उसके प्रति अपनी क्रांतिकारी भावना **व्यक्त करते हुए पंतजी कहते हैं-**

मुक्त करो नारी को, चिर बंदिनी नारी को
युग-युग की बर्बर कारा से, जननी, सती प्यारी को

10.2.10 जर्जर पंरपराओं का ध्वंस

पंत प्रगतिशील दृष्टिसंपन्न रचनाकार है । वे नयी व्यवस्था के पोषक है । रुढ़ियों और जर्जर पंरपराओं को उन्होंने समाज-विकास में बाधक माना है । युगान्त युगवाणी में उनकी यह क्रांति-भावना मुखर रूप में व्यक्त हुई है । युगान्त में वे पुरातनता, राग-द्वेष, जातिवर्ण, रुढ़ियों आदि के ध्वंस की कल्पना करते हैं-

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्त्रस्त ध्वस्त! हे शुष्क शीर्ण!
हिमताप पीत, मधुवात भीत,
तुम वीत रगा, जड़ पुराचीन!

इसी तरह वे कोकिल से आग्रह करते है कि वह अपने विद्रोही गान से अग्नि बरसाकर **तमाम प्रकार के भेदों को नष्ट कर दे-**

गा कोकिल वरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन ।

10.2.11 दार्शनिकता

पंतजी की दार्शनिक विचारधारा भी निरंतर गतिशील, परिवर्तनशील रही है, जिसके कारण वे आलोचना के पात्र बने हैं । अद्वैतवाद, गांधीदर्शन मार्क्सवाद, अरविन्द दर्शन-सबसे उनका जुडाव रहा है । वे तय नहीं कर पाये कि कौन-सा एक दर्शन मानवहित के उपयुक्त है । कविता और दर्शन का द्वंद्व उनके साथ लगा रहा । कविता और दर्शन की आपाधापी में उनका सर्जक रुप कहीं निखरा, तो कहीं आलोचित हुआ, किंतु यह स्पष्ट है कि कविता और कला से अपनी यात्रा आंरभ करने वाले पंत अंत में दार्शनिकता की शरण में जाते हैं । पंत अद्वैतवादी दर्शन से प्रभावित होकर संपूर्ण दृष्टि से एक ही चेतना को व्याप्त देखते हैं तथा जीव ब्रहमा को एक समान मानते हैं-

एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास ।

पंतजी मार्क्सवाद से प्रभावित होकर भी गांधीवाद से रिश्ता बनाए रखते हैं । वे गांधी की सत्य-अहिंसा को भी आवश्यक मानते हैं । बापू के प्रति कविता गांधीवाद के प्रति उनके झुकाव का द्योतक है ।

10.2.12 राष्ट्रीयता

छायावादी कविता तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जिसे पंत जी ने स्वीकार किया है, किंतु पंत में राष्ट्रीयता का वह मुखर रुप नहीं मिलता जो प्रसाद तथा निराला में मिलता है । पंत में राष्ट्रीय भावधारा दूसरे रूप में व्यक्त हुई है । 'भारतमाता' कविता में पंत भारत राष्ट्र की दयनीय स्थिति पर गहरी चिंता व्यक्त करते है, जिसमें उनकी राष्ट्रीय भावना व्यक्त हुई है । वे भारत को विकास की धारा से जोड़कर उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य देना चाहते हैं, किंतु स्थिति यह है कि उसका सारा गौरवशाली अतीत ध्वस्त हो चुका है, गीता के ज्ञान को फैलाने वाला भारत आज ज्ञान विमूढ़ है । वे भारत का वर्तमान चित्र इस रुप में प्रस्तुत करते हैं-

तीस कोटि संतान नग्न तन
अर्ध क्षुधित, शोषित निरस्त्र जन
मूढ़ असभ्य अशिक्षित निर्धन,

नत मस्तक / तक तल निवासिनी ।

पंत ने 'भारत गीत' कविता में भारत के भूगोल का परिचय देते हुए उसकी प्रशस्ति गायी है ।

10.2.13 मानवतावादी दृष्टि

छायावादी कविता पर भारतीय सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद का गहरा प्रभाव पड़ा, इसके अलावा उस पर नवजागरण कालीन चिंतकों-रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गांधी और रवींद्रनाथ की मानवतावादी विचारधारा का विशेष प्रभाव पड़ा । यही कारण है कि छायावाद में जहाँ वैयक्तिक चेतना और व्यक्तिक की अस्मिता का उद्घोष है, वहीं उसमें मानवतावादी चेतना का चित्रण भी है । इस मानवतावाद की परिणति विश्बंधुत्व में होती है। प्रकृति के पुजारी पंत मानव-सौन्दर्य पर ध्यान केंद्रित करते हैं-

सुंदर है विहग सुमन. सुंदर,
मानव तू सबसे सुन्दरतम
निर्मित सबकी तिल-सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम ।

पंत के मानवतावाद की विशेषता यह है कि वे वर्ग, वर्ण और देश की सीमाओं से ऊपर उठकर मनुष्यमात्र को सच्ची आत्मा से अपनाते है, यही वह विशिष्टता है जो छायावाद पर लगे वैयक्तिकता के दाग को धो डालती है । पंत लिखते हैं-

आज मनुज को खोज निकालो
जाति-वर्ण संस्कृति समाज से,
मूल व्यक्ति को फिर से चालो
अखिल अवनि में रिक्त मनुज को
केवल मनुज जान अपना तो ।

विश्वबंधुत्व और मानव-प्रेम को वे स्वर्ग का तथा मानव को ईश्वर का पर्याय मानते हैं- मनुज प्रेम से जहाँ रह सके मानव-ईश्वर / और कौन सा स्वर्ण चाहिए मुझे-धरा पर? पंत मानव और उसकी शक्ति में आस्था रखते हैं ।

10.3 अभिव्यंजना पक्ष

कविता का अनुभूति पक्ष जितना महत्वपूर्ण होता है, उतना ही उसका अभिव्यंजना पक्ष भी । दोनों एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती । कविता का अनुभूति पक्ष अमूर्त होता है जिसे अभिव्यंजना पक्ष आकार देता है । यह गौरतलब है कि भावपक्ष ही कविता का निर्धारक और आधारभूत तत्व है तथा भाव के अनुरुप शिल्प निर्धारित होता है । पंत का अनुभूति पक्ष जितना सौम्य और सुंदर है, उतना ही सुंदर और पुष्ट उनका अभिव्यंजना पक्ष भी है जो सधे हुए हाथों का परिचय देता है । उनके अभिव्यंजना पक्ष पर नंददुलारे वाजपेयी जी का कथन है कि उनकी नागरिक रुचि का 'उनके वर्णित विषय पर ही नहीं, उनके शब्द संगीत,

छंद-चयन और भाषाशैली पर भी प्रकाश पड़ जाता है । उनकी कल्पना के साथ उनकी यह रुचि मिलकर उनकी कविता को रमणीय अथच आकर्षक वेश-भूषा से सज्जित करती है-यह साज सज्जा आधुनिक हिंदी में अतिशय विरल है । पंतजी की इस रुचि से हिन्दी खड़ी बोली को ईप्सित फल प्राप्त हुए हैं-सरस, सार्थक, शब्दसृष्टि, सुगेय छंद और सुंदर प्रशस्त भाषा । शब्द साधना में पंतजी ने संकृत की सहायता ली है यद्यपि शब्द प्रतिमाएँ अंग्रेजी कला-कौशल से खड़ी की गई हैं' (पंत सहचर) ।

10.3.1 काव्यरूप

पंत ने फुटकल कविताओं के साथ "परिवर्तन" जैसी लंबी कविता लिखी । वैचारिक तनाव लंबी तनाव लंबी कविता की विशेषता है जो 'परिवर्तन' में मौजूद है । इसके बाद पंत ने 'लोकायतन' प्रंबंध काव्य लिखा । उन्होंने शिल्पी, रजत शिखर और सौवर्ण काव्यरुपकों की रचना की । ज्योत्सना उनका प्रतीक नाटक है । काव्यरुप की दृष्टि से छायावाद में प्रगीत, खंडकाव्य और महाकाव्य मिलते हैं । गीतिकाव्य के अंतर्गत पंत ने संबोधी गीति, शोकगीति, व्यंग्यगीति आदि का प्रयोग किया । 'लोकायतन' अतिमन के दर्शन का महाकाव्य है जिसमें विश्व कल्याण की भावना के चलते उपदेशात्मकता की प्रधानता है ।

10.3.2 काव्यभाषा शैली

पंत की कायभाषा छायावाद की भाषा का मानक रुप है । पंत की भाषा काव्यात्मक और चित्रात्मक है । उनका कथन है- 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है । उसके स्वर सस्वर होने चाहिए जो बोलते हो, सेब की तरह जिसके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके, जो झंकार में चित्र हो और चित्र में झंकार हो' (पल्लव का प्रवेश) । उनमें चित्रों की इतनी अधिकता का कारण, उनका चित्रमोह है । एक चित्र मानस पटल पर अंकित हो नही पाता कि दूसरा चित्र आ जाता है । 'बादल' कविता में पंत बादल के सैकड़ों चित्र खींचते है । एक उदाहरण-

"**हम सागर के धवल हास हैं**,
जल के धूम, **गगन की धूल**,
अनिल फेन, **ऊषा के पल्लव**,
वारि वसन, **वसुधा के मूल ।**

छायावाद के अन्य कवियों की तरह पंत की भाषा लाक्षणिकता से युक्त है । वे शब्दों का सीधा और अभिधामूलक प्रयोग न करके लाक्षणिक प्रयोग करते हैं -

धूल की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान ।

"धूल की ढेरी" तुच्छ, अनिच्छित वस्तु तथा "मधुमय गान" सुखद, इच्छित वस्तु का बोध कराता है।

अमूर्त विधान : पंत की भाषा का एक प्रधान गुण है-अमूर्त विधानों का प्रयोग । पंत ने अमूर्त विधानों की झड़ी लगा दी है । "छाया' को उन्होंने 'पछतावे' की परछाई', कहा है जहाँ एक साथ दो अमूर्त विधान है । उसी तरह वे अमूर्त विधान है । उसी तरह वे अमूर्त के लिए मूर्त विधान का प्रयोग करते हैं- "अपराधी-सी भय से मौन' । बादल के लिए 'संशय' और 'अपयश' के प्रयोग में भी अमूर्त-विधान है ।

संगीतात्मकता : पंत की भाषा नादयुक्त और काव्यात्मक है । उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को अधिक काव्यात्मक बनाकर उसे नाद-सौंदर्य से युक्त किया, अत: भाषा संबंधी उनका प्रदेय अति महत्वपूर्ण है । उन्होंने संस्कृत की तत्सम शब्दावली से खड़ी बोली हिन्दी को युक्त करके उसे अधिक काव्यात्मक, कलात्मक और रसपेशल बनाया ।

छायावाद की मूल चेतना गीतात्मक होने के कारण उनमें नाद व्यंजना तथा संगीतात्मकता का सफल निर्वाह हुआ है । पंत की अनेक कविताओं में स्वर साधना का अत्यंत पुष्ट और सफल रूप मिलता है । कवि ने चिड़ियों की बोली को उसके पूरे सांगीतिक संभार के साथ प्रकट किया है

बाँसों का झुरमुट
संध्या का झुटपुट
है चहक रही चिड़िया
टी वी टू टु ट टु ट ।

स्वर-साधना की इस सफलता को देखते हुए अज्ञेय ने कहा था कि- "लेकिन मैं तो जानता हूँ कि स्वर ध्वनियों पर पंतजी का ऐसा अधिकार था कि उन्हें सच्चे अर्थ में स्वरसिद्ध कवि कहा जा सकता है' (पंत सहचर-प्रधान अशोक वाजपेयी पृ 130) ।

पंत की कविता में अनेक ध्वनि-चित्र मिलते हैं जैसे पत्तों की स र-स र, म र- म र ध्वनि, कहीं ढोल की धाधिन-धातिन, कहीं गुजरिया के पाँव में बँधी पैजनी से छन-छन-छन-छन की ध्वनि गूँजती है । अत: पंत जी ने काव्यभाषा को गेयता और संगीत-ध्वनि से संयुक्त करने का कार्य किया और अंत में छायावाद में यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि वही छायावाद के पतन का कारण बन गई जिसे पंत ने स्वीकार किया कि छायावाद इसलिए अधिक नही रहा कि वह अलंकृत संगीत बन गया था ।

पंत ने छायावाद की काव्यभाषा को एक नया तेवर दिया । उनका कहना है कि "भाषा का और मुख्यत: कविता की भाषा का प्राण राग है ।' उन्होंने पुन: कहा है कि "भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरुप है । यह विश्व के हृत्तंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है ।' इसका अर्थ है कि वे कविता में राग के साथ नादमयता यानि संगीत का समन्वय करते हैं तथा इस मान्यता के अनुकूल वे भाषा का प्रयोग भी करते है । पंत भाव और भाषा में मैत्री या एक्य स्थापित करने के पक्षधर हैं । वे शब्द की एक-एक सूक्ष्म भंगिमा पर प्रकाश डालते हैं तथा पर्यायवाची

शब्दों के अन्तर को भी रेखाकिंत करते हैं । पंत ने भावों के अनुकूल शब्द चयन तथा शब्द-निर्माण किए हैं-स्वप्निल, तन्द्रिल, पांशुल, स्वर्णिम, रलमल, टलमल आदि । परवर्ती कविताओं में तदभव शब्दों के प्रयोग भी किए हैं ।

पंत ने भाषा को अंतर्मुखी बनाया । रीतिकालीन कवियों की भाषा जहाँ बाह्य चित्रण को महत्व देती थी, वहाँ पंत ने हिन्दी भाषा को आभ्यंतर दिशा की ओर मोड़ा । दूधनाथ सिंह का कथन है-....भाषा को और शब्द को बाह्यविधानों से अंदर की ओर मोड़ने का काम पंतजी ने सर्वप्रथम किया । यह शब्द का उसके शरीर को अतिक्रमित करना है, जिसमें शब्द अपने अर्थ को बाहर की ओर न फेंककर अंदर की ओर लौटता है (तारूपथ की भूमिका) । इसी का परिणाम है कि पंत की कविता-भाषा सूक्ष्मातिसूक्ष्म चीजों तथा मनुष्य और प्रकृति की सूक्ष्म भंगिमाओं को सफलता के साथ चित्रित करती हैं ।

10.3.3 अलंकार

अलंकार कविता का शोभाविधायक तत्व है । पंत ने आंरभ में कविता के तमाम उपादानों पर विशेष बल दिया था जब वे छायावाद के प्रभाव में थे । उनका कथन है "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है ।' अत: पंत न सिर्फ शब्द में, बल्कि भाव में भी अलंकार के समर्थक हैं । किंतु बाद में छायावादी प्रभाव से मुक्त होने के साथ वे कविता में सादगी और सहजता के समर्थक बन गये । वे अपने विचार को पाठक तक पहुँचाने के लिए अंलकार की अनिवार्यता नही मानते । प्रगतिवादी प्रभाव में आकर वे लिखते हैं-

तुम वहन कर सकी जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी**,** चाहिए तुम्हें क्या अलंकार**?**

पंत ने उपमा, उत्पेक्षा, रूपक और विशेषण विपर्यय अलंकारों के विशेष प्रयोग किये हैं ।

उपमा : उपमा, सभी कवियों का प्रिय अलंकार रही है । पंत ने भी उपमा के अधिक प्रयोग किये हैं । छाया कविता में तो वे उपमानों की झड़ी लगा देते हैं-

गुढ़ कल्पना सी कवियों की,
अज्ञाता की विस्मत सी,
ऋषियों की गंभीर हृदय सी,
बच्चों की तुतले भय सी ।

उत्प्रेक्षा : उपमेय में उपमान की संभावना उत्प्रेक्षा अलंकार है । उदाहरण-

निराकार तम मानों सहसा
ज्योतिपूंज में हो साकार
बदल गया दूत जगत-जाल में,
धरकर नाम रुप नाना ।

रूपक : उपमेय में उपमान का निषेधरहित आरोप रुपक है ।

इंदु पर, उस इंदु मुख के साथ ही ।

विशेषण विपर्यय : विशेषण विपर्यय छायावाद का नया अलंकार है, जिसमें विशेषण की जो जगह होती है वहाँ से हटाकर उसे दूसरी जगह प्रयुक्त किया जाता है, यानी उसका क्रम उलट दिया जाता है । मूर्च्छित आतप, तुतला उपक्रम में विशेषण विपर्यय है ।

10.3.4 बिम्ब योजना

बिम्ब आधुनिक हिन्दी कविता के शिल्प का एक मुख्य उपकरण है, जिसके द्वारा भावों को मुर्त्त किया जाता है । चित्र में जब ऐन्द्रिक संवेदना का समावेश होता है तो उसे बिम्ब कहते हैं । छायावादी कविता बिम्बों और चित्रों के लिए विशेष ख्यात है । अतिशय चित्रमोह तथा बिम्ब मोह को छायावाद- के पतन का कारण भी बताया जाता है । पंत में तमाम प्रकार के ऐन्द्रिक बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं यथा-

1. दृश्य बिम्ब : इसका संबंध दृष्टि संवेदना से है । इसे दो रूप हैं-

(क) स्थिर दृश्य बिम्ब :

खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर ।
काकाकांकर का राज भवन, सोया जल में निश्चिंत, प्रमन ।

(ख) गत्यात्मक या गत्वर दृश्य बिम्ब :

मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि, हंसिनी सी सुंदर
तिर रही खोल पालों के पर ।

2. श्रवण बिम्ब : दादुर टर-टर करते, झिल्ली बजती झन-झन
म्याऊं-म्याऊं रे मोर, पियु चातक के गण ।

3**.** घाण बिम्ब **:** उड़ती भीनी तैलाक्त गंध ।

3. आस्वाद्य बिम्ब : लिखा दो ना हे मधुप कुमारि मुझे भी अपने मीठे गान
कुसुम के चुने कटोरों से, करा दो ना कुछ-कुछ मधुपान ।

4. स्पर्श बिम्ब : नव वसंत के सरस स्पर्श से
पुलकित वसुधा बारंबार ।

10.3.5 प्रतीक विधान

प्रतीक में स्थूल चीज के माध्यम से सूक्ष्म तक पहुँचा जाता है । सूक्ष्म अर्थ की प्रतीति के लिए उसका प्रतिनिधि कोई स्थूल संकेत ही प्रतीक है । छायावाद अन्तर्मुखी काव्य होने तथा विषयों का सूक्ष्म चित्रण होने के कारण उसमें प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति मिलती है । छायावाद के प्रतीक मूलत: प्रकृति जगत से लिए गये हैं । कुमार विमल के अनुसार- "पंत के प्रतीक मुख्यत: भावात्मक, अर्थपोतक या ध्वन्यात्मक है । 'पल्लव' और 'गुंजन' में भावात्मक प्रतीकों की प्रचुरता है । 'पंतकाव्य में फूल प्रसन्नता का, शूल

दुःख का, उषा, प्रफुल्लता और जागरण का प्रतीक है । 'सौवर्ण' संक्रमणकालीन मानव मूल्यों के विकास का तथा ' शुभ पुरुष' महात्मा गांधी का प्रतीक है।

10.3.6 लय और छंद विधान

पंत लय और छंद को कविता का सहज स्वाभाविक लक्षण मानते हैं । वे कविता को सांगीतिक प्रवृत्ति से जोड़ते हैं । उनके अनुसार "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है । हमारे जीवन का पूर्ण रुप, हमारे अन्तर्तम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छंद ही में बहने लगता है..... 'पंत ने हिन्दी की प्रकृति के अनुरुप छंद प्रयोग पर बल दिया है । उनके अनुसार हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छंदों में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौंदर्य की रक्षा की जा सकती है । "वे पुन: कहते हैं कि हिन्दी के प्रचलित छंदों में पीयूषवर्षण, रुपमाला, सखी और प्लवंगम छंद करुणरस के लिए मुझे विशेष उपयुक्त लगते हैं । "ग्रंथि' में राधिका छंद है । 'परिवर्तन' में रोला छंद है । 'बादल' कविता में छंद कहीं लावनी के करीब है, तो कहीं आल्हा के। कुछ परिवर्तन के साथ पंत तथा सभी छायावादी कवियों ने पंरपरागत छंदों को पुनर्जीवित किया है ।

10.4 सारांश

इस प्रकार पंत-काव्य का भावपक्ष और कलापक्ष अत्यंत समृद्ध है तथा उसमें निरंतर सुधार-परिष्कार होता रहा । पंत एक ऐसे विलक्षण प्रतिभा संपन्न कवि है, जिन्हें सौन्दर्यवादी-कलावादी अपने खेमे में तथा प्रगतिवादी अपने खेमे में लाने का प्रयास करते है । पंत के कवि-व्यक्तित्व का जायजा लें, तो स्पष्ट होगा कि उनका व्यक्तित्व न केवल कवि का, बल्कि एक सफल गद्यकार और चिंतक का भी है । कवि के रुप में वे छायावादी, प्रयोगवादी, प्रगतिवादी कवि के रुप में अपनी पहचान बनाते हैं । जहाँ तक छायावाद का प्रश्न है, पंत ने छायावादी कविता के मानदंड स्थिर किये थे । जिस समय छायावादी कविता की वस्तु, उसके रुप-विधान को लेकर आलोचकों में ऊहा-पोह था, उन दिनों पंत ने पल्लव का प्रवेश लिखकर बदले हुए परिवेश में छायावादी कविता की अनिवार्यता और प्रासंगिकता को रेखांकित किया । छायावद की प्रकृति और उसकी मिजाज को व्याख्यापित किया तथा पल्लब के 'प्रवेश' के आधार पर उन्होंने छायावाद का घोषणपत्र लिखने का श्रेय प्राप्त किया । अत: छायावाद के भाव और शिल्प को निखारने तथा खड़ी बोली हिन्दी को अधिक काव्यात्मक और कलात्मक बनाने का श्रेय पंतजी को जाता है ।

पंत में सृजनात्मक द्वंद्व बड़ा गहरा है । वे इस द्वंद्व से निरंतर गुजरते रहे, जिसके कारण उनकी रचनाओं में वैचारिक अंतराल है । पंत की कविता निरंतर विकसनशील रही है । युग के अनुसार उनकी विचारधारा तथा कविता का तेवर बदलता रहा है ।

छायावादी कवि के रुप में लंबे समय तक रहने के बाद जब युग करवट लेने लगा तथा छायावादी कविता वायवीयता और अतिशय कल्पना के चलते युग-जीवन से विमुख होने लगी जिससे कविता के नये मानदंड की खोज हुई, तब पंत ने 1938 में 'रुपाभ' के प्रवेशांक में कहा कि "इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र रुप धारण किया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिदिन हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं, अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती । इसकी जड़ों को पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है । हमारा उद्देश्य इस इमारत में थूनियाँ लगाने का कदापि नही है, जिसका कि गिरना अवश्यंभावी है ।' स्पष्ट है कि पंतजी छायावाद से मुक्त होकर मार्क्स की क्रांति से प्रभावित होकर प्रगतिवाद की ओर झुक रहे थे । युगान्त युगवाणी, ग्राम्या उसी काल की रचनाएँ है जब पंत छायावादी प्रभामंडल से अलग हो चुके थे । वे गांधीवाद से भी प्रभावित हुए और मार्क्स की क्रांति से भी । उन्हें गांधी की सत्य अहिंसा तथा मार्क्स का व्यवस्था बदलाव-दोनों आकर्षित करते हैं । पुन: वे अरविंद के संपर्क में आये और अरविंद दर्शन से प्रभावित हुए । वे भौतिकता और अध्यात्म-दोनों के समन्वय में मानव जीवन की सिद्धि और सफलता देखते हैं । अत: निरंतर परिवर्तनशीलता और नव-प्रयोगों के चलते पंत का काव्य जड़ता और गतिरोध का शिकार नहीं बन, जो एक सकारात्मक पहलू है।

पंत में इतने वैचारिक भटकाव आलोचकों को खटकते हैं कि पंत में वैचारिक स्थिरता नही है, लेकिन पंत एक सजग-सचेत रचनाकार की हैसियत से अपने युग में आने वाली तमाम विचारधाराओं को परखते है तथा उनमें जो कुछ मानव जीवन के हित में दिखता है, उन्हें अपनाते हैं । जीवन के विकास ओर प्रगति के लिए वे सभी विचारधाराओं को निकष बनाते हैं । अत: उनका यह वैचारिक भटकाव मानवहित, मानव जीवन की समृद्धि और प्रगति के लिए एक मनीषी की चिंता है । यह भटकाव युग का भटकाव है । अत: पंत का काव्य लोकचिंता काव्य है । उनमें कला, सौंदर्य है, कल्पना की उड़ान है, यथार्थ चित्रण और ग्राम्य जीवन की झाँकियाँ हैं ।

पंत गद्यकार के रूप में भी अधिक सफल रहे । उन्होंने काव्य की भूमिकाएँ तथा **छायावाद :** पुर्नमूल्यांकन, "गद्यपथ' आदि गद्य रचनाएँ दी जिनमें उनका समीक्षक रूप सामने आता हे । वैसे पंतजी मूलत: कवि थे, समीक्षक नहीं थे किन्तु आपद् धर्म में उन्हें समीक्षक बनना पड़ा । जैसे अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवि वर्ड्सवर्थ तथा उनके सहयोगी कवि कॉलरिज का जवाब देने के लिए समीक्षा लिखनी पड़ी थी वैसे ही छायावाद के आलोचकों को प्रत्युतर देने के लिए पंत तथा अन्य छायावादी कवियों को समीक्षक बनना पड़ा था जिससे छायावादी कविता संबंधी अस्पष्टता समाप्त हुई थी ।

हिन्दी कविता को पंतजी का भाषिक योगदान सबसे अधिक है । उन्होंने ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली को कविता की भाषा के रूप में स्थापित किया, जो नवजागरण काल की मांग थी । बदलते युग-संदर्भ में चिंतन की अभिव्यक्ति तथा राष्ट्रीय पहचान को स्थापित करने के लिए एक नयी भाषा की जरुरत थी, जिसका स्थान खड़ी बोली हिन्दी

ले रही थी उसे पंत तथा अन्य छायावादी कवियों ने काव्योपयुक्त बनाया । पंत ने खड़ी बोली को नयी संभावनाओं से युक्त किया । लक्षणा, व्यंजना, नये शब्द प्रयोग के द्वारा खड़ी बोली का विस्तार करके उसे लोकप्रिय बनाया । यदि छायावादी कवि न होते तो खड़ी बोली हिन्दी इतनी जल्दी काव्य के आसन पर स्थापित न हुई होती तथा विकास के ऊँचे शिखरों का स्पर्श न कर पाती । पंतजी के अनुसार "खड़ी बोली जागरण की चेतना थी । द्विवेदी युग जिस जागरण प्रारम्भ था, हमारा युग उसके विकास का समारंभ था । छायावाद के शिल्प-कक्ष में खड़ी बोली ने धीरे-धीरे सौंदर्य-बोध, पद-मार्दव तथा भाव-गौरव प्राप्त कर प्रथम बार काव्योचित भाषा का सिंहासन ग्रहण किया' (रश्मिबंध-17) । पंत ने खड़ी बोली हिन्दी की अभिव्यंजना-शक्ति की खोज की तथा भाषा को नाद-सौंदर्य, चित्रात्मकता, कोमलता, अंतर्मुखता जैसी विशेषताओं से संपृक्त किया । हरिवंश राय बच्चन के शब्दों में "जब सदियाँ बीत जाएँगी और हिन्दी हिन्दी की एकता की भाषा होगी, तब यह सहज स्पष्ट होगा कि राष्ट्रभाषा का यह कवि सचमुच उस युग-राष्ट्र का 'जन चारण था' था जिसने कर्म, भावना और प्रज्ञा के प्रतीक टैगोर और अरविंद जैसी प्रतिभाओं को जन्म दिया था' (आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-सुमित्रानंदन पंत) ।

सारत : पंत हिन्दी के एक विशिष्ट कवि हैं जिन्होंने हिन्दी कविता के विकास में एक नया मोड़ पैदा किया । कविता को दार्शनिक ऊँचाई और गंभीरता दी । कविता की वस्तु और शिल्प को तराश कर उसे एक नया स्वरुप प्रदान किया । उनकी आरंभिक कविताएँ जहाँ छायावादी चेतना को व्यक्त करती हैं, वहीं युगांत, युगवाणी और ग्राम्या की कविताएँ प्रगतिशील कविता की पृष्ठभूमि तथा उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं । छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय भले मुकुटधर पांडेय या प्रसाद को मिला हो, किन्तु छायावाद के विश्लेषण, प्रचार-प्रसार और उसकी स्थापना में पंत की अग्रणी रहे हैं । पंत का समस्त काव्य युग और जीवन के बीच एक सामंजस्य, एक अंत: संगति की तलाश है । पंत का काव्य क्रमश: कला और सौन्दर्य से लोकोन्यूख होता गया है

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पंतकाव्य के भावपक्ष और शिल्पपक्ष का विवेचन कीजिए ।
2. छायावाद के संदर्भ में पंत के काव्य का मूल्यांकन कीजिए ।
3. पंत प्रकृति के सुकुमार कवि हैं" -इस कथन की समीक्षा कीजिए-
4. पंत की प्रगतिशील और यथार्थ-दृष्टि - पर प्रकाश डालिए ।

10.7 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रधान संपादक-अशोकवाजपेयी, पंत सहचर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
2. द्वारिका प्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2

3. नंददुलारे वाजपेयी - कवि सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, 1997
4. नामवर सिंह छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
5. संतोष कुमार तिवारी-छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, भारतीय ग्रंथ निकेतन, 133, लाजपत राय मार्केट, नई दिल्ली, 11006, संस्करण - 1974
6. सुमित्रानंदन पंत-छायावाद पुनर्मूल्यांकन ।
7. कुमार विमल, छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
8. देवराज-छायावाद का पतन ।
9. डॉ. हरिचरण शर्मा - छायावाद के आधार स्तंभ, राजस्थान प्रकाशन जयपुर

♦♦♦

ISBN-13/978-81-8496-115-7